प्रकाशक—

धीरंजन मुखार्जी,

प्राकृतिक चिकित्सालय (वैज्ञानिक जलचिकित्सालय)

११४।२ बी और सी, हाजरा रोड, कालीघाट, कलकत्ता।

पुस्तक मिलने का पता—

१। कुलरंजन मुखार्जी,

प्राकृतिक चिकित्सालय,

११४।२ बी और सी हाजरा रोड, कालीघाट, कलकत्ता।

२। डा० विठलदास मोदी, आरोग्य मन्दिर, गोरखपुर, यु०पी०

३। डा० बि, पि, सिंह, प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह,

लुकारगंज, इलाहाबाद, यु० पी०।

मुद्रक—

परमानन्द पोद्दार,

यूनाइटेड कमर्सियल प्रेस लि०,

३२, सर हरिराम गोयनका स्ट्रीट,

कलकत्ता।

भूमिका

खाने, पीने और रहने के जो कुदरती कानून हैं उनको भंग करने से वीमारी आती है। प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ है कुदरत द्वारा—जल, वायु, मिट्टी, अन्न इत्यादि द्वारा अच्छा होना। इसमें विशेष खर्च नहीं होता है वह इसका विशेष-वड़ा गुण है। इसलिये गरीब आदमी भी इलाज करवा सकता है। और दूसरा वड़ा गुण यह भी है कि इलाज लेते-लेते कुदरत के नियम अच्छी तरह से समझ लें तो फिर वीमार पड़ने का मौका ही नहीं आयगा। पूज्य वापूजी (गांधीजी) हमेशा—सब समय वताते रहते थे 'वह औषधि अच्छी नहीं मानना चाहिये जो वीमार पड़ने पर खाकर थोड़े दिन के लिये अच्छा वना दे। सच्ची और अच्छी दवा तो वह है जो वीमारी को अच्छी कर दें इतना ही नहीं वल्कि फिर से वीमारी ही न आवे—वीमारी को रोके।' वे तो चाहते थे कि सारे हिन्दुस्तानियों को कुदरती नियमों के अनुसार रहने, खाने-पीने को ही ऐसा सिखाया जाय जिससे कोई वीमार ही न पड़ें। इसलिये प्राकृतिक चिकित्सा का जितना अधिक प्रचार हो उतना काम ही माना जाय।

पूज्य वापूजी हर वक्त—सव समय—गरीवों के लिये ही ज्यादा सोचते थे—उनका ही ज्यादा ख्याल करते थे। जिस कारण उन्होंने पूना के नजदीक उरलीकांचन में गरीवों के लिये करीव २ साल पहले कुदरत उपचार गृह खोला था। धनी लोगों के लिये तो कुदरती उपचार गृह हिन्दमें काफी

हैं। किन्तु गरीबोंके लिये करने वाले बहुत कम हैं। जो हैं उनमें से एक डा० कुलरंजन मुखोपाध्याय हैं। पूज्य बापूजी ने उनके साथ अच्छा परिचय कर लिया था। उनपर विश्वास आ गया था और कई मरीज को इनके ईलाज लेने के लिये भेजते थे।

डा० कुलरंजन बाबू की यह किताब पढ़ने लायक है। इसमें विशेषता यह है कि उन्होंने सिर्फ पुस्तकें पढ़कर या सुनकर नहीं लिखा है। वे इस क्षेत्र में कई वर्षों से कार्य कर रहे हैं। कई वर्षों का उनका जो तजरबा है वह दृष्टान्त देकर लिखा है। इसलिये लोगों को यह अभ्यास की दृष्टि से भी उपयोगी हो सकती है। हर घर में ऐसी किताब रहनी चाहिये। यदि इसे अच्छी तरह से पढ़े और नियमों का पालन करें तो हरेक लोग अपना स्वास्थ्य सुधार सकता है दूसरे का भी सुधार सकता है। इसी वजह से पूज्य बापूजी ने कई लोगों को यह पुस्तक पढ़ने की सिफारिश भी की थी।

ऐसी पुस्तक का प्रकाश होना बड़े आनन्द की बात है। मैं आशा करता हूँ कि जनता इसका पूरा लाभ उठायगी। साथ ही साथ यह भी आशा रखता हूँ कि डा० कुलरंजन बाबू अपनी और अनुभवों को भी पुस्तक द्वारा जनता को देने की कृपा करेंगे।

कलकत्ता
१२-६-४७

कनु गांधी।
आभा क० गांधी।

विषय-सूची

मातृ चरणेषु

अभिनव प्राकृतिक चिकित्सा

प्रथम अध्याय

औषधिकी विष-क्रिया

[१]

एक बार महात्मा गांधीने दुःखके साथ कहा था कि जितनी दूरकी चीजोंके विषयमें हम लोग जानकारी रखते हैं, उतनी नजदीककी चीजोंकी नहीं। इङ्गलैण्डके नद-नदी और पहाड़ोंके नाम तो हमें याद हैं, किन्तु अपने जिलेका कुछ भी ज्ञान नहीं है। चन्द्र-सूर्य ग्रहोंकी तो हम लोग बहुत खबर रखते हैं, पर अपनें पासके शरीरकी चीजोंका हमारा ज्ञान अधूरा है।

दुनियामें इस शरीरसे बढ़कर अधिक मूल्यवान पदार्थ कुछ भी नहीं है। हम सबकी यही इच्छा रहती है कि हम दीर्घजीवी बनें। पर यह किस प्रकार संभव है—हमें पता नहीं। जो आदमी जिस यंत्रको चलाता है, उसके सम्बन्धमें बहुत-कुछ जानकारी रखता है। किन्तु अपने शरीर-रूपी यन्त्रके सम्बन्धमें हमारा ज्ञान अधूरा है। हमें इस बातका पता नहीं कि शरीर कैसे स्वस्थ रह सकता है? रोग दूर करनेके लिये प्रकृतिने क्या व्यवस्थायें कर रखी हैं, इसका भी तो हमें पूरा ज्ञान नहीं। शरीरके सम्बन्धमें हम लोग एक प्रकारसे असहाय हैं।

बीमारीकी हालतमें हम लोग अपनेको सबसे असहाय पाते हैं। उस समय हम अपनी सहायता करने लायक कुछ भी नहीं कर सकते। जिस प्रकार अपने भीतरके भगवानको भूलकर हम बाहर देवता ढूँढ़ते फिरते हैं, उसी प्रकार हम अपनी भीतरी प्रकृतिपर निर्भर न रहकर रोगकी अवस्थामें उसका निदान बाहर खोजने लगते हैं। किन्तु भगवानने इस शरीरकी रचना इस प्रकार की है कि आत्म-रक्षा और रोग-निवारणकी सारी व्यवस्था इसके भीतर ही मौजूद है।

जिस प्रकार हमारी आँख, कान, नाक आदि इन्द्रियां हमेशा हम लोगोंका पहरा दिया करती हैं, उसी प्रकार हमारे रक्तके सफेद कीटाणु शिकारी कुत्तेकी तरह शिकारकी तलाशमें लगातार चक्कर लगाया करते हैं। किसी रोगके किटाणुओंके शरीरमें प्रवेश करनेके साथ-ही-साथ ये उसे धर दबोचते हैं। जो कूड़ा-कर्कट हमारे शरीरमें जमा होकर विविध रोगोंकी सृष्टि करता है, उसे निकाल बाहर करनेके लिये प्रकृतिने बहुतसे साधन बना रखे हैं और उनका नाश करनेके लिये उसने बहुत-सी व्यवस्थायें भी कर रखी हैं। प्रकृति जिन रास्तोंसे अपनेको भारमुक्त करती है, मल निकालनेवाले उन रास्तोंको साफकर हम लोग सब तरहके रोगोंसे छुटकारा पा सकते हैं।

किन्तु हम लोग लड़कपनसे ही सुनते आ रहे हैं कि दवासे रोग छूटता है। अतः बीमार होते ही हम लोग अधिक मात्रामें औषधिका सेवन आरम्भ कर देते हैं। हम लोग औषधिके बारेमें कुछ भी नहीं जानते। हमें यह भी पता नहीं कि दवा विष है या अमृत। व्यवहार की जानेवाली दवा रोगको दूर करती है या उसे दबा देती है—हमें यह भी पता नहीं। दुरूह लैटिन भाषामें किसी भी विदेशी दवाईका नाम देख लेनेसे ही हम सन्तुष्ट हो जाते हैं। जिसे हम नहीं समझते, उसपर हमारा अधिक विश्वास होता है। सीधे-सादे विश्वासी लोग जिस प्रकार बिना समझे-बूझे गण्डे-तावीज लिया करते

हैं, ठीक उसी प्रकार केवल विश्वास ही के कारण हम लोग औपधियोंका व्यवहार करते हैं।

दवा पाकर रोगी समझता है कि मैंने अमृत पा लिया और इससे मेरा स्थायी कल्याण होगा। पर क्या वह सचमुच अमृत लाभ करता है? क्या इससे सचमुच उसे स्थायी लाभ होता है? रोगसे छुटकारा पानेके लिये साधारणतया पारा, काष्टिक, आइडिन, अफीम, कुनाइन, सल्फ्यूरिक एसिड (गंधक का तिजाब) आदि मारात्मक विपोंका व्यवहार किया जाता है। तो क्या ये अमृत हैं? इन विपोंके व्यवहारसे क्या सचमुच ही रोगीका कल्याण होता है? इन प्रश्नोंका उत्तर डाक्टर ही दें।

प्रोफेसर एलोंजो एम० डी० (Prof. Alonzo Clark, M. D.) ने कहा है कि "हमारी सभी आरोग्यकारी औपधियां विप हैं और इसके फल-स्वरूप औपधिकी हरएक मात्रा रोगीकी जीवन-शक्तिका ह्रास करती है"(F. E. Bilz—The Natural Method of Healing, P. 981)।

डा० ट्रैल एम० डी० ने कहा है—"औपधियों द्वारा रोग-निवारणकी प्रत्येक चेष्टा मनुष्यके शरीरके विरुद्ध युद्धके सिवा और कुछ नहीं है (K. L. Sarma—Judgment on Medicine, P. 13.)।"

दवा समझकर रोगी भ्रमसे विप पान करता है, किन्तु प्रकृति इसके विपरीत प्रवल बाधा डालती है। शरीरके तोरणद्वारपर भगवानने जीभको सदा जाग्रत प्रहरीके रूपमें बैठा रखा है। उसे धोखा देकर किसी चीजके भीतर घुसनेका उपाय नहीं है। किसी भी अवांछित चीजके मुखमें आते ही वह थुत्कारकर उसे बाहर फेंक देती है।

किन्तु विप प्रयोग करनेवाले विप देनेवालेकी ही तरह आते हैं। भेंड़की खाल ओढ़े बाघकी तरह कड़ुए विपके ऊपर चीनीका आवरण देकर भगवानके जीभ-रूपी इस पहरेदारको वे धोखा देते हैं।

कभी-कभी तो डाकूकी तरह रोगीपर आक्रमण होता है। प्रकृति विष ग्रहण करना नहीं चाहती। सती नारीकी तरह वह प्राणपणसे विद्रोह करती है, पर उसे सफलता नहीं मिलती। प्रकृतिदेवीके साथ जवर्दस्तीसे बलात्कार किया जाता है।

पुरानी पद्धतिके चिकित्सकगण कहते हैं कि रक्तमें कीटाणु होते हैं। इसलिये रक्तमें विष डालकर इन कीटाणुओंको मार डालो। यह हो सकता है कि उनकी औषधिसे रोगके कीटाणु नष्ट हो जांय, पर विषको खूनमें मिला देनेपर रक्तमें फैले हुए वह केवल रोगके कीटाणुओंका ही नाश नहीं करता, अपितु औषधिका विष तो जिस परिमाणमें रोगके कीटाणुओंका नाश करता है, उसी परिमाणमें वह रोगीकी जीवनी शक्तिका ह्रास करता है।

[२]

शरीरको इतनी अधिक क्षति पहुँचाकर भी क्या औषधियां रोगको दूर कर सकती हैं ? डाक्टरोंकी प्रिय दवाइयां आइडिन, बेलोडोना, आर्सनिक, पारा, गन्धक, संखिया, अफीम आदि क्या सचमुच रोगका निवारण करती हैं ? हम लोग देखते हैं कि रोग होते ही डाक्टर आकर इन दवाइयोंका प्रयोग करना शुरू कर देता है। तुरंत पेट-दर्द मिट जाता है, ज्वर रुक जाता है, फोड़ा बैठ जाता है, घाव सूख जाता है; किन्तु रोगका मूल कारण क्या इससे दूर हो जाता है ? जब हमारे शरीरमें अधिक दूषित पदार्थ जमा हो जाते हैं, उस समय प्रकृति व्रण (फोड़ा), बुखार, सर्दी, पेट-दर्द आदिकी सृष्टि कर उस विषको शरीरसे बाहर निकालना चाहती है। प्रकृतिकी इस चेष्टाका नाम ही रोग है। शरीरको इस प्रकार हल्का करनेकी प्रकृतिकी चेष्टाको औषधि अपने जोरसे रोक देती है। इसीसे रोगका प्रकाश बन्द हो जाता है, पर उसका नाश नहीं होता। दवासे रोग भीतर ही भीतर केवल-मात्र दबा दिया जाता है। कुछ दिन तक रोग सुप्त-सा रहता है।

इसके बाद वह रोग जो आसानीसे नष्ट हो सकता था, भयानक रूपमें या उससे सौगुना अधिक शक्तिशाली होकर किसी दूसरे रूपमें फिर उभड़ उठता है।

पारा, शीशा और जस्ता आदिसे तैयार ज़हरीली दवा चर्मरोगमें व्यवहार की जाती हैं, किन्तु रोग उससे दबते नहीं। पीछे वही असाध्य रोग बनकर पेटका रोग, सिर-दर्द आदि रूपमें उपस्थित हो जाते हैं। बहुधा बड़ी चेष्टाके बाद एक्जिमा रोक दिया जाता है; किन्तु प्रायः इसीसे अजीर्ण, पेटका फूलना, श्वास, हृदयकी कंपन, हृद्शूल तथा स्नायविक दुर्बलता आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं (J. C. Burnett, M. D.—Diseases of the Skin, P. 1 to 117)।

अफीमके साथ मिश्रित की हुई अन्यान्य विषाक्त औषधियोंसे डायरिया शान्त किया जाता है। इस दवासे अँतड़ियाँ (intestines) बेकाम हो जाती हैं और उनकी कृमिगति (peristaltic action) नष्ट हो जाती है। इसी गतिके कारण मलका वेग होता है। इस गतिके नष्ट हो जानेसे ही असाध्य कोष्ठबद्धता उत्पन्न हो जाती है।

बुखार रोकनेके लिये तरह-तरहकी जहरीली दवाइयोंका इस्तेमाल किया जाता है। यह विष रक्तकोषोंको जड़ कर देता है, हृत्पिण्ड और श्वास-प्रश्वासकी क्रियाको दुर्बल कर देता है तथा शरीरके विभिन्न यन्त्रोंको शून्य कर देता है। इसके फलस्वरूप शरीरमें एक ऐसी अवस्था आ जाती है कि प्रकृति ज्वरकी सृष्टिकर शरीरको दोष-रहित करनेकी क्षमता ही खो बैठती है। इस शोचनीय अवस्था-विशेषको डाक्टरगण घोषित करते हैं रोगमुक्ति। किन्तु इससे रोगका मूल कारण तो नष्ट नहीं होता। वही अन्तमें फिर चर्मरोग, हृदयकी कमजोरी तथा अन्य मानसिक बीमारियोंके रूपमें लौट आता है (Kilka–Natural Ways of Cure, P. 15-23)।

बार-बार औषधि-सेवनसे रोगको दबा देनेके फलस्वरूप अन्यान्य असाध्य बीमारियां उत्पन्न होने लगती हैं।

विभिन्न औषधियों द्वारा प्रमेह (सुज़ाक) का श्राव बन्द कर दिया जाता है। श्राव बन्द होते ही रोगी संतुष्ट हो जाता है। किन्तु दवाइयोंसे इस श्रावको बन्द कर देनेके फलस्वरूप बहुत अवस्थाओंमें एकसिरा (orchitis), बांझपन, मूत्रनलीका संकोचन (stricture) तथा उन्माद आदि रोग आ धमकते हैं (J. H. Tilden, M. D.—Gonorrhea and Syphilis, P. 42)। उपदंश (syphilis) के घावके औषधियोंके सेवनसे भर जाने पर रोगी समझता है कि मैं चंगा हो गया, किन्तु वही पीछे वात रोग और पक्षाघातके रूपमें प्रकट होता है। किसी-किसीका कहना है कि उन्माद, पक्षाघात और अंधापन आदि संसारके आधे विनाशकारी रोग गर्मी-सुज़ाकके दबे हुए विषके परिणाम हैं।

मृगी आदि कई स्नायविक रोगोंके दौरे (convulsions) को ब्रोमाइड आदि औषधियोंसे रोकते हैं। किन्तु ये अवसाद उत्पन्न करनेवाली दवाइयां मस्तिष्क और स्नायविक केन्द्रोंको इस प्रकार अवसन्न कर देती हैं कि परिणाम-स्वरूप बहुत बार बुद्धिमें जड़ता (idiocy) आ जाती है तथा किसी-न-किसी प्रकारका पक्षाघात (paralysis) उत्पन्न हो जाता है।

बच्चोंकी छोटी माता आदि रोगोंको दबा देनेसे वही यक्ष्मा, मूत्राशयमें दर्द, बहरापन, चक्षुहीनता आदि कितने ही स्नायविक रोगोंके रूपमें लौट आते हैं (H. Lindlahr, M. D.—Nature cure, P. 55 to 67)।

डा० हैनीमैनने कहा है कि एलोपैथीके डाक्टर लोग अनिद्रा, पतले दस्त और दर्द आदिमें अफीमका व्यवहार करते हैं। आरम्भमें इससे साधारण लाभ होनेपर भी पीछे अनिद्रा और दर्द अधिक बढ़ जाते हैं (Organon, P. 59)।

वीमार होनेपर रोगी डाक्टरको वुलाता है। डाक्टर आकर दवा देता है और जादू-मन्त्रकी तरह रोगके लक्षण गायव हो जाते हैं। मूर्ख रोगी समझता है कि मैं चंगा हो गया। साक्षात धन्वन्तरि ही डाक्टरके रूपमें आये थे। किन्तु डाक्टर तो दाहिना हाथ फैलाकर मन-ही-मन हँसता है। ऊपर भगवान भी हँसते हैं।

एलोपैथिक चिकित्सकोंमें भी इस (एलोपैथिक) चिकित्सा-प्रणालीके विरुद्ध दिन-पर-दिन असन्तोष वढ़ता जा रहा है। पृथिवीके सभी हिस्सोंमें वहुत-से डाक्टर दवाइयोंके प्रयोगके सम्बन्धमें घोर नास्तिक (drug nihilists) होते जा रहे हैं(William Edward Fitch, M.D.— Diatotherapy, Vol. III. P.I.)। औपधि और औषधों पर निर्भर रहनेवाली चिकित्सा-प्रणालीके ऊपर उनकी घृणाका अन्त नहीं है।

डा० नयेस (Dr. Nayes) ने कहा है, "मेरी धारणा है कि यह व्यवसाय—यह कला (art), जिसको भूलसे विज्ञान कहा जाता है, एक परम्परागत भ्रांत नीतिके अनुसरणके सिवा और कुछ भी नहीं है (is none other than a practice of fundamental fallacious principles) इससे किसीका कुछ भी उपकार नहीं हो सकता। यह व्यवसाय नैतिक दृष्टिसे अपराध (morally wrong) है और देहके लिये हानिकर है (Judgment on medicine, P. 14)।

ब्रिटिश मेडिकल एसोसियेशनके उप सभापति सर जेम्स वारने कहा है, "The treatment of disease is not a science, nor even a refined art, but a thriving industry—रोग की चिकित्सा-विधि विज्ञान नहीं है, कोई विशेष परिमार्जित कला भी नहीं है, वल्कि यह एक फायदेमन्द व्यवसाय है।" (Ibid, P. 9)

जार्ज वनार्डशा समालोचक आदमी हैं। समालोचककी भाषामें ही

आपने कहा है, "It is not a profession, but a conspiracy—यह व्यवसाय नहीं है, वल्कि एक षड्यन्त्र है।"

[३]

यदि यह वात ठीक-ठीक मालूम पड़ जाय कि डाक्टरने रोगका जो निदान किया है, वह सत्य है, तो औषधिका व्यवहार करना भी ठीक होता है। अधिकांश लोग रोगकी पीड़ाके कारण उसके अन्तिम परिणामके सम्बन्धमें सोच भी नहीं सकते। वे शीघ्रातिशीघ्र स्वस्थ होना चाहते हैं। पर रोगका ठीक तरहसे निदान हो, तव न उसका प्रतिकार होगा। रोगका निदान करना कितना मुश्किल है, यह तब मालूम होता है, जब कोई व्यक्ति किसी साधारण जटिल रोगीको लेकर शहरके एक छोरसे दूसरे छोर तकके सभी डाक्टरोंके यहां घूम आये। तो भी प्रत्येक डाक्टर एक-एक नये रोगका नाम वताये; तो आश्चर्य नहीं।

किन्तु मजेदार वात तो यह है कि रोग न समझनेपर भी दवा-दारूकी एक व्यवस्था है। किन्तु इसके लिये किसीको दोषी भी नहीं वनाया जा सकता। क्योंकि औषधियों द्वारा चिकित्सा करानेका अर्थ ही यही होता है कि रोगीके असहाय शरीरपर औषधियोंकी परीक्षा करके देखना। प्रसिद्ध-ग्रन्थ 'औषधियोंके इतिहास'के रचयिता डा० वष्टकने कहा है, "रोगीके शरीरमें जितनी बूंद दवाइयां डाली जाती हैं, वे रोगीपर औषधिकी परीक्षा के सिवा और कुछ नहीं हैं।"

प्रसिद्ध डा० सर विलियम ओसलरका कथन है, "जिन औषधियोंका हम लोग प्रयोग करते हैं, उनके सम्बन्धमें हमारी जानकारी वहुत ही कम है तथा जिस देहपर हम औषधियोंका प्रयोग करते हैं, उसके सम्बन्धमें तो हमारा ज्ञान और भी अपूर्ण है।"

न्यूयार्क मेडिकल कालेजके अध्यापक डा० ई० एच० डेविड एम० डी०का

कहना है, "औपधियोंका स्वाभाविक गुण वहुत ही कम मालूम है। अपनी अज्ञानताको छिपानेके लिये हम लोग औपधि शब्दका व्यवहार करते हैं।"

तव औपधियों द्वारा इस प्रकार परीक्षा किये जानेपर यदि एक रोगकी औपधि दूसरे रोगमें दी जाये, तो आश्चर्य ही क्या है? परन्तु गलत दवा का इस्तेमाल वड़ा ही खतरनाक है। गलत दवा देने और जहर देनेमें कोई अन्तर नहीं है। इससे मृत्यु हो जाना कोई आश्चर्यकी वस्तु नहीं।

वड़े-वड़े अस्पतालोंकी चीर-फाड़की रिपोर्टोंसे इसका कुछ-कुछ पता चलता है कि डाक्टरोंकी रोग-निर्णय-प्रणाली कितनी अनिश्चित है। अमेरिकाके एक प्रसिद्ध अस्पताल (The Massachusetts General Hospital) के चीर-फाड़-विभागके प्रधान मि० केवटने कहा है, "एक हजार लाशोंकी परीक्षा करके देखा गया है कि प्रतिशत ५३ रोगियोंका तो ठीक-ठीक रोग-निदान हुआ था, ४७ प्रतिशत रोगियोंका निदान गलत था" (Henry Lindlahr, M. D.—Practice of Natural Therapeutics, P. 34-38)।

इन ४७ प्रतिशत रोगियोंको भी तो दवा ही दी गयी थी, पर उसे औषधि न कहकर विप कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। क्योंकि गलत दवा और विप देनेमें वहुत कम अन्तर है। इससे मृत्यु होनी कोई असंभव नहीं। अतएव जो अभागे अकाल ही काल-कवलित हुए, उन्हें रोगने ही नहीं मारा, डाक्टर भी उनकी मृत्युके लिये समान भावसे दोपी हैं।

तव अभिज्ञ चिकित्सकोंके हाथोंसे ही यह मृत्यु हुई है। नवसिखिया डाक्टरोंके हाथों हो सकता है कि मृत्यु-संख्या और भी अधिक होती। पर धीरे-धीरे ये अनुभवी हो जाते हैं—'शतमारी भवेत वैद्यः, सहस्रमारी चिकित्सकः।' अतः डा० मेसनगुड जव कहते हैं, "पृथ्वीपर डाक्टरोंने जितने लोगोंको मारा है, युद्ध, दुर्भिक्ष तथा महामारी आदि समस्त उपद्रवों

द्वारा मिलकर भी उतने लोग नहीं मरे हैं, तव हम लोग उनका कोई प्रतिवाद भी नहीं कर सकते हैं" (Mahatma Gandhi—Guide to Health, P. 5.)।

इन्हीं कारणोंसे डा० फ्रांसिस गोग्सवेल एम० डी० ने कहा, "वर्तमान डाक्टरी व्यवसाय जिस पद्धतिपर चालू है, उसमें संसारका जितना उपकार हुआ है, उससे कई गुनी अधिक क्षति हुई है।"

डा० जेम्स जानसन, एम० डी०, एफ० आर० एस०, ने कहा है, "अपने दीर्घ जीवनके अनुभवके आधारपर मैं अन्तकरणसे यह कह सकता हूँ कि यदि पृथ्वीपर एक भी डाक्टर, अस्त्र-चिकित्सक, औषधि-विक्रेता तथा एक बूंद भी दवा नहीं रहती, तो जिस प्रकार पृथ्वीपर आज रोग और मृत्युका प्रादुर्भाव है—वह अपेक्षाकृत बहुत कम होता।"

इसी कारण डा० ट्रेल दुःखके साथ कहते हैं, "यदि पृथ्वीपर रोग निवारणके लिये कोई भी व्यवस्था नहीं रहती, तो भी मैं किसीको दवा नहीं देता, क्योंकि मैं अच्छा नहीं कर सकता, तो कम-से-कम बुरा करनेसे तो अलग रहता" (Judgment on Medicine, P. 13)।

[४]

औषधि द्वारा चिकित्सा करनेकी इसी सर्वनाशकर चिकित्सा-प्रणालीकी प्राकृतिक प्रतिक्रियाके फलस्वरूप यूरोपमें होमियोपैथी चिकित्साका आविर्भाव हुआ। चिकित्साके साथ यह इसी कारण चल सकती है कि यह रोगको दबाती नहीं। इस प्रणालीमें काफी दिन बाद बहुत थोड़ी मात्रामें दवा दी जाती है। इसलिये होमियोपैथीके औषधिसे औषधि-हीन प्राकृतिक चिकित्सामें पहुँचानेका प्रथम सोपान कहा जा सकता है।

किन्तु होमियोपैथी-चिकित्सा-प्रणालीका मूल सूत्र ही यह है कि जो दवा स्वस्थ शरीरपर जिन रोगोंका लक्षण प्रकट करती है, उसी रोगके

लक्षण यदि किसी रोगीमें हों, तो उसी औषधिसे उस रोगका निराकरण होगा। विषके सिवा और कोई चीज रोगका लक्षण नहीं पैदा करती। इसलिये इसकी सब औषधियां ही विष हैं। अनेक बार रोगके लक्षण समझमें नहीं आते अथवा एक औषधिको बीसों बीमारियोंके लक्षणोंमें प्रयोग करनेकी व्यवस्था है। जो लक्षण रोगीके शरीरमें नहीं है—तब यदि होमियोपैथी-चिकित्सा-विज्ञान सत्य है—तो उस दवाके प्रयोगसे रोगीके शरीरमें उसी रोगके लक्षण उत्पन्न होंगे। अतएव भूल चिकित्सासे रोगीका बड़ा अनिष्ट होगा। कुछ लोग समझते हैं कि गलत दवासे कोई बुराई नहीं होती, किन्तु यह बात ठीक नहीं। होमियोपैथी दर्शनके लेखक डा० केण्टने कहा है, "That what is prone to cure, is prone to kill—जिससे रोग दूर हो सकता है उससे मनुष्य की मृत्यु हो सकती है।"

आजकल तो अत्यन्त साधारण लोग भी होमियोपैथिक चिकित्सा करते हैं, किन्तु इसके समान मुश्किल और कोई चिकित्सा-प्रणाली नहीं है। यह एलोपैथीसे कहीं अधिक मुश्किल है। इसमें रोगके लक्षण निश्चित करना जितना कठिन है, औषधिकी मात्रा स्थिर करना और भी अधिक कठिन है। डा० हैनीमैन ने भी कहा है कि केवल अनुभवके द्वारा ही इसकी मात्रा स्थिर की जा सकती है (Organon, 278)। कई-कई दिनों बाद अत्यन्त थोड़ी मात्रामें दवा देना ही इस प्रणालीका नियम है। पर जो लोग जानकार नहीं हैं, वे एलोपैथीकी तरह बारम्बार दवाइयोंका प्रयोग करते हैं। रोगीके लिये यह एलोपैथीकी अपेक्षा अधिक हानिकर सिद्ध होती है (Ibid, 276)। क्योंकि होमियोपैथी दवाकी प्रत्येक बूंद विष है।

इन दवाइयोंके अलावा बहुत-सी चलती दवाइयां (non-official medicines) बाजारमें प्रचलित हैं। इन दवाइयोंके दोष-गुणकी

असलियत कोई नहीं जानता। साधारण लोगोंका जो अन्ध-विश्वास इसमें निहित है, उसीको वे इनके सम्बन्धका ज्ञान माने बैठे हैं। किसी औषधिका प्रत्येक उपादान (ingredient) शरीरमें कौन-सी क्रिया उत्पन्न करेगा और क्यों करेगा, इस बातको अच्छी तरह जाने बिना जो आदमी दवाइयां देता है, वह बिना लेबेलकी बोतलसे दवा देनेकी झोंकी लेता है।

डाक्टर लोग औषधियों द्वारा जो लाभ पहुँचाना चाहते हैं, वही लाभ एक बूंद भी दवा खिलाये बिना तथा किसी प्रकार रक्तको विषाक्त किये वगैरह केवल जल, मिट्टी, ताप, वायु, रोशनी और पथ्य द्वारा प्रकृतिकी सहायता पहुँचाकर आसानीसे प्राप्त किया जा सकता है।

गांवके लोग इस बातका अफसोस करते हैं कि बीमारीके समय उन्हें दवा नहीं मिलती। शहरके गरीबोंकी भी यही शिकायत है। किन्तु यदि उन लोगोंको यह मालूम होता कि उनके पास ही रोग नष्ट करनेके कितने ही साधन हैं, तब औषधिके लिये उन्हें अफसोस करनेकी जरूरत कभी न पड़ती।

द्वितीय अध्याय

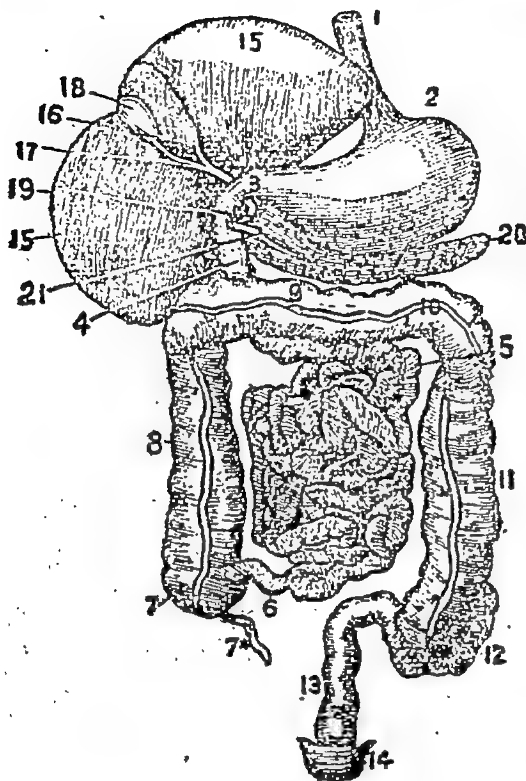
रोग और उसका प्रतिकार

[१]

ग्रहण और परित्यागपर ही हमारा शरीर निर्भर है। हम लोग जो भोजन करते हैं, प्रकृति उसके सारांशको शरीरके काममें लाती है और बाकी बचे हुए सिट्ठीको निचोड़े हुए नीबूकी तरह विभिन्न मार्गोंसे बाहर निकाल फेंकती है। प्रत्येक क्षण इस ग्रहण और परित्यागकी सफल क्रिया पर ही हमारा स्वास्थ्य निर्भर करता है।

हम लोग जो कुछ भी खाते हैं, वह दाँतों द्वारा चबाये जानेके बाद पाकस्थलीमें जाता है। खाया हुआ पदार्थ पाकस्थली (stomach) में आकार मांड़के आकारमें बदल जाता है और इसके बाद वह क्षुद्रान्त (small intestine) में प्रवेश करता है। हमारी यह अँतड़ी करीब २२ फीट लम्बी एक नली होती है। इसका सम्पूर्ण भीतरी भाग हजारों छोटी-छोटी जीभोंसे भरा होता है। डाक्टर लोग इसे अङ्कुरिका (villi) कहते हैं। ये सब छोटी अँतड़ीके भीतरके अर्ध तरल पदार्थमें आगे-पीछे हमेशा हिल्ती-डुल्ती रहती हैं। इस प्रकार आन्दोलित होते-होते ये खाये हुए पदार्थसे रस खींचती जाती हैं।

असलियत कं
निहित है, र
प्रत्येक उपादा
और क्यों क
देता है, वह
डाक्टर
एक बूंद भी
केवल जल,
पहुँचाकर आ
गांवके
दवा नहीं सिर
यदि उन लोग
कितने ही स
कभी न पड़ते



परिपाकयन्त्र (The digestive organs)

[चित्र-परिचय—(1) गलेकी नली, (2) पाकस्थलीका ऊपरी मुख, (3, पाकस्थलीका नीचेका मुख, (4) क्षुद्रान्तोंका ऊपरी भाग (duodenum), (5. 6. क्षुद्रान्तोंकी कुण्डली का आवर्त (convolutions of the small intestines, (7) अन्धान्त्र (cœcum) (7*) अन्त्रपुच्छ, (8) उर्द्धगामी वृहदन्त्र, (9, 10) अनुप्रस्थ वृहदन्त्र, (11) निम्नगामी वृहद्यन्त्र, (12) द्विवक्र भंज, (13) सरलान्त यन्त्रका निचला भाग, (I4) मलद्वार, (15, 15) यकृतका ऊपरी भाग ऊँचा करके दिखाया गया है, (16) यकृत-प्रणाली—इसी राहसे पित्त यकृतसे होकर छोटी आँतोंके ऊपरी भागको जा पहुँचता है, (17) पित्तकोष-प्रणाली, (18) पित्तकी नली, (19) पित्तवाहा नली, (20) क्लोम (pancreas), (21) क्लोम]।

खाया हुआ पदार्थ छोटी अँतड़ीसे होकर बड़ी अँतड़ी (वृहदन्त्र) में जाता है। हमारी बड़ी अँतड़ी large intestine) प्रायः पांच फीट

लम्बी होती है। शहरमें जिस प्रकार बड़ा नाबदान होता है, ठीक उसी प्रकार मानव-शरीरका सबसे बड़ा नाबदान यह बड़ी अँतड़ी है। इसी पथसे अन्तमें मल शरीरसे बाहर होता है।

बड़ी अँतड़ीका भीतरी भाग भी बहुत-कुछ छोटी अँतड़ीके समान ही है। इसी कारण उसीकी तरह यह भी काफी रस खींच सकती है। खाया हुआ पदार्थ अर्ध तरल अवस्थामें बड़ी अँतड़ीमें पहुँचता है। किन्तु उसका अधिकांश रस (जलीय भाग) इसी जगह आकर शोषित होता है। इसी कारण बड़ी अँतड़ीमें पहुँचकर मल क्रमशः कड़ा होता जाता है। बहुधा जब कोई रोगी मुँहसे खा नहीं सकता, तब इसी राहसे ग्लूकोस आदि देकर उसे बहुत दिनों तक बचाया जाता है।

इसी कारण छोटी या बड़ी अँतड़ीमें मल रुककर यदि सड़ उठे, तब उससे शरीरकी बहुत बड़ी हानि हो सकती है। मलके अधिक दिन अंतड़ीमें रहनेसे, उसमें असंख्य कीटाणु पैदा हो जाते हैं। यों भी बड़ी अंतड़ीमें इतने कीटाणु रहते हैं कि सूखा हुआ मल $\frac{1}{4}$ से लेकर $\frac{1}{2}$ तक इन्हीं द्वारा …ठेत होता है। (W. A. Halliburton, M. D., F.R.C. P.—Handbook of Physiology, P. 48.) मलके पुराना पड़ते ही ये कीटाणु इसे सड़ाकर अत्यन्त विषाक्त कर देते हैं। अतः यदि यह मल यथासमय सरीरसे बाहर नहीं निकाल दिया जाये, तब आंतड़ीका यह विष फिर शरीरमें ग्रहण होता (Gottwald Echwary, M. D.—Diseases of Colon and Rectum, P. 33.) और इसके फलस्वरूप सारा रक्त दूषित हो जाता है।

इन छोड़ी और बड़ी अन्तड़ियोंमें रसशोपणका कार्य दिन रात लगातार चलता रहता है। अन्तड़ियोंके भीतरकी दीवाल, जो स्पञ्जकी तरह होती है, सदा इस शोपणमें व्यस्त रहती है। अन्न ले जाने वाली नाली (ali

mentary canal) केभीतरी भागके साफ रहनेपर वह विशुद्ध नये खाये एहु पदार्थसे अविकृत रस खींचकर देहको लावण्य, आनन्द, कान्ति और पुष्टिसे भर देती है। किन्तु जब आंतोंमें मल जमा होकर विकृत होने लगता है, तब प्रकृति जमा हुए मलसे अमृतके स्थानपर विश ही खींचने लगती है। हमारे अपने शरीरके विषसे ही हमारा रक्त दूषित होने लगता है और उसके फलस्वरूप नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होने लगते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि हमारे अधिकांश रोगकी इस प्रकार कोष्ट-बद्धतासे शुरू होते हैं (W. A. Halliburton, M. D., F. R. C. P.—Handbook of Physiology, 33ed. edition, P. 407) और कुछ लोगोंकी यह धारणा है कि हमारे ९९ प्रतिशत रोगोंका सम्बन्ध तलपटके इस दोषयुक्त अवस्थासे जोड़ा जा सकता है (J. Ellis Barker—Chronic Constipation, P.13-16)। सर विलियम आरबुथनाट लेनने कहा है, Constipation, is the root cause of all the diseases of civilisation पृथ्वीके सभ्य समाजमें जितने रोग होते हैं उनका मूल कारण कोष्ट-बद्धता ही है (Sir William Arbutbnot Lane—New Health for Everyman, P. 78.)।

किन्तु केवल अन्तरियों से ही विष शरीर में जाता है,—यह बात नहीं। हमारे शरीर के कोष भी प्रतिक्षण टूटते रहते हैं। यथा समय ये भी शरीरसे बांहर न निकल सकें, तो ये भी शरीर में एक प्रकार की दूषित 'परिस्थिति उत्पन्न करटे हैं। शरीर-यन्त्र क परिचालन के फलस्वरूप भी नाना प्रकार के विष (Carbonic acid, Urea, phosphoric acid, Oxalic acid, Ptomaines, Xanthines, Poisonous alkaloids) आदि शरीर में उत्पन्न होते रहते हैं।

ये सभी दूषित पदार्थ तथा इनका विष कुछ मल के साथ तथा बाकी

पेशाव, पसीना, निश्वास वायुके साथ शरीरसे वाहर जाते हैं। शरीरके कूड़े-कर्कट एवं विषको वाहर निकाल फेंकनेके लिये यही सब प्रकृतिकी नर्वदान हैं।

यदि इन सभी नर्वदानोंका मार्ग खुला रहे, तो आसानीसे कोई भी रोग हमें नहीं हो सकता। किन्तु यदि किसी भी कारणसे ये मार्ग कम-वेशी वन्द हो जायें, और शरीरका कूड़ा-कर्कट किसी प्रकार वाहर न निकल पावे, तव शरीरके भीतर रहकर ये सारे शरीरको जहरीला वना देगा। शरीरमें इस विषको सहनेकी एक सीमा होती है। और जव वह सीमा अतिक्रमण हो जाती है, तव हमारे शरीरमें किस्म-किस्मके रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

सच वात तो यह है every illness is the passing of the toleration point for internal intoxication—किसी भी रोगके होते ही समझना चाहिये कि शरीरमें भीतरी विषको वर्दाश्त करनेकी सीमाका अतिक्रमण हो गया है (William Howard Hay, M. D.—Health via food, p. 32)। इसी कारण आधुनिक युगके महान चिकित्सक सर विलियम आर्वूथ नटने कहा है—'After all there is but one disease—deficient drainage—चाहे जो कुछ भी क्यों न कहा जाये, पर संसारमें केवलमात्र एक ही रोग है, और वह है, अपर्याप्त शरीर धौति।'

[२]

किन्तु प्रकृति हमेशा हमारी रक्षा करनेकी चेष्टा किया करती है। जव शरीरके प्रधान पनालेसे वह शरीरके कूड़े-कचरेको वाहर निकाल फेंकनेमें असमर्थ हो जाती है, तव इनके विषको वह पेशाव, पसीना और प्रस्वासके साथ वाहर निकलने तथा लिवर आदि यंत्रोंकी सहायतासे ध्वंस करना चाहती है (Gottwald Schwary, M. D.—Diseases of the Colon and Rectum, p 33)। इस प्रकार मुत्रयन्त्रका काम

चमड़े, चमड़ेका काम मुत्रयन्त्र आदि एक-दूसरेका काम कर लेते हैं। शरीर इस प्रकार एक सक्रिय यंत्र है।

इसी कारण विषके जोरसे शरीर आसानीसे विपन्न नहीं होने पाता। किन्तु शरीरकी भीतरी अवस्था अधिकांश रूपमें हमारे वाहरी जीवन-क्रमपर निर्भर करती है। वहुधा हम लोग दिन-पर-दिन प्रकृतिके नियमोंका उलंघन करके अपने शरीरको भारी क्रांत वना देते हैं। अधिक मात्रामें आहार, अखाद्य और कुखाद्य भोजन, मल-मुत्रके वेगको रोकना, अत्यधिक इन्द्रिय सेवा, अनियमित भोजन और निद्रा, वन्द कमरेमें रहना और वहुत अधिक व्यस्त रहना तथा उद्वेग (hurry and worry) आदि अत्याचारोंके फल-स्वरूप शरीरके भीतर एक प्रकारकी विश्रृंखलताकी सृष्टि हो जाती है और शरीरके यंत्रोंकी स्वाभाविक क्रिया नष्ट हो जाती है। अधिक दिनों तक इस प्रकारकी अवस्थाके चालू रहनेके परिणाम-स्वरूप शरीरके विभिन्न यंत्र शरीरको साफ रखनेकी अपनी क्षमतासे धीरे-धीरे वंचित हो जाते हैं और इसका नतीजा यह होता है कि शरीरका परित्यक्त पदार्थ (waste) शरीरके भीतर ही थोड़ी-वहुत मात्रामें स्थान ग्रहण कर लेता है।

पहले यह विप खूनमें आकर जमा होता है। रक्त रासायनिक क्रिया द्वारा इसे गलाकर वाहर निकाल फेंकनेका सदा प्रयत्न करता है। परन्तु जव खूनमें वहुत अधिक विकार इकट्ठा हो जाता है, तो इसे गलाकर वाहर निकाल फेंकनेकी उसकी शक्तिका ह्रास हो जाता है। तव प्रकृत्ति रक्त-प्रवाहको साफ रखनेके लिए, इसमें एकत्र विकारको शरीरके दूरवर्ती विभिन्न स्थानोंमें ठेलकर पहुँचा देती है। तव यह दूपित पदार्थ शरीरके कोप, तन्तु और कैशिक नालियों आदिमें मजवूरन अपना स्थान वना लेता है (H. Lindlathr, M. D.—Nature Cure, p. 290-300)।

कभी-कभी काफी दिनों तक इस प्रकार विकारके जमा होनेका

क्रम चलता रहता है। उस समय हमें इस बातका ज़रा भी मालूम नहीं होता कि हमारे शरीर-रूपी महलके नीचे हमारी बिना जानकारीके बारूद जमा हो रही है। बहुत दिनों तक यह इस प्रकार सुप्त अवस्थामें पड़ा रहता है। हम सोचते रहते हैं कि हम पूर्ण स्वस्थ हैं। किन्तु एक दिन बारूदखानेमें चिनगारीकी तरह हमारे शरीरके इस विकारमें भयानक विष्फोट होता है।

हम बहुधा लोगोंके बारेमें सुनते हैं कि, अमुक व्यक्ति खूब हट्टा-कट्टा था। शरीरमें किसी भी विकारका कोई लक्षण प्रकट नहीं था, पर एक दिन अचानक वह लकवाका शिकार बन जानेसे चलने-फिरनेमें असमर्थ हो गया या हार्टफेल हो जानेसे काल द्वारा कवलित हो गया। किन्तु अचानक कभी भी कोई रोग नहीं होता।--यहां तक कि अचानक सर्दी भी नहीं होती। कभी ठंडक लगनेके बाद लोम-कूपोंके बन्द हो जानेके कारण इनके द्वारा जो विष निकलता है, उसे प्रकृति दूसरे रास्तोंसे बाहर निकाल देती है। इस प्रकार रोज संचित होनेवाले विषको बाहर निकालते-निकालते अन्यान्य परिष्कारक यन्त्र जब कमजोर पड़ जाते हैं और इस अतिरिक्त भारको ढोनेमें जब ये असमर्थ हो जाते हैं, तभी सर्दी लग जाती है। इसी प्रकार अचानक एक फोड़ा-फुंसी भी नहीं हो सकती। जब रोगोंके आक्रमणसे शरीरके भीतर प्रतिरोध करनेकी शक्ति क्षीण हो जाती है, तभी एक छोटा घाव भी हो सकता है। जिसका हृदय सबल एवं स्वस्थ है, वह अचानक फेल नहीं हो सकता। शरीरके भीतर जमा होते रहनेवाले दूषित पदार्थके आक्रमणसे शरीरका कोई यन्त्र-विशेष जब बहुत दिनोंसे क्रमशः खराब होता जाता है, तभी एक दिन उसपर अंतिम प्रहार हठात् विष्फोटकी भांति आता है।

इस कारण कि अमुक रोग हठात् हुआ है यह मान लेना नितान्त

भ्रम है। जिस किसी भी रोगका आज प्रकाश होता है उसका अनुकूल अवस्था (predisposition) बहुत दिन पहले ही से हमारी दृष्टिकी आड़में दिन-पर-दिन चलता रहता है। इसके बाद एक दिन अचानक रोग उपस्थित हो जाता है।

हमारे शरीरके भीतर प्रवाहित होनेवाले रक्तस्रोतके द्वारा ही अन्यान्य सभी यंत्र पुष्टि प्राप्त करते हैं। आँख, दाँत, हृदय, फेफड़ा, यहाँ तक कि शरीरका एक क्षुद्र कोष तक, इस साधारण रक्तस्रोतसे शरीर-गठनको सामग्रियां ग्रहण करता है। और जब शरीरके भीतर यह स्रोत ही विषाक्त हो जाता है, तब जिस किसी भी अंगका इस विष द्वारा आक्रान्त होना संभव है।

प्रायः कमजोर अंगपर ही रोगका आक्रमण होता है। यदि हम किसी सीकरको दोनों तरफ खींचें, तो वह उसी स्थानपर टूटेगा, जहाँ कि उसका सबसे कमजोर अंश होगा। इसी प्रकार रक्तप्रवाहके साथ-साथ जो विष चक्कर लगाता है, वह साधारणतया कमजोर अंगको ही आक्रमण करता है। इस तरह शरीरके अंदर विभिन्न रोग, आंख, दाँत, चमड़े और फेफड़ेकी बीमारियां तथा स्त्रीरोग आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। किन्तु सच पूछा जाय तो इन्हें रोग कहना भूल है। शरीरकी दोषपूर्ण अवस्था (toxæmia) ही असली रोग है। और सब केवल उसके विभिन्न प्रकाश-मात्र हैं।

परन्तु हरेक रोगके पीछे आत्म-रक्षा और शरीर-रूपी घरके परिष्कार करनेकी प्रकृतिकी एक व्यवस्था छिपी रहती है। जब हमारे शरीरमें इतना अधिक विष इकट्ठा हो जाता है कि हमारे शरीरके यन्त्रोंका परिचालन ही असम्भव हो उठता है, तब वह विभिन्न प्रकारसे और विभिन्न पथसे शरीरके भीतरके विषको निकाल फेंकना चाहती है। इस विषके द्वारा शरीरके किसी भी यन्त्रके आक्रान्त रहनेपर उस यन्त्र विशेषका रोग होता है।

यूरिक एसिड विष जब तक सन्धिके भीतर जमा रहता है, वह दर्द नहीं करता, किन्तु जब रक्तके स्रोतमें उतर आता है, तभी दर्द शुरू हो जाता है (Lewellys F. Barker, M. D.—Treatment of the Commoner Diseases, P. 265)।

इसी प्रकार शरीरमें जमा विजातीय पदार्थ जब तक शरीरके अन्दर सुप्तावस्थामें पड़ा रहता है, तब तक वह मालूम नहीं पड़ता। किन्तु जब प्रकृति अपने घरको साफ करनेके लिये, इसे बाहर निकाल फेंकनेके लिये, रक्त स्रोतमें डाल देती है, तभी विभिन्न प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अथवा प्रकृति घरको परिष्कार करनेके लिये ही सारे रोगोंकी सृष्टि किया करती है।

यद्यपि अपने किये हुए पापके बोझको हम लोग सदा ढोते रहते हैं, पर हमेशा अपने स्वेच्छाकृत अपराधके कारण ही हमारे शरीरमें रोगकी वेदी तयारी होती है—यह बात नहीं। अधिकांश अवस्थामें तो स्वास्थ्यके नियमोंकी जानकारीका अभाव ही हमारे शरीरमें विश्रृंखलता उत्पन्न करके हमारे शरीरको बोझिल बना देता है। किन्तु प्रकृति बड़ी ही कठोर शासिका है। उसके कानूनमें क्षमाके लिये स्थान नहीं है। कानूनकी गैर-जानकारी दण्डसे मुक्ति दिलानेमें कभी सहायता नहीं पहुँचाती। हमारे स्वेच्छा या अनिच्छासे की गई भूलोंके फलस्वरूप जब कभी भी शरीरमें अधिक मात्रामें दूषित और विषैला पदार्थ जमा हो जाता है, तब प्रकृति कड़े विधानका सहारा लेकर शरीरकी सफाई करना चाहती है।

कभी-कभी इन दूषित पदार्थोंको भस्म कर डालनेके लिये प्रकृति शरीरमें खूब तेज तापकी सृष्टि करती है। इसी तापको हम लोग बुखार कहते हैं। शरीरको विषसे रहित करनेके लिये बुखार ही प्रकृतिका सबसे बड़ा साधन है। ज्वर उत्पन्न करके प्रकृति शरीरके विकारको जला डालती है और उसे गलाकर विभिन्न मार्गोंसे निकाल फेंकती है। बुखारके समय

रोगीका प्रश्वास दुर्गन्ध करता है, इसका यही कारण है कि प्रकृति निश्वासके साथ बहुत विष बाहर निकाल फेंकती है। इसी कारण बुखारमें पेशाब गदली, पीली तथा दुर्गन्धियुक्त होता है। रोगीके शरीरसे भी एक प्रकारकी बदबू निकलती है। यह सब बातें प्रमाणित करती हैं कि प्रकृति घरकी सफाई कर रही है। अंतमें जब खूब पसीना निकलता है, तो हम समझते हैं कि प्रकृति अपने काममें सफल हुई है। इस प्रकार लोम-कूपोंकी राह जब प्रकृति शरीरमें इकट्ठे विषको निकाल फेंकनेमें सफल होती है, तो ज्वर अपने-आप उतर जाता है।

कभी-कभी प्रकृति बिल्कुल दूसरे ही उपायसे शरीरके विकारको निकाल फेंकना चाहती है। कभी-कभी शरीरमें, खासकर पेडूमें जब काफी मात्रामें दूषित पदार्थ इकट्ठा हो जाता है, तब प्रकृति नीचेके अपने स्वाभाविक मार्गसे ही विकारको निकालती है। तब हम लोग इसीको डायरिया या आंव आदि विभिन्न रोग कहा करते हैं।

कभी-कभी प्रकृति श्लेष्मा (खंखार-थूंटा आदि) के रूपमें शरीरके विकारको बाहर निकालती है। इसी प्रकार सर्दी आदि विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं।

कभी-कभी प्रकृति शरीरमें जमा रोगके विषको चमड़ेकी राह निकालनेकी कोशिश करती है। तब प्रकृतिके भार-रहित होनेकी विभिन्न पद्धतिके अनुसार उसे फोड़ा, फुंसी, घाव, चेचक, निकसारी आदि विभिन्न नाम देते हैं।

अतः जो कोई भी रोग क्यों न हो, उसका नाम हम चाहे ज्वर कहें, डायरिया कहें, फोड़ा, फुंसी बोलें—उनका प्रकाश-भेद अलग-अलग होनेपर भी मूलतः वे सभी एक ही रोग हैं—सभी शरीरकी दोषपूर्ण अवस्थाके विभिन्न प्रकाश मात्र हैं। शरीरमें दूषित पदार्थका रहना ही सभी रोगोंका मूल कारण है और इस कारणको दूर करनेकी प्रकृतिकी विभिन्न चेष्टाका ही नाम विभिन्न रोग है।

इसी प्रकार सभी नई बीमारियाँ (acute disease) उत्पन्न होती हैं। इसके बाद बार-बार रोगको दवा देनेके फलस्वरूप अथवा अन्य कारणोंसे जब शरीरकी जीवनी शक्ति क्षीण हो जाती है और नया रोग उत्पन्न करनेकी प्रकृतिकी जब शक्ति कमजोर पड़ जाती है, तब विभिन्न पुराने रोगों (chronic diseases) की सृष्टि होती है। इसी प्रकार उन्माद रोग, हृदयकी बीमारियाँ और कैंसर आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

[४]

कुछ लोगोंका मत है कि प्रायः सभी रोग विभिन्न रोगोंके कीटाणुओंसे उत्पन्न होते हैं। यदि चेष्टा करके इन कीटाणुओंसे दूर रहा जाय, तो सभी प्रकारके रोगोंसे मुक्ति मिल सकती है।

किन्तु दुःखका विषय है कि उन कीटाणुओंसे कभी दूर रहा नहीं जा सकता। संसारमें जितने भी प्रकारके रोगोंके कीटाणु विद्यमान हैं, वे सभी स्वस्थ शरीरमें भी पाये जाते हैं। तो भी वे शरीरका कुछ भी बिगाड़ नहीं करते।

एक प्रसिद्ध फरांसी जीवाणु-विद्या-विशारद कहते हैं कि, दो महीनेके एक बच्चेके मुखमें डाक्टरोंमें बतलाये प्रायः सभी रोगोंके कीटाणु उन्होंने पाये, पर फिर भी वह बच्चा स्वस्थ था।

फ्रांसके एक दूसरे डाक्टरने इन्टरनेशनल ट्यूबरक्लोसिस कांग्रेसका (International Tuberculosis Congress) रोमके अधिवेशनमें कहा था कि उन्होंने सैकड़े ९५ छात्रोंके शरीरमें यक्ष्माके कीटाणु पाये हैं।

सच पूछा जाये तो एक भी ऐसा आदमी नहीं है, जिसके शरीरमें विभिन्न रोगके जीवाणु न हों। किन्तु फिर भी उनसे किसीका कुछ अनिष्ट नहीं होता।

बाहरसे भी यदि कीटाणु शरीरमें प्रवेश करें, तौभी शरीरका कुछ

अनिष्ट संभव नहीं। वियेनाके सुप्रसिद्ध डाक्टर और प्रोफेसर पेथेन कोफ़र एक समय अपने छात्रोंके सामने एक ग्लाससे अंगनृत्य (chorea) रोगके लाखों कीटाणुओंको निगल गये। किन्तु इससे उनका कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ (G. S. Kikla—Natural Ways of Cure, p. 14-15)।

इसके बाद कई स्थानोंमें इसी प्रकार कीटाणुओं द्वारा परीक्षा की गयी। जर्मनीके एक प्रोफेसर (Dr. Pentenkoffer of Munich) ने एक दिन हैजा रोगके कई लाख जीवाणु पीकर लोगोंको देखा दिया कि, कीटाणुओंके पेटके भीतर जानेसे कुछ भी नहीं होता। इसके कुछ दिन बाद और एक दूसरे डाक्टर (Prof. Emmrich) ने हैजाके लाखों कीड़ाओंसे पूर्ण जल (culture) पान कर लिया। इससे उनका कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ।

अंतमें डा० टमास पावेल (Dr. Thomas Powell) ने डाक्टरोंको अपने शरीरमें विभिन्न रोगोंके कीटाणुओंको इन्जेक्ट करनेके लिये आह्वान करके यह साबित कर दिखाया कि कीटाणुओंके सिद्धान्त कितने अतिरंजित आधारपर स्थिर हैं। डाक्टरोंने उनके शरीरमें बार-बार डिपथिरिया, टायफायड, कैंसर और यक्ष्माके कीटाणुओंके इन्जेक्शन दिये, किन्तु उनसे उनका कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ (James Raymond Devereux—Eating to Banish Disease, p. 90-91)।

इससे यह मान लेना कि किसी रोगके कीटाणुओंके आक्रमण करने ही पर हम लोग बीमार पड़ते हैं—यह बात नहीं। जब तक शरीर विशुद्ध रहता है एवं उसके फलस्वरूप रोगके प्रतिरोध करनेकी शक्ति (vital resistance) रहती है, तब तक किसी भी रोगके कीटाणु शरीरमें कुछ हानि नहीं पहुँचा सकते। पर जब काफी मात्रामें दूषित पदार्थ शरीरमें जमा

रहता है और इस विजातीय द्रव्यके कारण खून विषाक्त हो जाता है, उसी अवस्थामें विभिन्न रोगके कीटाणु अपना असर दिखाते हैं। ऐसी हालतमें शरीरमें रहनेवाले विभिन्न कीटाणु ही केवल नाशकारी हो जाते हैं, ऐसी बात नहीं, बल्कि शरीरमें प्रायः रोगके कीटाणु स्वतः पैदा होते हैं या यदि वे बाहरसे आते भी हैं तो उनकी वृद्धि भी तेजीसे होने लगती है। शरीरमें दूषित पदार्थके रहने ही पर ये कीटाणु बढ़ेंगे। कारण जहां गन्दगी रहती है, वहीं कीटाणु रहते हैं। शरीरमें कीटाणुओंकी वृद्धिकी इन अनुकूल अवस्था (predisposition) यदि न रहे तो कोई भी कीटाणु किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुँचा सकता।

लूईकूने कहा है कि—जंगलमें प्रायः देखा जाता है कि कोई पुराना वृक्ष कीटाणुओंसे जर्जरित होकर ध्वंस हो रहा है, पर उसके पास ही एक नया वृक्ष अपना मस्तक ऊँचा उठाये लहलहाता नजर आता है। जो कीटाणु उस वृक्षको इस प्रकार निस्तेज कर रहे हैं, वही लहलहाते वृक्षका कुछ भी अनिष्ट नहीं करते, इसका कारण क्या है? उत्तर स्पष्ट है। पुराने वृक्षमें कीटाणुओंको वृद्धि करने का साधन विजातीय द्रव्य प्रचुर मात्रामें वर्तमान है, जब कि नये वृक्षमें उसका सर्वथा अभाव है। नये वृक्षपर वे कीटाणु आते हैं, पर वहां उनकी वृद्धि नहीं हो सकती। इसी कारण नये वृक्षका अनिष्ट भी उनके द्वारा सम्भव नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रोग-चिकित्सामें कीटाणुओंका नाश करना उतना आवश्यक नहीं, जितना शरीरको विजातीय द्रव्यसे मुक्त रखना आवश्यक है। क्योंकि उस अवस्थामें हम रोगके मूलपर ही कुठाराघात करते हैं। यदि शरीर दूषित पदार्थसे रहित होगा, तो रोगाणुओंके शरीरमें प्रवेश करनेपर भी उनकी वृद्धि नहीं होगी और वे मारात्मक रूप नहीं धारण कर सकेंगे। अतः उनसे कुछ क्षति नहीं होगी।

इस इकट्ठी हुई दूषित पदार्थसे यदि देहको साफ न किया जाय, तो किसी भी रोगकी चिकित्सा नहीं हो सकती। भीतरी विकारको उसी रूपमें भीतर ही रहने देकर बाहरसे दवाइयोंका सेवन करनेसे रोगके लक्षण कुछ समयके लिये, केवल-मात्र दब जाते हैं, पर आदमी नीरोग तो तभी हो सकता है, जब कि रोगका मूल कारण विनष्ट हो।

एक आदमीके घरमें गन्दगी इकट्ठी हो गयी। उसमें से दुर्गन्धित गैस निकलने लगी। उसने कुछ औषधियां और सुगन्धित चीजें लाकर उसपर डाल दीं। ऐसा मालूम पड़ने लगा कि गैस बन्द हो गया। पर कुछ दिन बाद उसमें से और भी बदबू निकलने लगी। गृहस्वामीने फिर पुरानी बात दुसरा औषधि द्वारा उसे दबा दिया। फलस्वरूप उसके सड़नेसे अनेक कीटाणु उत्पन्न हुए, मक्खियां भिनभिनाने लगीं। उसने फिर औषधिका प्रयोगकर उसे दबाया। पर अन्तमें घरकी अवस्था ऐसी हो गयी कि रोग की अपेक्षा औषधिकी ज्वाला ही इतनी तीव्र हो उठी कि उसकी यन्त्रणा असह्य हो गयी। तब उसकी आंखें खुलती हैं। वह शीशी-बोतल दूर फेंक कई बाल्टी पानी लेकर सारी गंदगी धो बहाता है। अब उसने देखा कि घरकी गन्दगीके साथ-साथ कीड़े गये, मक्खियोंकी भिनभिनाहट हटी और बदबूसे पिण्ड छूटा। जब रोगका कारण ही नष्ट हो गया, तब घरमें कीटाणुओं का रहना असम्भव हो गया।

डाबरमें मच्छड़ पैदा होते हैं। उसमें दवा डालकर अनेक मच्छड़ मारे जा सकते हैं। पर उससे नये मच्छड़ोंकी उत्पत्ति नहीं रुकती। किन्तु जिस स्थितिमें और जिन कारणोंसे मच्छड़ोंकी उत्पत्ति होती है, यदि वे कारण समूल नष्ट कर दिये जायें, तो मच्छड़ उत्पन्न ही न होंगे और उनका समूल नाश हो जायेगा। डाबरको ही यदि नष्ट कर दिया जाये, तो एक मच्छड़को मारे बिना ही समस्त मच्छड़ोंका उच्छेद हो जायेगा।

हमारे शरीरमें भी जो रोगके कीटाणु उत्पन्न होते हैं—उनकी वृद्धिके लिये अनुकूल परिस्थिति पहलेसे ही मौजूद रहती है। इसी कारण उनकी वृद्धि होती है। ऐसी अनुकूल परिस्थितिके रहनेकेही कारण विजातीय द्रव्यके तारतम्य या स्थानभेदके मुताबिक उससे भिन्न-भिन्न प्रकारके रोगके कीटाणु उत्पन्न होते हैं या वाहरसे आकर उसमें वृद्धि पाते हैं। पर जब विजातीय पदार्थ शरीरसे वाहर निकाल दिया जाता है, उसी समयसे रोगके कीटाणु और उनके साथ-साथ उनका विष भी चला जाता है।

साधारणतया प्रकृति मल, मूत्र, पसीना तथा निश्वासके द्वारा शरीरके भीतरका विष, विकार तथा कीटाणुओंको बाहर निकालकर इसे स्वस्थ रखती है। रोग होनेपर भी इन स्वाभाविक मार्गोंसे यदि हम विजातीय द्रव्यको बाहर निकाल फेंकें, तो रोग अच्छा हो जायेगा। वाष्पस्नान और धूपस्नान आदि द्वारा शरीरके विभिन्न भागोंमें संचित विजातीय पदार्थको गलाकर रोमकूपों तथा अन्य राहोंसे बाहर निकाल दिया जाता है। छोटी तथा बड़ी आंतोंमें जो मल जमकर प्रायः सभी विषोंके सूतिका-गृहका स्वरूप धारण करता है, उसे हिप बाथ (hip bath) और भीगी कमरपट्टी (wet girdle) आदिसे उस मलको बाहर निकाल देते हैं। काफी पानी पीकर मूत्रके साथ बहुत-कुछ विष निकाला जा सकता है। गर्म स्नान तथा ठंडा पानीसे स्नान एवं श्वास-प्रश्वासके व्यायाम आदिसे फुसफुसके विषको निकाल फेंकनेकी क्षमता बढ़ाई जा सकती है (J. H. Kellogg, M. D.—Rational Hydrotherapy, P. 972)।

जब प्रकृति इस विधिसे तथा और भी अन्यान्य प्रकारसे हल्की हो जाती है, तब शरीरमें किसी रोगका रहना असम्भव हो जाता है। कारण सारे रोग शरीरमें संचित विजातीय द्रव्यसे ही उत्पन्न होते हैं। दूषित पदार्थ जब शरीरसे निकल जाता है, तब जिस तरह बगैर ईंधनके आग नहीं जलती, उसी प्रकार रोगका भी स्वाभाविक तौरसे अन्त हो जाता है।

तृतीय अध्याय



कोष्ठ-शुद्धिके उपाय

[१]

एक समय अमेरिकाके कितने ही सुप्रसिद्ध चिकित्सक बड़ी अँतड़ीके मलके सम्बन्धमें गवेषणा कर रहे थे। बहुत दिन तक यह खोजका काम चलता रहा। अन्तमें क्रमशः २८४ शवोंकी परीक्षाके बाद उन लोगोंने इस विषयपर अपनी विस्तृत रिपोर्ट पेश की। ये सभी रोगी विभिन्न रोगोंसे मरे थे। डाक्टरोंने उनकी बड़ी अँतड़ीकी परीक्षा करके देखा कि २८४ लाशोंमें से २५६ की अँतड़ी सड़े, दुर्गन्धियुक्त तथा विकृत मलसे भरी पड़ी थीं। उनमें से किसी-किसीकी सड़ी अँतड़ी तो मलसे भरकर फूल उठनेके कारण दुगुनी मोटी हो गयी थी। परीक्षा करके देखा गया कि अधिकांशकी बड़ी आँतोंके भीतरका मल सूखकर इसके भीतरी दीवारसे स्लेटकी तरह कठोर होकर चिपक गया था। किन्तु आश्चर्यकी बात तो यह है कि मृत्युके पहले इन सभी रोगियोंका मल त्याग बन्द नहीं हो गया था। उन्होंने देखा कि, इस मलकी कठोर चिपटी हुई दीवारके भीतर कनिष्ट उँगली जैसा पतला एक छेद वर्तमान है और उसीसे होकर समय-समयपर मल कुछ बाहर निकला करता था। डाक्टरोंने उस मलकी दीवारको छुरीसे

तराशा। तब उन्होंने देखा कि इस कठोर सिमेंटकी तरह मलकी दीवारके भीतर छोटे बड़े कई प्रकारके कीड़े अपना घर बनाये निवास कर रहे हैं। किसी-किसी घरमें उनके अनेक अण्डे पाये गये। किसी-किसी बिल्के कीड़ोंने तो अँतड़ीको भीतरसे भंग कर दिया था, जिसके आस-पास सूजन हो गयी थी। इन रोगियोंमें से किसी-किसीको मलके साथ खून आता था (J. W. Wilson—The New Hygiene, P. 34-35)।

जिस सत्यका पता डाक्टरोंने लाशोंको चीरकर पाया, वह हममें से कितने चलते-फिरते व्यक्तियोंकी अवस्थासे भिन्न नहीं है (Ibid, P. 34)। हो सकता है कि बहुतोंकी अवस्था इतनी शोचनीय न हो, परन्तु रोज थोड़ा-थोड़ा मल निकलनेसे ही हमें यह न समझ लेना चाहिये कि, हमारी अँतड़ी दूषित मलसे भरी नहीं है (Charles A. Tyrell, M. D.—The Royal Road, 386 th. Edition, P. 21)। कोष्ठबद्धतासे अधिकांश रोग उत्पन्न होते हैं, केवल इतना ही नहीं, ऐसा कोई भी रोग नहीं, जिसकी तीव्रताको यह बढ़ा न देती हो। दोनों अँतड़ियोंको दोष-रहित कर देनेसे ही बहुत रोगोंमें आराम लाभ हो जाता है और हर रोगमें ही रोगीकी अवस्था इससे सुधरने लगती है। इस कारण जो रोग भी क्यों न हो, पहले अँतड़ियोंको शुद्ध कर लेना परम आवश्यक है।

कोष्ठ-शुद्धिके लिये अनेक विधान हैं, परन्तु इसके लिये हिपबाथ (कटि-स्नान) सर्वश्रेष्ठ साधन है। दोनों प्रकारकी अँतड़ियोंको साफ तथा निर्दोष करने एवं उन्हें स्वाभाविक अवस्थामें लानेके लिये हिपबाथसे बढ़कर कोई भी दूसरा तरीका नहीं। शरीरपर किसी भी प्रकारका दबाव डाले बिना ही बिल्कुल स्वाभाविक और स्थायी रूपसे यह कोष्ठको शुद्ध कर देता है।

हिपवाथ लेनेकी विधि

किसी गमले या वर्तनमें स्वच्छ पानी भरकर उसमें इस प्रकार वैठा जाये कि पैर वाहरको रहें, फिर पेटका निचला भाग (पेड़ू आदि) काफी देर तक रगड़ता रहे। यही हिपवाथ कहलाता है।

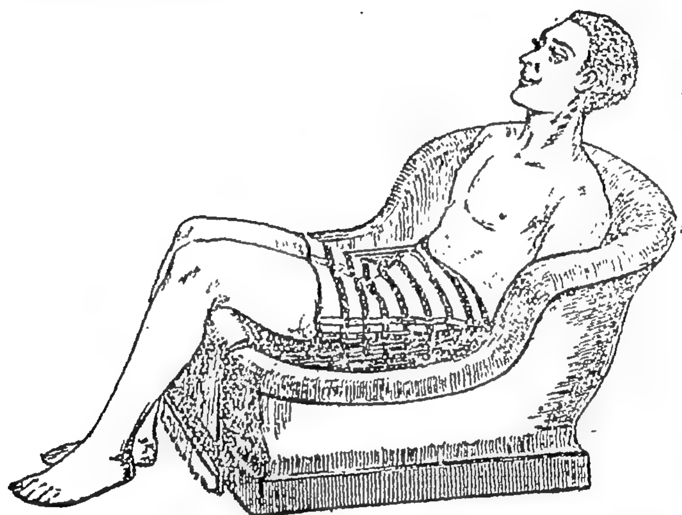
किसी प्रकारके सुविधाजनक वड़े गमले या वर्तनके भीतर हिपवाथ लिया जा सकता है। वर्तन मिट्टी, काठ, पीतल या किसी पदार्थका हो सकता है। वर्तन इस प्रकारका होना चाहिये कि उसमें उठंगकर आरामसे वैठा जा सके और वह इतना वड़ा हो कि जलमें वैठनेपर रोगीकी नाभि तक जलमें डूबी रहे।

पहले गमलेमें पानी भरकर पैर वाहर करके इस प्रकार वैठना चाहिये कि जंघा तथा नाभि तक जलमें डूवा रहे और पैर तथा नाभिके ऊपरका भाग पानीके वाहर रहे। टवमें वैठते समय इस वातका ध्यान रहना चाहिये कि दोनों पांव इस प्रकार आरामसे टिका रहें कि गमलेके ऊपरी भाग पैरोंमें इस प्रकार गड़े नहीं कि जिससे उनमें रक्तका आवागमन वन्द हो जाये। इसलिये पैरोंको किसी छोटी चौकी या ऊँचे पीढ़ेपर आरामसे ऊँचा करके रखा जा सकता है।

हिपवाथके लिये वैठनेके पहले शरीरका जो भाग पानीसे वाहर रहे, उसमें से सिर और मुँहको छोड़कर वाकी अंशको अच्छी तरहसे ढक लेना ही उचित है। साधारण अवस्थामें किसी कम्वलसे शरीरको ढक लेनेसे काम चल सकता है। अथवा किसी वड़ी चादरसे सारे शरीरको ढक लिया जा सकता है।

कटिस्नान करते समय पाकस्थलीसे लेकर गुह्यद्वार तक सभी स्थानोंको तेजीसे लगातार खूव रगड़ते रहना चाहिये। यह रगड़ना अत्यावश्यक है। इस वाथमें चूँकि लगातार निम्न भागको रगड़ते रहते हैं, इसीसे

अंगरेजीमें friction hip-bath घर्षणयुक्त कटिस्नान कहते हैं। हिपवाथमें बैठकर ऊपरी भागको अगल-बगल यानी दाहिनेसे वायीं ओर और वायेंसे दाहिनी ओरको रगड़ना चाहिये। नाभिसे नीचेके भागको ऊपरसे नीचेकी ओर रगड़ना चाहिये। रगड़ते समय किसी कड़ा तौलिया या गमछासे ही रगड़ना उचित है।



हिपवाथ (Hip bath)

हिपवाथमें बैठते समय सदा पीछेसे उठंग कर बैठना आवश्यक है। ऐसा करनेसे इसके साथ-साथ थोड़ा-सा मेरुदण्ड-स्नान (spinal bath) भी हो जाता है। मेरुदण्डके भीतरकी स्नायुओंके शीतल होनेके कारण इस शीतकी प्रतिक्रियासे सारे शरीरमें एक प्रकारका उद्दीपनयुक्त प्रकम्प-सा होता है और इसके फलस्वरूप रोगोंके प्रतिरोधकी शक्ति बढ़ती है।

रखना चाहिये। इसके बाद एक बाल्टीमें जल रखकर तौलिया डुबा-डुबाकर पेड़ू, नाभी आदिको रगड़-रगड़कर शीतल करना जरूरी है। इससे हिपवाथका काम कुछ अंशमें चलाया जा सकता है।

हिपवाथ लेनेके आध घंटेके भीतर दिन या रातका प्रधान भोजन नहीं करना चाहिये। दिन या रातके प्रधान भोजनके ४ घंटेके भीतर भी हिपवाथ नहीं लेना चाहिये; क्योंकि इस हालतमें भोजनके पचनेमें बाधा पड़नेकी सम्भावना होती है।

साधारण अवस्थामें दिनमें एक बार हिपवाथ लेना पर्याप्त है। किन्तु पुराने रोगोंमें दिनमें दो बार तथा बुखारमें तीन बार तक लेना चाहिये।

[२]

हिपबाथ से लाभ

हिपवाथका प्रधान गुण यह है कि यह पेटके सभी विकारों को दूरकर स्थायी रूपसे कोष्ठ-शुद्धि करनेमें अपना सानी नहीं रखता।

घर्षणके साथ हिपवाथ के फलस्वरूप पहले पेड़ूसे खून सरक जाता है। जब रक्त चला जाता है तब पेड़ूस्थित अँतड़ियां भीतरके दूषित पदार्थको बाहर ला देती हैं। कुछ देर बाद नया रक्त शरीर निर्माणकारी नया मसाला लेकर उस स्थानपर आता है। इस कारण कुछ दिनोंतक इस प्रकार रगड़-रगड़कर हिपवाथ लेनेसे अँतड़ियोंकी मांस-पेशियां इतनी सबल बन जाती हैं कि वे स्वयं प्रतिदिन दो बार मलको ठेलकर बाहर निकाल फेंकती हैं।

हिपवाथसे कोष्ठ-शुद्धि होनेका सर्व प्रधान कारण यह है कि इससे पेड़ूस्थित स्नायुकी स्वाभाविक अवस्था लौट आती है। पेड़ूपर शीतलताके प्रभावसे पहले अँतड़ियां कुछ संकुचित होती हैं, किन्तु उसकी प्रतिक्रियासे ये इस प्रकार

सबल और सतेज हो जाती हैं कि फिर अँतड़ियोंमें मल जमा हो ही नहीं सकता। इस प्रकार कुछ दिनों तक नियमित रूपसे हिपबाथ लेनेसे स्नायुतन्तु स्थायी रूपसे बलवान बन जाते हैं।

किसी किसीके पेटमें इतनी गर्मी रहती है कि, वह मलके सारे रसको सोख लेती है और इसे सुखाकर जला डालती है। इससे मल आँतोंमें सूखकर अत्यन्त कड़ा हो जाता है। इसी अवस्थाका नाम कोष्ठ-कठोरता है। रगड़-रगड़कर हिपबाथ लेनेसे यह गर्मी पानीमें निकल जाती है। उस अवस्था में मल कठोर नहीं हो सकता।

हिपबाथसे कोष्ठ-शुद्धि होनेका प्रधान कारण यह है कि, इससे यकृत (liver), क्लोम (pancreas) और अंतड़ियोंके रसोंमें वृद्धि होती है। रोज यकृतसे तीन पावसे अधिक तथा क्लोमयंत्रसे डेढ़ पाव रस निकलता है। इन रसोंके पर्याप्त मात्रामें निकलनेसे कभी भी कोष्ठबद्धता नहीं रह सकती।

आँतोंकी हालत कितनी भी खराब क्यों न हो, कुछ दिन तक दोनों वक्त हिपबाथ लेनेसे भारीसे भारी असाध्य रोगीका भी प्रतिदिन दो बार पेट साफ होने लगेगा। हेमन्तकुमार देवाशी नामक बड़े बाजारके एक प्रसिद्ध व्यापारी सात वर्ष पूर्व सिरोभंग रोगसे आक्रान्त हुए थे। इस रोगके दौरेसे वे बच तो गये; पर उनका आधा अंग पक्षाघात (लकवा) से सुन्न हो गया। इसके साथ-ही-साथ मल त्याग करनेकी उनकी स्वाभाविक शक्ति भी नष्ट हो गयी थी। इसलिये वे रोज डूस लिया करते थे और हर हफ्ते जुलाब लेते थे। इसके सिवा उन्हें किसी भी उपायसे पाखाना होता ही नहीं था। मैंने उन्हें भीगी चादरका लपेट (wet sheet pack) देकर रोजाना हिपबाथ दिलाना शुरू किया तथा खानेका पथ्य निश्चित कर दिया। इसके चार दिन बाद उन्हें सर्व प्रथम सात वर्ष बाद आपसे आप पाखाना हुआ। और

इसके कुछ दिन बाद ही आँतोंकी हालत बिल्कुल स्वाभाविक हो गयी। वे बड़े कष्टसे कुछ कदम सरक सकते थे। दो-तीन महीने तक जल-चिकित्सा करानेके बाद ही वे बालीगंजके धाकुरिया लेकके आधे तक टहलने लगे। उनका ब्लड प्रेसर भी अधिक था। कुछ दिन इस चिकित्साके चालू रहनेपर रक्तका दवाव भी कम हो गया। इसके सिवा उनकी बोलनेकी शक्ति भी प्रायः नष्ट-सी हो गयी थी। काफी मिहनतके बाद बहुत देरसे उनकी एक-दो बातें समझमें आ पातीं। स्वास्थ्यमें सुधार होनेके साथ-साथ उनके कण्ठका स्वर भी ठीक होने लगा। हिपबाथके साथ-साथ नियमित रूपसे उन्हें मृदु वाष्प-स्नान, भीगी चादरका लपेट, गीली कमर पट्टी, धूप-स्नान तथा पेड़ू, लिवर (यकृत) और मेरुदण्ड आदिमें गरम ठंडी पट्टी (alternate compress) का व्यवहार किया जाता था।

हिपबाथसे केवल पेट साफ होता है, यही बात नहीं। यह यकृत, क्लोम तथा आँतोंका रसस्राव (secretion) बढ़ाता है और खाद्य पदार्थसे रस खींचनेकी ताकतको भी बढ़ा देता है। इस प्रकार इससे खाली कोष्ठ ही साफ नहीं होता, बल्कि यह अजीर्ण रोगको भी दूरकर पाचनशक्तिको बढ़ाता है। पेटकी बीमारीमें यदि पेट गरम रहे, तो दो-तीन बार इस बाथको लेनेसे कठिन-से-कठिन उदर-कष्ट भी अच्छा हो जाता है। मन्दाग्निमें कुछ दिन हिपबाथ चलानेसे दोनों प्रकारकी आँतें परिष्कृत हो जाती हैं, फिर भूख अपने-आप लगने लगती है।

आँतोंकी प्रायः सभी बीमारियां स्वाभाविक ढंगसे इसके द्वारा अच्छी हो जाती हैं। धाकुड़ाके मारवाड़ी व्यवसायी श्रीयुक्त बालमजीलालजी लड़कपनसे पेटकी विभिन्न बीमारियोंसे आक्रान्त थे। साधारणतया सात-सात आठ-आठ दिन तक उन्हें पाखानेकी हाजत नहीं लगती थी। फिर कई दिनों तक केवल आंव गिरता था। अन्तमें भीतरसे बहुत मल आता था; पर वह भी

स्वाभाविक ढंगसे नहीं। एक उंगली भीतर घुसाकर काफी देरमें जरा-जरा करके मल निकाला जाता था। वैद्यक, डाक्टरी, होमियोपैथी आदि चिकित्सा कराकर वे मेरे पास आये। उनके पास एक वही थी, जिसमें शुरूसे अन्त तक के रोगका दैनिक विवरण लिख रखा था। इसका विवरण इतना अधिक हो गया था कि यदि वह पुस्तकाकार छपाया जाता, तो दो सौ पृष्ठकी पुस्तक तैयार हो जाती। मैंने थोड़ा वाष्प-स्नानका प्रयोग करके रोज हिपबाथकी व्यवस्था करा दी। साथ ही साथ भीगी कमरपट्टी (wet girdle), पेड़ूकी गरम-ठंढी पट्टी (alternate compress) और खाने-पीनेके पथ्यकी व्यवस्था कराई। इसी प्रकारकी चिकित्साके द्वारा उनका बहुत दिनोंका साथी आंव जाता रहा और दो सप्ताहमें ही उन्हें नियमित रूपसे पाखाना होने लगा।

हिपबाथ लेनेसे मुख्य लाभ यह होता है कि इसके द्वारा अंतड़ियोंके भीतर मलका सड़ना (intestinal putrefaction) शीघ्र बन्द हो जाता है। क्योंकि कीटाणुओंकी वृद्धि रोकनेमें शीतल जल अपनी सानी नहीं रखता। हिपबाथ लेनेसे यकृत आदिके रसस्रावमें वृद्धि हो जाती है और उससे खाये हुए पदार्थ खराब नहीं हो सकती है। जब अँतड़ियोंके भीतर खाये हुए पदार्थका सड़ना बन्द हो जाता है, तब विषके स्थानपर यहांसे अमृत रस सारे शरीरमें प्रवाहित होने लगता है। फलस्वरूप कुछ दिनों तक हिपबाथ लेनेके बाद शरीरमें गजबकी स्फूर्ति मालूम पड़ती है और स्वास्थ्य क्रमशः सुधरकर नियमित रूपसे विकसित होने लगता है।

हिपबाथका प्रयोग यद्यपि एक निर्दिष्ट भागपर होता है, पर स्नायविक प्रतिक्रियाके कारण इसका प्रभाव सारे शरीरपर पड़ता है (J. H. Kellogg, M. D.—Rational Hydrotherapy, P. 763)। इसी कारण हिपबाथ लेनेसे अनेक रोगोंसे सदाके लिये पिण्ड छूट जाता है।

ज्वरमें यदि तीन वार हिपवाथ लिया जाय, तो अधिकांश ज्वर आसानीसे उतर जाता है। शरीरकी गर्मीको कम करके यह ज्वर नहीं घटाता, वल्कि इससे सारे स्नायु इस प्रकार सतेज हो जाते हैं कि, वे रोगके विषको ठेलकर वाहर निकाल देते हैं। इसी कारण वुखार स्वयं उतर जाता है।

जोरके सिर-दर्दमें हिपवाथ जादूका काम करता है। इसी कारण सिरमें ठंडक पहुँचाकर पैरमें गर्मी पहुँचाना आवश्यक होता है। इससे सिरके खूनका दौरान नीचेको हो जाता है और सिर-दर्द आसानीसे छूमन्तर हो जाता है।

जिनका शरीर क्रमशः सूखता जाता हो, उनके लिये हिपवाथ वड़ा ही हितकर है।

जिनके सिरके वाल गिरकर गंजापन हो गया हो, वे यदि स्नानके पूर्व रोज कटि-स्नान करें, तो आंतोंकी गर्मी निकल जायेगी। अतः वालोंका गिरना भी रुक जायेगा ; क्योंकि आँतों द्वारा सिर पर गर्मी नहीं पहुंचेगी। नियमित रूपसे इस प्रकार स्नान करनेसे फिर नये वाल उगने लगेंगे।

कमल रोग या पीला रोग (jaundice) में गर्म जलसे डूस लेनेके वाद या वाष्प-स्नान (steam bath) लेकर शरीरके गरम रहते ही हिप-वाथ लेनेसे पित्त कोषसे काफ़ी मात्रामें पित्त अँतड़ियोंमें चला आता है। फल-स्वरूप वीमारी वड़ी जल्द भग जाती है।

स्त्रियोंके गर्भपात होनेके लक्षण दिखाई देनेपर यदि २० से ३० मिनट तक हिपवाथ लेना शुरू किया जाय, तो गर्भपात रुक सकता है। पर इस हालत में सावधानीसे पेटको हल्के रगड़ना चाहिये।

जिन स्त्रियोंको प्रसवके समय वहुत कष्ट होता हो, यदि प्रसवके कुछ महीने पहलेसे ही वे नियमित रूपसे हिपवाथ लिया करें, तो प्रसव विना

किसी कष्टके और निरापद भावसे होगा) F. M. Rossiter, B S., M. D.—The Practical Guide to Health, P. 207)। मैंने एक गर्भिणीको इसी प्रकार नियमित रूपसे हिपबाथ लेनेकी व्यवस्था की थी। वे प्रसवसे चार महीने पहलेसे रोज स्नानसे पहले हिपबाथ लिया करती थीं। परिणाम यह हुआ कि, जब सन्तान हुई, तो उनकी दाई सोई पड़ी थी। बच्चा होनेके बाद उन्होंने ही दाईको पुकार कर जगाया।

पुराने स्त्री-रोगमें जब जरायु आदि भीतरसे बाहर आते मालूम पड़ते हों, तब यह अद्भुत लाभ पहुंचाता है।

स्त्रियोंके पुराने रक्त-स्राव रोगमें भी इससे बड़ा फायदा पहुंचता है। सच पूछा जाय, तो हिपबाथ समस्त स्त्री-रोगोंकी रामबाण अव्यर्थ औषधि है। In the female troubles the cold hip bath has preserved many sufferers from surgeon's knife. स्त्री-रोगोंमें कटि-स्नान (hip bath) बहुत स्त्रियोंको डाक्टरोंके नस्तरसे बचाया है। (W. R. Latson, M. D. Common-Disorders, P. 322.)।

मूत्राशय (bladder), आंत और जरायु आदि रोगोंमें तथा अर्श वगैरह से जब ज्यादा रक्त-स्राव होता है, तब हिपबाथ बड़ा ही लाभ पहुंचाता है। पर इस अवस्थामें हिपबाथ लेते समय दोनों पैरोंको अवश्य गर्म पानीमें डुबाये रखना चाहिये। इससे पेड़स्थित अधिक खून पैरोंमें उतर आता है और ठंडक पाकर पेड़ू संकुचित होने लगता है, जिससे कि रक्त स्राव बन्द हो जाता है। अंग्रेजीमें इसे derivative treatment अर्थात् रोगकी गति घुमा देना कहते हैं।

बिना दर्दके पेड़ूकी किसी भी पुरानी जलनमें यह विशेष लाभदायक है। जननेन्द्रियकी दुर्बलता तथा वीर्यके पतलेपनको यह दूर करता है, किन्तु

स्तम्भनके अभाव (retentive power) के साथ-साथ यदि वीर्य पतला पड़ गया हो, तो खूब ठंढे जलमें कदापि हिपवाथ नहीं लेना चाहिये।

इससे जीवनी शक्ति इस कदर वढ़ती है कि, नियमित रूपसे हिपवाथ लेनेसे पक्षाघात तथा कैंसर तकका वढ़ना रुक जाता है।

बहुतसे बच्चोंको सोये-सोये विस्तरपर ही पेशाव हो जाया करता है। उन्हें यदि कटि-स्नान कराया जाय, तो उनकी यह बीमारी दूर हो जाती है।

स्मरणशक्ति, धीरज एवं मस्तिष्ककी शक्तिको वढ़ानेमें कटि-स्नान बेजोड़ है। लन्दनके एक प्रसिद्ध पादरी रोज लोगोंके सामने जाने के पहले थोड़ी देरके लिये कटि-स्नान कर लिया करते थे। वे कहा करते थे कि, एक वार थोड़ी देरके लिये कटि-स्नान कर लें तो, कितने भी आदमी उनके सामने क्यों न आवें, उनके साथ वे धर्यके साथ वात कर सकते हैं। अनिद्रा, चिड़चिड़ा स्वभाव, स्नायविक दुर्वलता (neurasthenia), मृगी, उन्माद आदि सभी प्रकारके स्नायविक रोगोंमें कटि-स्नान वड़ा ही लाभप्रद है।

कटि-स्नानके विषयमें लूई कूने साहवका वार-वार यही कहना है कि, कोई भी ऐसा रोग नहीं है, जिसमें कटि-स्नान फायदा न पहुँचाता हो। लूई कूने साहबके इस कथनमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। क्योंकि चरकका भी मत है कि, पेट साफ रहनेसे जठराग्नि तेज होती है, सभी प्रकारकी बीमारियां शान्त होती हैं, शरीरकी स्वाभाविक क्रिया चलती है, इन्द्रियां, मन और वुद्धि प्रसन्न रहती हैं एवं वल तथा सामर्थ्य वढ़ता है (सूत्र स्थानम्, १६।९)।

कोष्ट-शुद्धिके लिये भीगी कमरपट्टी (wet girdle), डूस, पेड़ू और लिवरको मलना, पेड़ूकी कसरत और फलाहार आदि विशेष लाभदायक हैं। लेकिन हिपवाथ पर इसी कारण जोर दिया जाता है कि शरीरके अन्यान्य यंत्रोंको

चङ्गा बनानेके साथ-साथ पेटका सुधार करनेमें इससे बढ़कर और कुछ भी नहीं है। भीगी कमरपट्टी भी इतनी मुफीद नहीं।

तो भी कई बीमारियोंमें हिपबाथका प्रयोग नहीं करना चाहिए। हृदय रोगकी खराब हालतमें, अन्त्रपुच्छ, डिम्बकोष, जरायु, मूत्राशय तथा बड़ी अँतड़ी, पेड़ू और जननेन्द्रियोंके विभिन्न यन्त्रोंकी सूजनमें (appendicitis, ovartis, metritis, cystitis and colitis), न्यूमोनिया आदि फुसफुसके जोरदार रोग तथा साइटिका (sciatica) में कभी भी हिपबाथ नहीं लेना चाहिये।

[३]

डूस

जब तुरंत शरीरमें से दूषित मल निकाल बाहर करनेकी जरूरत हो, तब डूस लेना नितान्त आवश्यक है। जुलाब लेनेसे शरीरको जो हानि पहुँचती है, पर डूस लेनेमें यह बात नहीं। साथ ही बड़ी अँतड़ीमें इकट्ठा मल बहुत जल्द निकलकर शरीरको हल्का कर देता है।

अगर पानी और शरीरका ताप समान हो, तो डूससे बहुत फायदा होता है। इससे भी अधिक लाभ तब होता है जब साधारण शीतल जल (७०°) काममें लाया जाये। गरम पानीका व्यवहार करनेसे आँतें बहुत कमजोर पड़ जाती हैं। इसके दो-एक दिन बाद तक मलका स्वाभाविक वेग नहीं होता। अगर लगातार गरम पानीका ही व्यवहार किया जाये, तो आँतोंकी झिल्लियां ढीली पड़ जाती हैं और कई अवस्थाओंमें तो उनका आकार ही बढ़ जाता है। बहुत लोगोंका यह कहना है कि डूस व्यवहार करनेसे ऐसी आदत पड़ जाती है कि इसके बिना मल त्याग होता ही नहीं। किन्तु जो सदा गरम जलसे लेते हैं, यह बात उन्हीं पर लागू होती है। यह डूस-व्यवहार

का दोष नहीं, बल्कि गरम जल व्यवहार करनेका दोष है। डूसमें शीतल जलका व्यवहार करनेसे यह अवस्था कभी नहीं आ सकती। ठंडे जलके व्यवहारसे मांस-पेशियों तथा स्नायुओंमें स्वाभाविकता आती है, क्योंकि इससे बड़ी अँतड़ीकी एक प्रकारसे कसरत हो जाती है। इसके फलस्वरूप कोष्ठ-बद्धता दूर हो जाती है (H. Illoway, M. D.—Constipation in Adults and Children, P. 270)। अर्थात् गरम जल जिस प्रकार अँतड़ियोंको कमजोर बनाता है, ठंडा पानी वैसे ही उसे बलवान बनाता है।

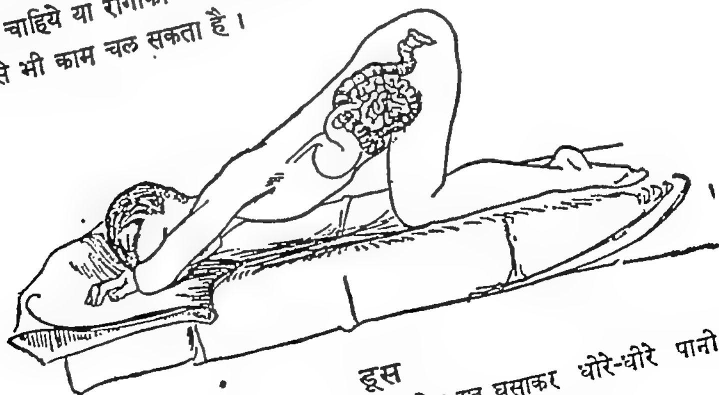
कुछ लोग डूसके पानीके साथ साबुन मिला देते हैं, लेकिन पानीके साथ ऐसी चीजोंको न मिलाना ही अच्छा है; क्योंकि साबुनके कितने ही जहरों को शरीर सोख लेता है। अगर रोगीको जोरको कब्जियत हो, तो साबुनके बदले पानीमें कुछ शहद या नीबूका रस मिला देनेसे काफी मल बाहर निकल आता है। किन्तु मधु हर हालतमें खांटी होना चाहिये। मधुके अभावमें नीबूको काममें लाना चाहिये। नीबू अँतड़ियोंके मलको निकाल फेंकनेकी शक्तिमें वृद्धि करता है तथा जो दूषित हालतपर कीटाणुओंको वृद्धि होता है, नीबूका रस वह हालत नष्ट कर देता है। (Sir William Howard Hay, M. D.—Health via Food, P. 219)।

काममें लानेके पहले डूस और उसकी नलीको खूब अच्छी तरह साफ कर लेना जरूरी है। अगर नलका पानी न मिले, तो पानीको खौलाकर ठण्डा कर लेना चाहिये। डूसको पलंगसे ऊँची एक जगहपर कीलीसे लटका देना चाहिये। डूसके अन्दर पानी भर उसमें से कुछ बाहर कर देना चाहिये। ऐसा करनेसे डूसकी नलीकी हवा बाहर निकल जाती है। अगर यह हवा रोगीके पेटके अन्दर चली जाती है, तो दर्द पैदा हो सकता है। इसीलिये

इसके अन्दर फिर पानी लेते समय उसमें काफी पानी होनेपर भी और पानी देना चाहिये, नहीं तो रोगीके पेटमें हवा घुस सकती है। इसका इस्तेमाल करनेके पूर्व क्याथिटरके सिरे और मलद्वारमें कुछ नारियलका तेल मल लेना चाहिये।

डूस लेनेका सबसे आसान तरीका यह है कि जांघोंको गिराकर बैठ करके सिरको एक हाथके ऊपर रख शरीरको त्रिभुजकी दो शिराओंकी तरह रखना चाहिये। इससे मलद्वार खूब ऊँचाईपर हो जाता है और पानी खूब आसानीसे अन्दर चला जाता है। डूस लेनेका यह तरीका खूब आसान और फायदेमन्द है। इस ढङ्गसे डूस लेनेसे मालूम भी नहीं पड़ता कि डूस ले रहे हैं। और पानी भी बिना किसी तकलीफके काफी मात्रामें अंदर पहुँच जाता है। इससे सारी आँत धुलकर साफ हो जाती है और रुका हुआ सारा मल उससे बाहर निकल आता है।

कमजोर रोगीको चौकी या दो बड़े तख्तोंपर दाहिनी बगल सुलाकर डूस दिया जा सकता है। पीछेकी ओर तख्तेको कुछ नीचे देकर थोड़ा ऊँचाकर लेना चाहिये या रोगीको पीठके सहारे चित्त सुलाकर नीचेमें एक तकिया रख देनेसे भी काम चल सकता है।



डूस

मलद्वारके अंदर क्याथिटरको एक या डेढ़ इञ्च घुसाकर धीरे-धीरे पानी

देना चाहिये । पानीको खूब जोरसे देनेके कारण रोगी ज्यादा पानी ग्रहण नहीं कर सकता। पानी जाते समय अगर जोरकी हाजत मालूम हो, तो थोड़े समयके लिये पानीको रोक देना चाहिये।

पहले दिन किसी भी हालतमें तीन पावसे अधिक जल नहीं ग्रहण करना चाहिये। इसके वाद क्रमशः जलकी मात्रा वढ़ाते-बढ़ाते सवा सेरसे हद डेढ़ सेर तक पानी पहुँचाना चाहिये (Yogi Ramcharaka—Rational Water-cure, P. 69)। इससे अधिक पानी हर्गिज नहीं चढ़ाना चाहिये। क्योंकि ऐसा होनेसे अँतड़ियोंको नुकसान पहुँच सकता है। डूस खरीदते समय कभी भी छोटा नहीं खरीदना चाहिये, क्योंकि उसमें वार-वार ज़ल ढालनेकी आवश्यकता पड़ती है तथा ऐसा करते वक्त वाहरसे हवाके घुस जानेका खतरा रहता है। इसी कारण तीन-चार पाइन्ट लायक़ डूस खरीदना चाहिये।

डूस लेनेके वाद ५ से १० मिनट तक पानीको पेटमें रखना वहुत अच्छा है। इसके वाद पाखानेके लिये वैठते ही सारा रुका हुआ मल हड़हड़ाता हुआ वाहर निकल जाता है। किन्तु पेटपर हाथ रखनेसे यदि पेट गरम मालूम पड़े, तव पाखाना रोकना उचित नहीं, तुरंत पाखानः हो लेना चाहिये, नहीं तो पेटमें पानी कुछ सूख जाता है और काफी मल नहीं निकल पाता। पाखाना होते समय पेड़ूको दाहिनी ओरसे वाईं ओरको अर्ध चन्द्राकार रूपमें वड़ी आंतके ऊपर मलते रहना चाहिये। ऐसा करनेसे वड़ी आंतका सारा विकार पानीके साथ वाहर निकल जाता है।

वड़ी आंतमें मलके अधिक दिनों तक जमा रहनेसे वह सड़ने लगता है और खूनके दौरानको हर घड़ी दूषित करता रहता है। ऐसी अवस्थामें इस प्रकारका डूस शरीरमें इकट्ठे विषके वोझको क्षण भरमें धो वहाता है।

वड़ी आंतका भीतरी हिस्सा समतल नहीं है। इसकी कई पर्त्तोंमें

बहुधा साल-भरसे ज्यादे समय तक मल सूखकर जमा होता जाता है और इस एकत्रित मलमें कई तरहके जीवाणु और कृमि मय अपने अण्डोंके रहने लगते हैं। डूसके पानीके साथ ये बाहर निकल आते हैं।

जब कभी बुखार आनेकी संभावना हो, उस समय एक डूस ले लेनेसे फी-सैकड़े ५० ज्वरोंके हमले व्यर्थ हो जाते हैं। किसी भी बीमारीमें पहले एक बार डूस लेनेके बाद इलाज शुरू किया जा सकता है। इससे किसी भी तरहकी हानि नहीं होती, बल्कि शरीरकी मुख्य मुख्य आँतोंसे कूड़ा और विकारको निकाल देनेसे रोगमें फायदा ही पहुँचता है।

पुरानी कब्जियतके रोगोंमें बीच-बीचमें ठंडे पानीका डूस लेनेसे बहुत फायदा होता है, क्योंकि ठंडा पानी बड़ी आँत और उसके भीतरकी श्लेष्मिक झिल्लीको मजबूत बनाता है और वे लीवरको उत्तेजितकर पित्तके वेगको बढ़ाता है।

डूसके लिये हर समय ठण्डे पानीका व्यवहार उचित होनेपर भी किसी-किसी समय गरम पानीका इस्तेमाल भी जरूरी होता है। बुखारकी पहली हालतमें अगर जाड़ा और कँपकँपी हो, तो गरम पानीका ही डूस देना ठीक है। ऐसी अवस्थामें ठंडे पानीका डूस भूलकर भी नहीं देना चाहिये। किन्तु जाड़ा और कंपनके बाद जब शरीरमें ज्वालाका प्रकोप होता है—शरीर का ताप बढ़ जाता है, तब ठंडे पानीका ही डूस लेना चाहिये। ज्वरकी ज्वाला को मिटानेका यह एक सुगम तरीका है।

पेडूमें जलन पैदा करनेवाले जिस किसी भी रोगमें गरम पानीका ही डूस देना सर्वथा उचित है।

हैजा और मियादी बुखार (टायफायड) में जब रक्तके विपाक्त हो जानेके कारण रोगीके संज्ञाहीन (collapse) होनेका भय हो, तो गरम पानीके डूसके समान और कोई भी उस समय उपकारी नहीं। इसके सिवा जब भी

चमड़ेका रंग फीका पड़ने लगे तथा नाड़ी दुर्वल हो जाये, तव काफी गरम जल (११०° से १२०° डिग्री) का डूस देना चाहिये। गरम डूसके वाद थोड़ी देरके लिये ठंडी मालिश (cold friction) का प्रयोग करनेसे मृत्युके मुखसे भी रोगोको वचाया जा सकता है।

स्त्रियोंके रजोधर्म बन्द होनेपर गरम पानीका डूस विशेष लाभदायक होता है। ऐसी अवस्थामें पानीको जरा अधिक देर तक पेटमें रखना चाहिये। दर्दके साथ रक्तस्राव तथा डिम्वकोषके रोगमें इससे अत्यन्त लाभ होता है।

प्रेसट्रेट ग्लैण्डके प्रदाहमें गरम पानीका डूस वड़ा ही लाभकारी है। गुर्दे (kidneys) जव मूत्र-निमार्ण-कार्यमें असमर्थ हो जाते हैं, तव एकसे तीन घण्टेके भीतर वार-वार गरम जलका (११०°—१२०°) डूस देकर वहुत निराश रोगियोंकी जीवन-रक्षा की जा चुकी है (Macfadden's Encyclopedia of Physical Culture, P. 1459)।

वहुत छोटे वच्चेको कभी शीतल जलका डूस नहीं देना चाहिये। उन्हें सदा उष्ण (खूव गरम नहीं) जलका डूस देना उचित है। वच्चोंको रेचक औषधियोंकी अपेक्षा यह वहुत ही अधिक गुणकारी है (F. M. Rossiter, M. D.—the Practical Guide to Health, P. 22.)।

दोपहर या रात्रिके भोजनके तीन घंटेके भीतर कभी भी डूस नहीं लेना चाहिये।

स्वस्थ रहनेकी हालतमें मल त्यागके लिये कभी भी डूसपर निर्भर नहीं रहना चाहिये। किन्तु कभी आवश्यकता मालूम होनेपर डूस लेकर हिप-वाथ आदिसे अँतड़ियोंको फिर स्वाभाविक अवस्थामें ले लेना उचित है। साथ ही पुराने रोगोंमें जव शरीर विषका कुण्ड वन जाता है, तव पेड़ूका मर्दन, हल्का वाष्प-स्नान, धूप-स्नान और शीतल घर्षण आदिके साथ-साथ थोड़ी देरके लिये प्रतिदिन डूसका व्यवहार करना आवश्यक है। यदि प्रवल तरुण रोग

(acute disease) हो, तो प्रतिदिन डूस लेना उचित है। क्योंकि शरीरके अंदर रोग-निराकरणकी जो प्रकृतिप्रदत व्यवस्था है, उसे उत्तेजित करके बड़ी अँतड़ीको विष-रहित कर देना स्वास्थ्यके लिये परमोपयोगी है (J. H. Kellog, M. D.—NeW Dietetics. P. 991)।

[४]

दस्तावर दवाई

कई लोग पेट साफ करनेके लिये दस्तावर दवाइयोंका इस्तेमाल करते हैं, लेकिन इनकी तरह नुकसान पहुँचानेवाली और कोई चीज नहीं है। हरएक दस्तावर दवा पेटके लिये जहर है। यह जहर जिस किसी भी समय हमारे पेटमें जा पहुँचता है, उसी समय इसे शरीरसे दूर करनेके लिये आमाशयको वहुत सा रस निकालना जरूरी हो जाता है। खाये हुए भोजनको पचाने के लिये शरीरके जो दूसरे यन्त्र रस निकालते हैं, इससे उनमें से हरएक चञ्चल और उत्तेजित हो उठता है। उस समय इस जहरीली दवाको निकाल वाहर करनेके लिये इन सभी यन्त्रोंसे वहुत-सा द्रावक रस निकलता है, जिस के जरिये इकट्ठा हुआसारा मल वाहर निकल आता है।

किन्तु पचानेवाला यह रस जो शरीरकी जान है, फजूल वहुत मात्रा में वर्वाद हो जाता है। उस समय ये सभी यन्त्र, जिनके रसके करण मल वाहर निकलता है, कमजोर हो जाते हैं, जिससे मल और भी कड़ा हो जाता है। ऐसी अवस्थामें औरभी तेज जुलाव खानेकी आवश्यकता पड़ती है। इससे शरीरके यन्त्र धीरे-धीरे और भी कमजोर होते जाते हैं। अन्त में ऐसी हालत हो जाती है कि कोई भी वाजारू जुलाव पेट साफ करनेमें सफल नहीं होता।

———

चौथा अध्याय

ताप-स्नान और आरोग्य

[१]

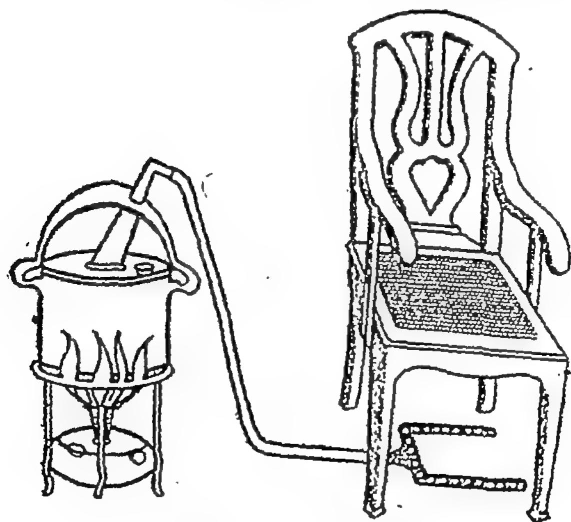
हम लोगोंका शरीर जब तरह-तरहके विष, कूड़े-कचरे (waste) और विकृत पदार्थों (morbid matter) से बोझिल हो जाता है, तब प्रकृति उन्हें नष्ट करनेके लिये शरीरमें उत्ताप पैदा करती है। यह उत्ताप शरीरके दूषित पदार्थको गलाकर भष्म कर देता है तथा गैस आदिके रूपमें बदलकर शरीरके भिन्न-भिन्न रास्तोंसे बाहर निकाल देता है। तब फिरसे स्वास्थ्य लाभ होता है। हम लोग भी प्रकृतिकी नकलकर शरीरके विकारको उत्तापके सहारे गलाकर या गैसके रूपमें बदलकर शरीरसे निकाल सकते हैं। इसी कारण introduction of artificial fever is now regarded as a therapeutic measure of considerable value—कृतिम उपायसे शरीरमें ज्वर उत्पन्न करके रोग निवारण करना इन दिनों मूल्यवान चिकित्सा समझी जाती है (British Encyclopedia of Medical Practic, Vol 6, P. 577)। इस तरह अनेकानेक उपायसे विकार रहित किया जा सकता है और वाष्प-स्नान (भाप लेना) (steam bath) सर्वोपरि सुपरिचित प्रणाली है।

वाष्प-स्नान (Steam bath)

बेतकी कुर्सीपर आसानीसे वाष्प-स्नान किया जा सकता है। कुर्सीकी बनावटके छेद काफी बड़े-बड़े होने चाहिये।

रोगीको कुर्सीपर बैठाकर एक कम्बलसे आगे और एक दूसरे कम्बलसे पीछे ढककर इस प्रकार जमीन तक और ऊपर गर्दन तक ढक दो कि कंबल जमीनपर चारों ओर लोटता रहे। इसके बाद उसमें भाप छोड़ देनी चाहिये।

भाप तैयार करनेके लिये थोड़े खर्चमें टीनका एक वाष्प उत्पादक यन्त्र (steam generator) बनवाया जा सकता है। टीनके किसी डिब्बे व पात्रमें ऊपर एक नली लगा देने ही से वाष्प उत्पादक पात्र बन जाता है। इसी प्रकार पीतलका यंत्र बन सकता है। आवश्यकतानुसार आधा या पूरा पानीसे भरकर स्टोव पर उसे बैठा देना चाहिये। स्टोव न रहनेपर चूल्हेका उपयोग किया जा सकता है। थोड़ी देरमें पानीके गर्म होनेसे भाप निकलने लगती है। तब रबड़ या टीनकी नलीके सहारे भापको कुर्सीके नीचे पहुंचा



वाष्प स्नान (Steam bath)

देना चाहिये। अच्छा हो यदि समकोणमें मिले हुये तीन टीन या पीतलके नल के साथ वह रबड़का पाइप लगा दिया जाये। टीनके इस नलको कुर्सीके नीचे

बीचो-बीच रखना चाहिये। इसमें ऊपर काफी मात्रामें छिद्र होने चाहिये तथा और सब ओरसे बन्द रहना चाहिये। अधिक छिद्र होनेके कारण भाप एक स्थानसे न निकल कर विभिन्न छिद्रों द्वारा घटकर रोगीको आरामके साथ सारे शरीरमें लगेगा।

देहातमें यदि कुर्सी न मिले तो बांस आदिसे एक काम चलाऊ कुर्सी बना कर बंत या रस्सीसे बुन लेना चाहिये। कंबल न रहे तो लेवा या किसी भी मोटे वस्त्रसे कम्बलका काम लिया जा सकता है। रोगीके सारे शरीरमें समान रूपसे भाप पहुँचाना मात्र उद्देश्य है और यह जिस प्रकार हो उसकी अवस्था परिस्थितिके अनुकूल हो जाना चाहिये।

यदि वाष्पयन्त्र बनानेमें भी असुविधा हो तो एक कोरी हांड़ीमें पानी गरमकर खूब भाप निकलने लगे तो उसे कुर्सीके नीचे लाया जाये और उसी-से भाप लिया जाये। हांड़ीको पहले ढकने से ढके रहना चाहिये। फिर ढकने को धीरे धीरे इस प्रकार सरकाना चाहिये कि ज्यादा भाप एक साथ ही निकलकर रोगीके शरीरको ही न जला दे। इसके ठंडे होते होते दूसरी हांड़ीका जल बारी बारीसे रखकर वाष्प स्नान पूरा किया जा सकता है।

पर जहांतक हो सके वाष्प उत्पादक पात्र, नल और स्टोवकी सहायतासे स्टीम बाथ लेनी चाहिये। क्योंकि स्टोव रहनेसे इच्छानुसार भाप कम बेसी किया जा सकता है तथा जबतक आवश्यक हो देरतक भाप लिया जा सकता है।

(२)

ताप-स्नानमें सावधानी

किसी भी प्रकारके पसीना पैदा करनेवाले (sweating bath) स्नानको पूरे समय तक करते समय कई प्रकारकी सावधानियोंकी जरूरत पड़ती है। अन्यथा भलाईके बदले बुराई होनेकी संभावना रहती है।

वाथ लेनेके पहले समूचे सिरको गर्दन समेत अच्छी तरह ठंडे पानीसे धो लेना चाहिये। स्त्रियां यदि अपने सिरके वाल भिगोना न चाहें, तो मुंह और गर्दनको ही अच्छी तरह धो लें। इसके वाद एक ग्लास पानी पीकर कुर्सीपर वैठना होता है। वाथ लेते वक्त भी एक दो ग्लास जल पिलाया जा सकता है। ऐसा करनेसे पसीना अधिक निकलता है। कम्वलसे कुर्सी समेत गर्दन तक सारे शरीरको अच्छी तरह ढक लेनेके वाद शरीरके सारे कपड़ेको हटा लेना चाहिये। सिर हर हालतमें कम्वलके वाहर रहना चाहिये।

रोगीको कुर्सीपर वैठानेके साथ ही एक गमछा या तौलियेको ठंडे पानी से डुवो करके तर अवस्थामें ही सिरपर अच्छी तरहसे लपेट लेना चाहिये। इस तौलियेको सदा ही भिगो-भिगोकर ठंडा रखना चाहिये। इसलिये वाथ लेते समय थोड़ी थोड़ी देरके वाद इसे सिरसे उतार ठंडे पानीमें डुवो डुवोकर ठंडा करके फिर सिरपर लपेटते आना चाहिये। किंतु सिर यदि गर्म न हो तो जल्दी-जल्दी तौलियेको वदलना आवश्यक नहीं। क्योंकि हो सकता है वैसी हालतमें पसीना निकलना वन्द हो जाये। जाड़ेके दिनोंमें तो तौलियेके वदलनेकी कम ही आवश्यकता पड़ा करती है।

सिरपर तोलियेको रखनेके साथ ही एक दूसरी तौलिया ठंडे जलमें भिंगो कर रोगीके हृदयके ऊपर रखना चाहिये। रोगी अपने हाथसे इसे पूरे समय तक हृदय पर लगाये रहे।

वाष्प स्नान करते समय भापके तापको धीरे-धीरे वढ़ाना चाहिये। पर इसका सदा ध्यान रहे कि भाप कभी भी असह्य न होने पावे। जव रोगीको अच्छी तरह पसीना आने लगे तो ६ मिनटसे लेकर १५ मिनटके भीतर भाप वन्द कर लेना चाहिये। साधारणतया गर्मीके दिनोंमें ८ मिनटसे लेकर १२ मिनट तक भाप लेना काफी है। परन्तु काफी देरतक कभी भी भाप नहीं

लेना चाहिये। ज्यादा देरतक वाष्प स्नान नुकसानदेह है। जल चिकित्सा की मात्रा कम हो तो हो, पर अधिक नहीं होनी चाहिये।

यथेष्ट समय तक भाप लेनेका प्रधान लक्षण यह है कि, मोतीके दानेके समान अनेकों पसीनेके कणोंसे नाक भर जाती है या ये कण मिलकर पानीकी धाराकी तरह टपकने लगते हैं। किन्तु इस चिह्नके पहले भी बेचैनी मालूम होते ही वाष्प स्नान तुरत वन्द कर देना चाहिये।

भाप वन्द होनेके वाद ही हृदयकें ऊपरके गमछेको हटा लेना चाहिये। किन्तु सिरके गमछेको जवतक इच्छा करे रखे रहना चाहिये। इसके वाद रोगीको ५ मिनटसे १० मिनटतक उसी तरह कम्वलसे लिपटे कुर्सीपर वैठे रहना चाहिये तथा एक सूखे कपड़ेसे अच्छी तरह वार-वार पसीनेको पोंछ लेना चाहिये। इसके वाद रोगीको इसी अवस्थामें कम्वलके भीतर एक भींगी तौलिया देनी चाहिये। उस भींगी तौलियेसे रोगीको चाहिये कि सारे शरीरको अच्छी तरह पोंछ-पोंछ कर शरीरके तापको धीरे-धीरे कम करे। इसलिये वार-वार भिंगो भिंगोकर तौलियाको रोगीको देते रहना चाहिये। पहले तो तौलियामें जलकी मात्रा कम रहेगी। फिर क्रमशः पानी अधिक रह सकता है। पहली वार शरीर पोंछते समय जरा गरम पानीसे भिंगे गमछेसे देह पोंछना चाहिये। फिर क्रमशः ठंडे जलका व्यवहार करना अच्छा होता है। इस अवस्थामें ठंडे जलके तौलियेसे शरीर पोछनेमें चिन्ता नहीं करनी चाहिये। शरीर जब गर्म रहता है तब ठंडा पानी कुछ अनिष्ट नहीं करता। वल्कि वाष्प स्नान करनेके वाद तौलियेसे शरीर पोंछने (sponge bath) से भाप लेनेकी सारी बुराई नष्ट हो जाती है, स्नायु केन्द्रोंको उत्तेजना प्राप्त होती है तथा रोगीके सारे शरीरमें एक प्रकारका उद्दीपन आता है। इससे भी अच्छा तरीका यह है कि, पसीना पोंछ लेनेके वाद ही रोगीको गले तक कम्वल से ढके हुए ही विछौनेपर लिटा उसे ढके हुए ही ठंडा रगड़ (cold

friction) प्रयोग किया जाये। स्पंज बाथ या ठंडा रगड़के बाद भी एक घंटा विश्राम करके रोगी यदि चाहे तो स्नान कर सकता है।

इसके एक घंटे बादसे लेकर तीन घंटे तक प्रति घंटे एक एक ग्लास पानी एक नीबूके रसके साथ पीना चाहिये। इसके एक घंटे बाद यानी स्टीम बाथके चार घंटे बाद फल, स्यालाद और दूध आदि हलका भोजन खाया जा सकता है। किन्तु पूरे समय तक वाष्प स्नानके बाद किसी भी अवस्थामें उस वक्त भात या रोटी जैसा भोजन नहीं खाना चाहिये एवं काफी देर तक वाष्प स्नान करना हो तो पांच या छः घंटे पहले भी भात, रोटी नहीं खाना चाहिये।

स्टीम बाथ लेनेके बाद भी तीन चार दिन तक नीबूके रसके साथ छः से सात ग्लास तक पानी रोजाना पीना चाहिये। इसके अलावे कई दिनों तक काफी मात्रामें फल, हरी साग-सब्जी, सवेरे बेलका शर्बत या पकाये बेल और एक समय भात तथा एक समय रोटी खाना जरूरी है। ऐसा करनेसे शरीरके अन्दरका विजातीय पदार्थ जो वाष्प स्नानसे छिन्न भिन्न, हुआ रहता है, वह मल, मूत्रके साथ आसानीसे बाहर निकल जाता है।

स्टीम बाथ लेनेके पहले तलपेट—(पेड़ू) की सफाई कर लेना जरूरी है। इसलिये स्टीम बाथ लेनेके पहले रोगीको डूस ले लेना चाहिये। पहले डूसका ले लेना अत्यन्त आवश्यक है। इस नियमकी कभी भी अवहेलना नहीं करनी चाहिये।

[३]

वाष्प स्नानसे लाभ

वाष्प स्नानको सर्व व्याधि नाशक व्यवस्था (panacea) कहना अत्युक्ति नहीं होगा। क्योंकि कोष्ट शुद्धिके बाद (वाष्प-स्नान) लेनेसे आदमीके शरीरके अधिकांश रोग छू-मन्तर हो जाते हैं और कम-बेसे तो सभी बीमारियोंमें इससे फायदा होता है।

तौ भी कई एक बीमारियोंमें तो इससे खास फायदा होता है। सभी तरहके अजीर्ण रोगोंमें यह नवजीवन ला देता है। वाष्प स्नानके बाद शरीरमें विशेष प्रकारकी जलाभाव आ जाती है। इससे अतड़ियोंमें भोजन किये हुए पदार्थसे रस खींचनेकी ताकत बहुत ज्यादा बढ़ जाती है। इसीलिये वाष्प स्नान पुष्टि लाभका प्रधान उपाय है।

सभी प्रकारके वात रोगोंको चंगा करनेके लिये पसीना लानेवाले स्नानके समान और कुछ भी नहीं है। पेशीवात (muscular rheumatism), गठिया (gout), कटिवात (lumbago), गर्दनका वात (torticollis) और गाठोंकी सूजन (arthritis) आदि रोगोंमें महीने में दो बार स्टीम बाथ लेनेसे धीरे-धीरे अत्यन्त कष्टदायक पुरानी व्याधियोंका भी नाश हो जाता है। किन्तु वातरोगमें स्टीमबाथके बाद हमें एक-दो मिनटके भीतर ही समशीतोष्ण जलसे सारे शरीरको पोंछ लेना उचित है।

मूत्र-ग्रंथिकी सूजन (nephritis) रोगमें जब मूत्र यंत्र (kidneys) अपना काम नहीं कर पाती, उस अवस्थामें मूत्र यंत्रका काम खास कर चमड़ेकी राह ले लेना ही इस रोगकी प्रधान चिकित्सा है। इसी कारण इस प्रकारके रोगियोंको बचानेका एक मात्र तरीका स्टीम बाथ ही है। मूत्र ग्रन्थि प्रदाहमें भी बहुत थोड़े समयके लिये समशीतोष्ण जलसे नियमानुसार पोंछ लेना आवश्यक है।

सभी प्रकारकी मुटाई (obesity) का सर्व श्रेष्ठ चिकित्सास्टीम बाथ है। शरीरके अत्यन्त दोषपूर्ण अवस्थाके कारण आदमी क्षीण होता है और ठीक उसी अवस्था विशेषके कारण बहुधा वह अत्यन्त मोटा हो जाता है। और जब यह दोष मूलक अवस्था शरीरसे विदा हो जाती है, तब दुबला-पतला आदमी जिस प्रकार मोटा होता है ठीक उसी प्रकार स्थूलकाय आदमी भी पतला होकर दोहरे शरीरका गठीला बन जाता है। हमारे

चिकित्सालयमें कभी-कभी भयानक मोटे आदमी आते हैं और प्रति सप्ताह उनके वजनमें दोसे चार पौंडकी कमी करा देता हूँ। उन लोगोंको स्टीम-बाथके बाद साधारणतया सारे शरीरकी मालिश, डूस, पेटपर गरम ठंडा और शीतल घर्षणका प्रयोग किया जाता है तथा उन्हें काफी मात्रामें पानी पीने और फल मूल पथ्य खानेकी व्यवस्था की जाती है। किन्तु अत्यन्त मोटे व्यक्तिको काफी देरतक स्टीम बाथ देना हो तो हर दस मिनटपर शीतल जलसे भीगी तौलियेसे रोगीके सारे शरीरको पोंछते जाना चाहिये। किन्तु इस बातका ध्यान रखना भी लाजिम है कि मोटे आदमीका वजन किसी भी हालतमें खूब तेजीसे कम न किया जाय।

खाज, खुजली आदि पुराने चर्मरोगोंके आराम करनेका यह कभी व्यर्थ न जानेवाला तरीका है। चर्मरोग कितना पुराना क्यों न हो, और चाहे कितने भयंकर रूपमें फूट पड़ा क्यों न हो, दो एकबार स्टीम बाथ लेने मात्र से ही आश्चर्यजनक रीतिसे अच्छा हो जाता है। एक बार नरेन्द्रनाथ चटर्जी यशोहर जिलेके सोनपुर नामक ग्रामका एक युवक चर्म रोगकी चिकित्सा करानेके लिये मेरे पास आया। जब उसने शरीर दिखानेके लिये अपना वस्त्र उतारा तो मैं उसे देखकर सिहर उठा। पांवसे लेकर गलेतक उसके शरीरमें एक इँच भी ऐसा स्थान नहीं था, जहां दाद, दिनाई या खुजली न हो। कहीं-कहीं हाथ-हाथ भर क्षेत्रमें उसकी दाद फैली थी। कहीं कहीं दादने घावका भीषण रूप धारण कर लिया था और पुराने खुजलीका भी शरीरमें अभाव नहीं था। उसने मुझसे कहा कि लड़कपनसे हमने कमसे कम आधे मन मलहमका व्यवहार किया होगा और अनेकों सूइयां ली होंगी। किन्तु उससे कोई भी लाभ नहीं हुआ। मैंने उसे पूरे समय तकके लिये स्टीम बाथ लेनेकी और स्नानसे पहले रोज आधे घंटेसे लेकर एक घंटे तक ताजा कादो मिट्टी शरीरमें लगा कर धूप-स्नान (sun-bath) लेनेकी

व्यवस्था की और एक महीने बाद लगातार कई एक स्टीम बाथ लेनेको कह दिया। पेट साफ रखनेके लिये उसे बेल और पपीता खानेको कहा गया और काफी मात्रामें पानी पीनेकी सलाह दी गयी। तीन महीने बाद वह फिर मुझसे मिलने आया। इस बार उसका चेहरा देखकर मैं चकित हो गया। शरीरमें कहीं भी फुंसीका चिह्न मात्र भी नहीं रह गया था। अधिकांश शरीर साधारण शरीरकी तरह साफ हो गया था और बड़े बड़े दादके चकत्तेके स्थान पर कहीं-कहीं जरा जरासा चिह्न भर रह गया था। पहलेकी असह्य खुजलाहट बिल्कुल मिट गयी थी।

अन्यान्य रोगोंके उपचारके लिये भी जब कभी मैंने रोगीको स्टीम बाथ दिया है, तो देखा है कि उसकी बहुत पुरानी खाज, खुजली आदि दूसरे ही दिन सूख गयी है। उसका कारण यह है कि चर्म रोगके कीटाणु चमड़ेके जिस विजातीय पदार्थमें अपना अड्डा जमाते हैं, वह स्टीम बाथसे बाहर निकल जाता है। फलस्वरूप चर्मरोग अपने आप आराम हो जाता है।

हैजेके समय मृदु स्टीम बाथका प्रयोग रोगीको बहुत ही लाभ पहुँचाता है। स्टीम बाथके प्रयोगसे रोगकी गति आंतोंसे चमड़ेकी तरफ फिरा देनेसे और रोगीको पसीना ला देनेसे फौरन रोगी चंगा हो जाता है। मूत्र-रोग विकार (uraemia) से रोगीको बचानेका स्टीम बाथ ही प्रधान उपचार है। इस अवस्थामें १५ मिनटसे लेकर ३० मिनट तक मृदु स्टीम बाथ देना चाहिये। और जितनी बार आवश्यक हो इसका प्रयोग किया जा सकता है (Encyclopedia Medica, Vol. VI, P. 259)। हृदय कमजोर हो तो स्टीम बाथ लेते समय हृदयपर एक भींगा गमछा रख लेना जरूरी होता है।

मूत्र यन्त्रकी पथरी, या मूत्रयन्त्रके दर्द (renal colic) इससे बहुत ही फायदा होता है। मौलवी बाजारके वकील मि० यतीन्द्र मोहन

पाल बहुत दिनोंसे मूत्र पथरी रोगके शिकार थे। उनके मूत्र यंत्रके भीतर तीन चौथाई परिधिमें एक पथरी जम गयी थी। उन्होंने बहुत पैसा खर्च कर सभी प्रकारकी प्रचलित चिकित्सा करवाई; किन्तु किसी भी उपचारसे उन्हें कुछ भी लाभ नहीं हुआ। प्रायः पेशावके साथ खून गिरता और प्रायः हमेशा ही वे दर्द से कष्ट पाते थे। वे जब कलकत्ते आये तो मैंने उन्हें केवल एक मात्र स्टीम वाथ दिया और घर जाकर क्या-क्या करना होगा इसे सविस्तार लिख दिया। मि० पाल बड़ो ही निष्ठाके साथ इन वतलाये हुए विभिन्न वाथ (स्नान) आदिका नियमित पालन शुरू किया। आश्चर्यका विषय यह था कि स्टीम वाथ लेनेके कारणसे ही फिर उनको दर्द नहीं हुआ और पेशावके साथ फिर कभी खून नहीं आया। इसके सात वर्ष वाद भी वे चंगे थे ऐसा संवाद मुझे मिला था।

गर्मी सुजाकमें भी यह विशेष लाभदायक है। इन रोगोंमें काफी दिनों- तक बीच-बीचमें इसका प्रयोग होते रहना चाहिये।

अम्ल रोगमें डूस, हिपवाथ और भीगी कमरपट्टी आदिसे पेटको साफ रखनेकी व्यवस्था करके स्टीमवाथका प्रयोग करनेसे आश्चर्यजनक लाभ होता है। रसा रोडके मि० दास गुप्तकी स्त्रीको अम्ल रोगके कारण दिनमें ३०।४० वार कै होती थी। वह जो कुछ खाती उससे दस गुना कै करती। कुछ भी खानेसे ही वह अम्ल हो जाता और फल-स्वरूप गला जलता रहता। मि० दास गुप्तने सभी प्रकारकी चिकित्सा करा चुकनेके वाद मुझे बुलवाया। जब मैं गया तो दो आमियोंने सहारा देकर रोगिणीको मुझे दिखलाया। कितनी असह्य पीड़ा थी, उसे भाषा द्वारा प्रगट नहीं किया जा सकता। हाथ, पाँव एवं सारा शरीर जल रहा था। हमेशा एक प्रकारकी भीषण बेचैनी और मुंहसे अत्यन्त कातर ध्वनि निकल रही थी। घरमें सभीको पूरा विश्वास हो गया था कि अब वे नहीं बचेंगी। मि० दास गुप्तकी एक लड़की

उस समय मैट्रिकमें पढ़ती थी। मैंने रोगिणीको देखकर जब कहा—"महीने भरमें मैं इन्हें चङ्गा कर दूंगा"। तब वह लड़की आश्चर्य और आनन्दसे चिल्ला उठी, "मेरी मां बच जायेंगी?" इसके कई दिन बाद रोगिणीको एक स्टीमबाथ दिया गया। इस एक बारके ही स्टीबाथके प्रयोगसे ही ५० बारसे कम होकर दो बार कै हुई और शरीर का दर्द एवं जलन काफूर हो गयी। वे पानी बिलकुल नहीं पी पाती थीं। स्टीमबाथके बाद वे दिनमें ५।६ ग्लास पानी पीने लगीं। इसके बाद उन्हें प्रति दिन हिपबाथ और सारी रातके लिये भींगी कमरपट्टी (wet girdle) आदि देनेकी व्यवस्था करवा दी। इसके कुछ ही महीने बाद वे बिलकुल आरोग्य हो गयीं।

सभी प्रकारके शूलका दर्द स्टीमबाथसे भला होता है। क्योंकि अधिकांश अवस्थाओंमें रोगीको पसीना ला देनेसे ही दर्द कम हो जाता है।

दमेके रोगी, रोगकी यंत्रणाके कारण बहुत ही कष्ट पाते हैं। स्टीमबाथ से उनकी बेचैनी बहुत ही जल्दी कम हो जाती है।

पित्त पथरी (gallstone) में आपरेशन करानेके सिवा प्रायः और कोई दूसरा चारा नहीं, किन्तु स्टीमबाथसे यह रोग निश्चित रूपसे अच्छा किया जा सकता है। पावना जिलेके श्रीयुत सुरेशचन्द्र घोष कलकत्तेके किसी इन्स्योरेंस कंपनीमें काम करते थे। उनकी स्त्री को कठिन पित्त पथरी की बीमारी थी। हर महीने या महीनेमें दो बार उन्हें दर्द उभड़ता और उस समय दर्दकी हालतमें उनके चीत्कारके कारण लोगोंका घरमें रहना दूभर हो जाता। सुरेश बाबूके एक भाई कलकत्ता कार्पोरेशनमें डाक्टर थे। फल-स्वरूप कलकत्तेके बड़े-बड़े डाक्टरोंके इलाजमें किसी प्रकारकी कोई कमी नहीं रही। सभी चिकित्सा खतम होनेके बाद डाक्टरोंने यह मत प्रकाशित किया कि, बिना आपरेशनके यह रोग अच्छा होनेको नहीं। किन्तु श्रीमती जी किसी भी हालतमें आपरेशन करानेपर राजी नहीं हुई। तब एकबार

एक अंतिम प्रयोगके लिये मुझे बुलाया गया। मैंने पहले ही उन्हें एक स्टीमबाथ दिया। रोगिणीका कोष्ठ बिलकुल ही साफ नहीं था। तीन तीन, चार-चार दिनपर उन्हें पाखाना होता। वह पानी भी खूब कम पीती थीं। मैंने रोज हिपबाथ और काफी पानी पीनेकी व्यवस्था करायी। साथ ही साथ पथ्यमें फल मूल खानेका प्रबन्ध कराया। मेरी चिकित्सा शुरू करनेके बाद केवल एकबार उन्हें दर्द उठा था। तुरत मैंने लीवरपर आधे घंटे तक गरम सेंक देकर फिर दस मिनटके लिये जल पट्टी देनेको कहा। उनका दर्द कभी भी तीन दिनसे कममें नहीं हटता था। किन्तु एकबार गरम सेंक देकर फिर दस मिनटके बाद शीतल पट्टी देनेसे रोगिणीको नींद आ गयी। इसके बाद उन्हें फिर कभी दर्द नहीं उठा। निश्चय ही उन्होंने इसके बाद भी कुछ दिनोंतक चिकित्सा चालू रखी।

जो किसी भी प्रकारकी कसरत नहीं करते, उन्हें तीन महीने या छः महीने पर एक एकबार स्टीमबाथ अवश्य लेलेनी चाहिये। ऐसा करनेसे परिश्रम न करनेके कारण संचित विकार शरीरसे निकल जाता है। जिन्हें बैठे-बैठे काम करना पड़ता है और अधिक भोजन कर लेते हों, उनलोगोंको तो हर दूसरे महीने स्टीमबाथ लेना चाहिये।

स्टीमबाथसे इस प्रकार हमारे बहुतसे रोग एवं ग्लानि दूर की जा सकती है। तौभी सभी अवस्थाओंमें अधिक समयके लिये स्टीमबाथका प्रयोग उचित नहीं होता। जो रोगी अत्यन्त कमजोर हों, जिनका हृदय अत्यन्त खराब एवं कमजोर हो, जिन्हें यक्ष्मा आदि क्षय रोग अथवा मस्तिष्कमें रक्तहीनताकी बीमारी हो, जिनके किसी अंगमें सूजन उत्पन्न हुई हो, जो बहुमूत्र रोगके कारण बहुत क्षीण हो गये हों, उन्हें कभी भी अधिक समयके लिये स्टीमबाथ नहीं लेनी चाहिये। बच्चें एवं बूढ़ोंको भी बड़ी सावधानीसे स्टीम बाथका प्रयोग करना चाहिये। इनलोगोंकी अपेक्षा कृत कम और मृदुतापका स्टीमबाथ देना उचित है।

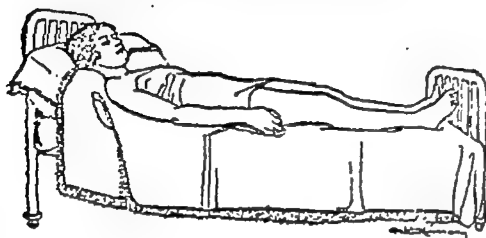
स्टीम वाथ लेनेसे पहले पहल प्रायः वजन घटता ही है। इससे डरना नहीं चाहिये, क्योंकि शरीरमें मृतजीवनो कोष आदि जो विकार संचित रहता है, वह ष्टीम वाथके वाद विभिन्न राहसे वाहर निकल जाता है। वहुत वार तो २० मिनटके स्टीम वाथसे दो-तीन सेर वजन घट जाता है। किन्तु इसके कई एक दिनोंके वाद ही शरीरमें नये तन्तुओंका सृजन होता है। मांसपेशियां गठित होती हैं, और बहुत वार शरीरका वजन पहलेसे पांच छः सेर वढ़ भी जाता है।

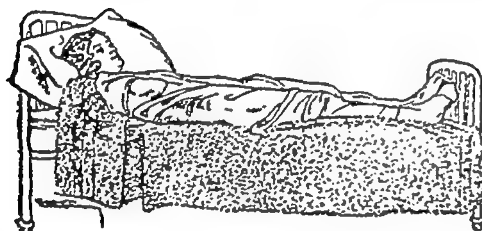
[२]

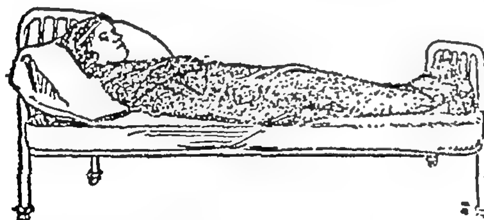
गीली चादरकी लपेट

वाष्प-स्नानसे जो लाभ होता है, भींगी चादरको लपेट (पैक) से भी ठीक वही उपकार हो सकता है। इसी कारण भींगी चादर लपेटको वाष्प-स्नानका प्रतिरूप कहा जा सकता है। तीन-चार पूरे रोयेंदार कम्बलोंको खाटपर विछा करके भींगी चादरकी लपेट लेनी होती है। घरमें यदि तीन-चार कम्वल न हों तो दो लिहाफोंसे काम चल सकता है। कम्वल विछाकर उसके ऊपर ठंडे पानीसे भींगी और खूब अच्छी तरह खींच-खींचकर चादर फैला देनी चाहिये। रोगीके इस चादर पर लेटनेसे जहाँ तक उसकी पीठ रहे, उसके ठीक नीचे उसके वगलसे लेकर पेड़ूकी अन्तिम सीमा तक ढक जाने लायक एक और भींगे कपड़ेका टुकड़ा चादरपर विछा लेना चाहिये। चादर पर सोनेसे पहले अच्छी तरह सिर, मुँह और गर्दन धो लेना चाहिये। इसके वाद आसानीसे जितना सहा जा सके एक ग्लास गरम पानी पीकर चादर पर लेटना चाहिये।

रोगीको चादरपर लिटाकर चादरपर फैलाये हुये भींगे कपड़ेके टुकड़ेसे रोगीके वगलसे पेड़ूकी अन्तिम सीमा तक अच्छी तरह लपेट देना चाहिये। इसके वाद रोगीके दोनों हाथोंको लम्वा कर, शरीरके पासमें करके पड़ी चादर द्वारा फिर रोगीके गले तक सारे शरीरको इस प्रकार ढक देना चाहिये कि जिससे शरीरका प्रत्येक अङ्ग ठंडी चादरके सम्पर्कमें आ जाये। ऐसा करनेसे रोगीको कभी भी ठंडक नहीं लग सकती। इसी कारण चादरसे ढकते समय इसे दोनों पांवके वीच और हाथोंके फांक में अच्छी तरह दवा देना चाहिये। चादरसे ढकते समय रोगीके पहने हुये कपड़ों को वुद्धिमानीसे हटा लेना चाहिये रोगीको







गीली चादरकी लपेट (wet, sheet pack)

यदि स्नायविक कमजोरी हो अथवा वह वहुत कमजोर हो, तो उसके एक या दोनों हाथोंको चादरके वाहर किन्तु कम्वलके भीतर रखा जा सकता है। यदि रोगीका पांव ठंढा हो, तो दोनों पैरोंको भी भींगी चादरके वाहर रखना ही उचित है। इससे उस लपेटमें कोई त्रुटि नहीं होती। चादरसे अच्छी तरह

आच्छादित करनेके बाद एक कम्बलसे रोगीको उस प्रकार ढक देना चाहिये जिससे कम्बल सभी ओरसे चादरके ऊपरसे शरीरके सम्पर्कमें आ जाये। इसके बाद दो और कंबलों या लिहाफोंसे बारी-बारी रोगीके गले तक सारे शरीरको अच्छी तरह ढक देना चाहिये। रोगीको इस लपेट (पैंक) में रखनेके बाद ही शीतल जलमें भींगी एक गमछीसे उसके सिरको ढक देना चाहिये। जब तक रोगी इस पैक या लपेटमें रहे, तब तक इस गमछेको गरम होने पर बदलते रहना चाहिये। यदि जाड़ेके दिनोंमें इस चिकित्साका प्रयोग किया जाये, अथवा रोगी को इस लपेटमें जाड़ा सा मालूम हो, या उसका शरीर आसानीसे गरम नहीं होता हो, तो, कम्बलके भीतर रोगीके शरीरके चारों ओर पैर तथा जंघापर कई गरम पानीकी बोतलें या गरम जलकी थैलियां रखना जरूरी होता है।

इस लपेटका प्रयोग साधारणतया ४५ मिनट से एक घंटे तक करना चाहिये। जाड़ेके दिनोंमें एक घंटेसे कममें काम नहीं चल सकता। गीली चादरकी लपेटमें वाष्प-स्नानकी तरह धड़ल्लेके साथ पसीना नहीं निकलता है। वह प्रायः दिखलाई नहीं (insensible perspiration) पड़ता। यदि अधिक पसीना लाना आवश्यक हो, तो हर दस मिनटके बाद रोगीको आधा ग्लास गरम पानी पिलाते जाना चाहिये। यदि भीतर भी चादर हल्की हो तथा बाहरके कम्बलोंकी संख्या बढ़ा दी जाय तो बड़ी आसानीसे काफी मात्रामें पसीना निकलने लगता है।

पहले कम्बलके ऊपर यदि एक आयल क्लोथ या रबर क्लोथ देकर रोगीका शरीर ढक दिया जाये, तो जाड़ेके दिनोंमें भी रोगीके शरीरसे यथेष्ट मात्रामें पसीना निकलने लगता है।

लपेटकी समाप्तिपर रोगीके शरीरपरसे कम्बल आदि धीरे-धीरे हटाना चाहिये। फिर कमजोर रोगीको मामूली गरम पानीमें, सबल रोगीको साधारण

(न गरम न ठंडा) पानीमें डुबोकर तथा खूब निचोड़ी हुई तौलियेसे सारे शरीरको खूब अच्छी तरह रगड़-रगड़कर पोंछ लेना चाहिये। इसके बाद रोगी चाहे तो एक घंटे के बाद स्नान कर ले सकता है।

लपेटमें सावधानी

रोगीको भींगी चादरपर सुलानेके पहले ही इसे विशेषरूपमें जान लेना परम आवश्यक है कि उसका शरीर गरम है या नहीं। यदि रोगीके शरीरमें जाड़ा या कंप हो, अथवा रोगी बच्चा या अत्यन्त बुड्ढा या बहुत कमजोर हो तो उसके शरीरको एक बार गरम करके ही इस लपेटका प्रयोग आरम्भ करना चाहिये। इसके लिये रोगीके मेरुदंड, एवं ऊपरकी सारी पीठपर दस-पन्द्रह मिनट तकके लिये गरम सेंक देकर या उसे एक कुर्सी पर छः सात मिनट के लिये वाष्प-स्नानका प्रयोग करके अथवा सिरपर भींगा गमछा लपेट कर धूपमें कुछ देर टहलकर शरीरके गरम होने पर फौरन रोगीको चादर पर ले जाकर लिटाना चाहिये। तात्पर्य यह कि चादर पर लिटने के पहले रोगीका शरीर इतना गरम रहना चाहिये कि चादरपर लेटनेसे आराम मालूम पड़े। किन्तु रोगीको यदि बुखार हो अथवा स्वस्थ अवस्थामें शरीर शीतल न रहता हो तब शरीरको गरम करनेकी आवश्यकता नहीं होती।

रोगीके किसी अंगमें यदि सूजन हो, तो इस लपेटके व्यवहारमें कई प्रकारकी सावधानीकी आवश्यकता पड़ती है। इस अवस्थामें लपेटके नीचे आक्रांत भागके ऊपर एक और पट्टी देनी पड़ती है। यह वही शरीरके ताप और आक्रांत अंशके क्षेत्रफलके अनुसार दो भागसे लेकर आठ भाग और छः से लेकर बारह वर्ग इञ्च तक हो सकती है। शरीरका ताप जितना ही अधिक हो यह पट्टी उतनी ही पूरी रखनी चाहिये। फुस-फुस, लिवर, प्लिहा, पाकस्थली, मूत्राशय, अठन्त्र पुच्छ (appendix) अथवा स्त्रियोंके गर्भाशयके रोग

आदिमें आक्रांत अंगपर वड़े पैक (तलपेट) के नीचे एक और दूसरी पट्टी देना आवश्यक होता है।

भींगी चादरकी लपेटसे लाभ

यद्यपि ठंडे पानीमें भींगोकर यह लपेट दी जाती हैं पर तौभी यह शीतल नहीं होती। भींगी चादर हो सकता है कि दो तीन मिनटतक ठंडी लगे। पर इसके वाद ही शरीरके तापसे यह गरम हो उठती है। साथ ही साथ सारा शरीर गरम हो जाता है। तव शरीरके भीतर स्थित विभिन्न दूषित पदार्थ जो जकड़ा रहता है, गर्मीसे पिघलकर लोम कूपोंकी राह वड़ी आसानीसे शरीरके भीतरसे विदाई लेता है Charles S. Tyrrell, M. D.—The Royal Road p. 69)। ठंडी चादरके सम्पर्कसे रक्त पहले भीतर चला जाता है। इसके वाद चादरके गरम होनेके साथ ही खूनका दौरान चमड़ेके ऊपरी भाग तक होने लगता है। इससे रोगीके शरीरके सभी लोम कूप खुल जाते हैं और इस खुले हुए सहस्रों द्वारसे शरीरका दूषित पदार्थ गलकर इससे वाहर निकल आता है। वाष्प स्नानमें भींगी चादरकी लपेटकी अपेक्षा अधिक पसीना होनेपर भी उसकी अपेक्षा यह वहुत ही अधिक विष (toxin) चमड़ेकी राह वाहर निकलता है।

वाष्प स्नानसे जो लाभ होता है, इस लपेटसे भी वही काम होता है। किन्तु एक वातमें यह वाष्प स्नानसे भी वढ़ कर है। शरीरको अत्यन्त गर्म न करके शीतल अवस्था द्वारा ही शरीरको दोष रहित करनेकी जो यह प्रणाली है—प्राकृतिक चिकित्सा जगतमें इसकी वरावरीका और कुछ भी नहीं है।

इस लपेटके द्वारा शरीरसे इतना विष निकल जाता है कि पैक खोलनेके वाद उसमेंसे एक प्रकार की तेज गन्ध निकने लग जाती है। जो लोग सुरती (तम्वाकू) खाते हैं, उन्हें यदि काफी देर तक इस लपेटमें रक्खा जाय

तो उनकी च.दरसे वाकायदे तम्वाकूकी गंध निकलेगी। जिनके शरीर में वहुत अधिक दूषित पदार्थ रहता है, उनके शरीर से निकले विकार के कारण चादर प्रायः पीली सी हो जाती है। इसी कारण खून को जल्दी से साफ करने को यह एक अचूक प्रणाली है (Bernarr Macfa lden —Vitality Supreme, P. 192) एवं इसके द्वारा वहुतसे रोग आराम किये जा सकते हैं।

पीलिया (jaundice) रोग में यह चमड़े का चुलकना और इसकी उत्तेजना जादू की तरह छूमन्तर करता है और शरीरके वहुत से विषको निकाल कर रोगी को शीघ्र चङ्गा कर देता है।

पुराना मलेरिया प्रायः कुनैन से भी अच्छा नहीं होता किन्तु हर हफ्ते एक घण्टा के लिये इसका प्रयोग करने से एक दम निराश रोगी भी आरोग्य लाभ करता है।

चेचकमें इसका प्रयोग करनेसे निश्चय ही रोगीको मृत्युके मुख से बचाया जा सकता है। पहली अवस्थामें इसका प्रयोग करनेसे गोटियां बड़ी तेजीसे भासने लगती हैं। फलस्वरूप रोगीकी विपत्ति आसानीसे कट जाती है। छोटी माताकी निकसारी (misles) में भी यह समान रूपसे गुणकारी है।

सभी प्रकारकी स्नायविक वीमारियोंमें यह लपेट वहुत ही लाभदायक है। अनिद्रा रोगमें तो यह एक प्रधान चिकित्सा है। वहुत अवस्थाओंमें तो रोगी इस लपेटमें ही सो जाता है। टाइफाइड आदि रोगोंमें रोगी यदि प्रलाप करता हो तो शीघ्र उसको भींगी चादर की लपेटका प्रयोग करना चाहिये। इस पैकके इस्तेमालके थोड़ी ही देर वाद रोगी का प्रलाप वन्द हो जायगा और वह गहरी नींदमें सो जायगा। सभी प्रकारके उन्माद रोगोंमें भी यह विशेष लाभदायक है। स्नायविक कमजोरियों (neurasthenia) में इस पट्टीसे वहुत ही फायदा होता है। किन्तु स्नायविक रोगोंमें इस पट्टीके प्रयोग

करते समय इस बातका हमेशा ध्यान रखना चाहिये कि, कहीं पट्टीके भीतर अधिक मात्रामें ताप संचित न हो जाय और पट्टीके अन्दर नातिशीतोष्ण अर्थात् शरीरके तापकी अवस्था समान बनी रहे। इसी कारण शरीर के गरम हो उठते ही ऊपरसे एक या दो कम्बल आंशिक या पूर्ण रूपसे सरकाकर सावधानी से पैकके भीतर नातिशीतोष्ण अवस्था बनाये रखनी चाहिये। किन्तु साथ ही साथ इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि रोगीका शरीर ठंडा भी न हो जाय।

इससे कौन कौनसे रोग अच्छे होते हैं, इसकी तालिका देना व्यर्थ है। शरीरके भीतर विभिन्न जातीय दूषित पदार्थका इकट्ठा होना सभी प्रकार के रोगोंका मूल कारण है। इस लपेटसे शरीरका दूषित पदार्थ बाहर निकल जाता है। इसी कारण उचित रूप से इसका प्रयोग करने पर प्रायः सभी रोग अच्छे हो जाते हैं।

इसके द्वारा मलेरिया, इनफ्लूएंजा, टाइफाइड आदि सभी प्रकार के ज्वर, सर्दी, खांसी, कूकर खांसी (whooping cough), हफनी, ब्रोंकाइटिस, न्यूमोनिया, राजयक्ष्मा और फुसफुसकी सभी व्याधियां, दुष्ट-व्रण, पृष्ठव्रण, छोटी माता, निकसारी, चेचक, आमाशय, पेटकी बीमारियां, सुजाक, उपदंश, हिस्टीरिया, अन्त्रपुच्छप्रदाह रोग (appendicitis), डिपथिरिया और प्लेग आदि सभी नया रोग (acute disease) आरोग्य होते हैं।

इससे पुरानी बीमारियां (chronic disease) भी समान रूपसे अच्छी होती हैं। क्योंकि सभी रोगोंका एक ही मूल कारण है। इसके द्वारा अजीर्ण (dyspepsia), अनिद्रा, स्नायविक दुर्बलता, यकृतका फोड़ा, मृगी (epilepsy), पाकस्थलीका घाव (gastric ulcer), सभी प्रकारके हृदय रोग, उन्माद रोग एवं लकवा प्रभृति आराम होते हैं (Henry

Lindlahr, M. D.—Practice of Natural Therapeutics P., 86—89)।

छोटे-मोटे रोग तो प्रायः दो एक लपेटके प्रयोगसे ही अच्छे हो जाते हैं। किंतु पुराने रोगोंमें इसका बार-बार प्रयोग आवश्यक होता है। पूरे समयतक प्रयोग करने पर साधारणतया महीने भर में चारसे आठ बार प्रयोग पर्याप्त होता है। किन्तु तीव्र रोगोंमें सप्ताहमें तीन बार तक इसका प्रयोग किया जा सकता है।

विभिन्न रोगोंकी चिकित्सामें यह अत्याज्य होते हुए भी कई रोगोंकी अवस्था विशेषमें लपेटका प्रयोग वर्जित है। चेचक आदि फूटनेवाले रोगोंमें गोटियोंके खूब अच्छी तरह निकल जाने पर इस लपेटका (pack) प्रयोग नहीं करना चाहिये। शरीरमें अत्यधिक फोड़ा, फुंसी और घाव होनेपर भी पैकका इस्तेमाल नहीं करना उचित है। हृदय रोगकी तेज हालतमें, अत्यधिक स्नायविक दुर्बलतामें, कृशताके साथ बहुमूत्र रोगमें और अत्यन्त कमजोर रोगियोंको कभी भी देरी तक भींगी चादरकी लपेट (sweating wet sheet pack) का प्रयोग नहीं करना चाहिये। इन सभी क्षेत्रोंमें फूटने वाले रोगोंको छोड़, अन्यान्य सभी अवस्थाओंमें रोगीको दिन-रात पूरे समयके लिये भींगी कमर-पट्टीका प्रयोग करनेसे भींगी चादरकी लपेट के समान ही लाभ होता है। दिनमें और पहली रातको इस पट्टीको दो या तीन घण्टे पर बदलते रहना चाहिये।

(५)

ताप स्नानसे क्यों लाभ होता है

हिसाब लगाकर यह देखा गया है कि एक जवान मनुष्यके चमड़ेका परिमाण १९ वर्ग फीट होता है। इस फैले हुए स्थानके प्रत्येक वर्ग इञ्च

जगहमें २,८०० छिद्र हैं, एवं एक सम्पूर्ण शरीरवाले व्यक्तिके सारे शरीरमें ७० लाख छिद्र होते हैं। इन छिद्रोंके साथ एक-एक छोटी नालीके आकारकी ग्रन्थियां लगी हुई होती हैं। मनुष्य शरीरकी इन ग्रन्थियोंको यदि एक बार एक एक कर फैलाया जाय तो उनका यह फैलाव १० मील तक हो सकता है। इन छिद्रों से देह फेफड़ा की तरह अम्लजन-वायु (oxygen) को अन्दर खींचता है। इसलिये बहुतसे लोग चमड़ेको तीसरा फुसफुस भी कहते हैं। इन्हीं छिद्रोंकी राहसे आध सेरसे लेकर एक सेर तक दूषित पदार्थ प्रत्येक दिन शरीरसे बाहर निकलता है। बहुतसे समयोंमें यह गैसके रूपमें बाहर होता है। इसलिये हम उसे देख नहीं सकते हैं। किन्तु गर्मीके दिनोंमें अथवा कसरतके बाद या वाष्प-स्नान लेनेसे यह पसीनेके रूपमें चमड़ेके बाहर निकल आता है। रासायनिक जांच करके देखा गया है कि, यह पसीनेके साथ शरीरके विभिन्न पुराने पदार्थ और यूरिक एसिड और यूरिया (uric acid and uria) प्रभृति जहर शरीर से निकलता है। यह जहर इतना विषैला होता है कि इसका थोड़ा ही अंश किसी चूहेके बदनमें प्रवेश करा देने मात्रसे वह मर जाता है (H. Lindlahr, M. D.—Nature Cure, P. 222)। यदि यह जहर शरीरसे बाहर न हो, तो आदमीकी मृत्यु भी हो सकती है। विभिन्न जानवरोंके चमड़ेके ऊपर वार्निश लगाकर उसकी परीक्षा की गई है।

जिन रास्तोंसे प्रकृति प्रतिदिन एक सेर दूषित पदार्थ बाहर निकालती है, अगर वे रास्ते बन्द हो जायँ तो मनुष्य बीमार न हो तो क्या हो ? हमारी बहुतसी बीमारियाँ इन्हीं चमड़ेके छिद्रोंके बन्द हो जानेसे पैदा होती हैं। पुराने रोगोंमें रोम-कूप प्रायः बन्द रहते हैं। उठते हुए रोगमें भी चमड़ेके छिद्र बन्द हो जाते हैं। जब हम स्टीम बाथ

इत्यादि की सहायतासे रोम कूपोंको खोल देते हैं तो शरीर और उसके भीतर के दूषित पदार्थ पसीनेके रूपमें बाहर निकल आते हैं और रोग अपने आप दूर हो जाता है।

किन्तु वाष्प-स्नानसे रोम-कूपके रास्तेसे जितना पुराना और इकठ्ठा विजातीय पदार्थ निकलता है, उससे बहुत ज्यादा अन्य रास्तेसे निकलता है। देहके रुग्णावस्थामें देहका कोप और तन्तु प्रभृतिमें जितना ही दूषित पदार्थ संचित रहता है वह वाष्प-स्नानसे तरल होजाता है (are rendered soluable) और खून में आकर मल-मूत्रसे बाहर निकल जाता है।

प्रतिदिन हमारे देहसे जो मल बाहर होता है, वह सभी हम लोगोंके भोजनका किया हुआ अंश है, ऐसा सोचना भ्रम है। सचमुच अधिकांश मल ही अँतड़ीके अन्दर में पैदा होता है (F. R. Winton, M. D—Human Physiology, P. 225)। शरीरका दूषित पदार्थ हमेशा छोटी और बड़ी आँतोंकी दिवालोंके भीतरसे निकलता है। इससे ही मलका एक स्थूल अंश गठित होता है (Ernest H. Skarling, M.D, F. R. C. P.—Principles of Human Physiology, P. 630)। इसलिये उपवास का हालत में भी अँतड़ी के भीतर कुछ न कुछ मल पैदा होता है। शरीरके दूर दूर अंशोंमें जो कूड़ा-कर्कट सोया हुआ रहता है, वह वाष्प-स्नान आदिसे गल जाता है और मलके आकारमें और थोड़ा मूत्रके साथ बाहर हो जाता है। इसलिये सभी प्रकारका वाष्प-स्नान शरीरको दोषमुक्त करनेका एक प्रधान तरीका है। इसीलिये ही वाष्प-स्नान आदि ग्रहण करनेके बाद प्रचुर परिमाणमें पानी पीकर और कोष्ट परिष्कार करके देहके गृहको साफ करनेके कार्य्यमें सहायता करना चाहिये।

इस सम्बन्धमें जो गवेषणा हुआ है, इससे निश्चित रूपसे प्रमाणित हुआ है कि ताप स्नानसे सारे शरीरमें खूनकी चलती बढ़ जाती है, फेफड़ेका आक्सिजन ग्रहण और कार्बन विसर्जनकी शक्ति वृद्धि पाती है और खून भी क्षार धर्मी होता है (George William Nerris, M. D.—Blood-pressure, P. 262) ।

किन्तु इससे किसीको यह न समझ बैठना चाहिये कि, हमारे देहमें पसीना पैदाकर आरोग्य प्राप्त करनेकी इस प्रथाका श्रीगणेश अंग्रेजोंने किया । चरक पढ़नेसे अवाक हो जाना पड़ता है, कि उसमें पसीना लानेकी कई स्नानोंकी विधियोंका वर्णन है ।

वाष्प-स्नानके बारेमें चरकका कहना है कि, हांड़ीमें विभिन्न प्रकारके पसीना पैदा करनेवाले पदार्थोंको रख और उन्हें गरम कर, हांडीके मुखमें नाली बिठाकर उसके भापसे बीमार को पसीना कराना चाहिये या नलीको झुका कर उसके द्वारा भापका स्नान कराना चाहिये । भाप रोगीके शरीरमें सीधे न लग कर टेढ़ी पड़नी चाहिये, क्योंकि ऐसा होनेसे उसका जोर अधिक नहीं होने पायगा और इससे शरीरमें दाह भी पैदा नहीं होगी । अतः यह स्नान सुखदायक होगा (सूत्रस्थानम्, १४।२९) ।

चरकमें इस प्रकारको कई पसीना पैदा करनेवाली विधियोंका वर्णन है ।

———

पंचम अध्याय

जलपान और आरोग्य

[१]

हमलोगोंका शरीर एक प्रकारकी जटिल जल-प्रणाली कही जा सकती है। छोटी और बड़ी कई तरहकी नालियोंके भीतरसे इसके एक हिस्सेसे दूसरे हिस्सेमें विभिन्न जातीय तरल पदार्थ दौरा करते रहते हैं। प्रकृति शरीरके प्रत्येक तन्तुमें जो पौष्टिक तत्व पहुँचाती है, उसका ले जानेवाला भी यह जल ही है। शरीर का छोटासे छोटा कोष भी पानीसे धुलता रहता है।

हमारे शरीरमें ७० हिस्सा पानी है। हमारी लारका ९९.५ भाग पानीसे बना हुआ है। पाकस्थलीका अम्लांश ९७.५, पेशाबका ९२.६, पित्तका ८८, मांसका ७५, पसीनेका ५६.८, यहांतककी हड्डियोंका भी १३ वां हिस्सा पानी है। शरीरका यह पानीवाला हिस्सा नियमित रूपसे मल, मूत्र और पसीनेके साथ बाहर निकलता रहता है। शरीरमें इस रसकी समताको ठीक बनाये रखनेके लिये विशेष रूपसे पानी पीनेकी आवश्यकता होती है। यदि हम ऐसा न करें, तो प्रकृति खून, मांस-पेशियों और शरीरके तन्तुओंसे पानीका हिस्सा खींचनेके लिये बाध्य हो जायगी। इससे शरीर दुबला-पतला होने और फिर सूखने लगता है। शरीरमें जलकी कमीके कारण पहले कब्जियत होती है। इसके बाद खूनकी कमी और फिर क्रमशः शरीरमें कई प्रकारके रोगोंके लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

जिस प्रकार नाली या मोरीको साफ करनेके लिये बहुत-सा पानी छोड़ना

पड़ता है, इसी प्रकार शरीरकी नालीको भी साफ रखनेके लिये काफी पानी पीना आवश्यक है। हमारा शरीर प्रतिदिन क्षय होता रहता है। जो सारे जीवकोष (cell) नष्ट हो जाते हैं, खून उनको धोकर बाहर कर देता है। किन्तु खूनमें पानीके अंशकी कमी रहनेसे इन नष्ट जीव-कोषोंमेंसे कुछ अंश शरीरमें ही रह जाते हैं, जिनके फलस्वरूप शरीरमें विजातीय पदार्थ जमा होने और बढ़ने लगते हैं।

शरीरका बहुत-सा विष पेशाब द्वारा बाहर निकल जाता है। यह विष कितना भयंकर होता है, यह इसीसे जाना जा सकता है कि, यदि दो दिनोंतक यह बाहर न निकले तो सारा शरीर जहरीला हो जायेगा। शरीरकी इस दशाको युरेमिया (uræmia) कहते हैं। शरीरके विष और विभिन्न दूषित पदार्थोंको निकालनेके लिये मूत्र द्वार ही प्रकृतिका एक मुख्य दरवाजा है। हर रोज खूब पानी पीनेसे प्रकृति पेशाबके भीतरसे काफी मात्रामें दूषित पदार्थ बाहर निकालनेमें समर्थ होती है।

इसलिये पर्याप्त मात्रामें पानी पीना ही सब रोगोंका एक अच्छा और उत्तम इलाज है।

पानीमें पेट साफ करनेकी असाधारण शक्ति है। सवेरे उठकर बिस्तरा छोड़नेके आध या एक घंटा बाद अगर तीन बार आध-आध घंटेपर आध-आध गिलास पानी पी लिया जावे, तो पेट साफ करनेमें यह विशेष सहायता पहुँचाता है। कई बार तो एक गिलास पानी पी लेनेसे ही विशेष फायदा हो जाता है। आर्य-ऋषि लोग इसे ऊषापान कहते थे।

शरीरकी ग्लानिको दूर करनेके लिये पानीसे बढ़कर दूसरी कोई चीज नहीं है। बहुधा ऐसा होता है कि शरीर टूटने लगता है, चेहरेकी हँसी गायब हो जाती है और छोटी-छोटीसी बातपर भी गुस्सा आने लगता है।

ऐसी हालतमें एक गिलास ठंडा पानी पी लेनेसे पांच मिनटके भीतर ही अवसाद नष्ट हो जाता है और फिर मन प्रफुल्लित हो उठता है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि हम अपनेको अस्वस्थ बोध करने लगते हैं। शरीरमें क्या बीमारी है पता नहीं, पर फिर भी ऐसा मालूम होता है मानो कुछ हो गया है, जी मिचलाने लगता है या खट्टे डकार उठने लगते हैं। ऐसी अवस्थामें भी एक गिलास ठंडा पानी पीनेके साथ ही बहुधा शरीर की स्वाभाविक अवस्था फिर वापिस आ जाती है।

बुखारमें पानी पीना अत्यन्त ही लाभदायक है। रोगी जितना पानी बिना किसी तकलीफके पी सकता हो उसे उतना पानी पिलाना चाहिये। बुखारकी हालतमें घंटे-घंटे भर पर आधा गिलाससे लेकर एक गिलास तक पानी पीने से बहुत फायदा होता है। क्योंकि पानी शरीरसे काफी मात्रामें जीवाणु, कीटाणुओंका विष और विजातीय पदार्थ बाहर निकाल ले जाता है। बुखारमें ठंडा पानी पीनेसे नाड़ियोंकी गतिमें १० से १५ बार तक की कमी आ जाती है। किन्तु जब रोगीको जाड़ा लग रहा हो या कंपकंपी आ रही हो, तब उसे कभी भी ठंडा पानी नहीं पिलाना चाहिये। ऐसी अवस्थामें रोगीको हमेशा गर्म पानी देना ही जरूरी है। पसीनेकी हालतमें भी बुखारके मरीजको ठंडा पानी पिलाना ठीक नहीं। बुखारके रोगीको पानीमें कुछ बूंद नींबूका रस निचोड़ कर देना चाहिये। इससे उसे बहुत फायदा पहुँचता है।

वात रोगमें पानी पीना बहुत ही फायदेमन्द है। यह खूनको पतला करता है एवं शरीरके भीतर इकट्ठी हुई यूरिक एसिड (uric acid और अन्यान्य विषोंको गलाकर बाहर निकाल देता है। अधिक पानी पीनेसे पसीनेमें वृद्धि होती है, इसी कारण वात रोगमें जलपान अत्यन्त फलदायक है।

जो लोग बहुत मोटे हो गये हों, उनके लिये वाष्प स्नान और भोजनका नियंत्रण आदि ही उनकी मुख्य चिकित्सा है। किन्तु वे यदि काफी मात्रामें

पानी पीयें तो सभी शरीरके भीतरके टूटे हुए कोप आसानीसे शरीरसे बाहर निकल सकते हैं।

मधुमेह (diabetes) रोग में काफी पानी पीनेसे शरीरके भीतर इकट्ठी हुई अधिक शक्कर (चीनी) पसीने और पेशाबके साथ बाहर निकल-आती है। इससे रोगीको काफी आराम पहुंचता है। मैं एक रोगीके बारेमें जानता हूं जो केवल जल पीकर ही इस असाध्य रोगसे छुटकारा पा गया था।

एक विशेषज्ञ डाक्टरका कहना है कि यदि संसारका हर मनुष्य ८ औंस वाले गिलाससे रोज आठ गिलास पानी पीये और मांस खाना छोड़ दे तो दो पीढ़ियोंके भीतर पृथ्वीपरसे मधुमेह रोगका नामोनिशान मिट जाये।

पांडु (पीलिया) रोगमें दिनमें दस-बारह गिलास पानी पीनेसे इस रोगसे छुटकारा मिल सकता है।

जिन्हें पुरानी बदहजमी, कोष्टबद्धता या अन्य प्रकारकी कोई पेटकी बीमारी हो, उन्हें भोजनसे एक घंटा पहले दोनों वक्त एक-एक गिलास पानी पीनेसे आश्चर्यजनक लाभ होता है।

खाली पेट में पानी पीना होतो उसमें हमेशा नीबूका रस मिलाकर पीना चाहिये। इस प्रकार रोजाना कमसे कम तीन नीबू का रस पी जाना बहुत ही गुणकारी है (H. Valentine Knaggs—The Lemon-cure, P. 1—17)।

यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं कि पीनेका जल स्वच्छ होना अत्या-वश्यक है। गन्दा जल पीनेसे हर प्रकारका रोग हो सकता है। जिस जगह स्वच्छ पानी न मिलता हो, वहां जलको उबालकर एवं छानकर स्वच्छ बना-कर ही पीना अच्छा है।

[२]

पानी पीनेका यह नियम है कि भोजनके समय पानी न पीकर उसके एक घंटेसे लेकर डेढ़ घंटे पहले पानी पी लिया जाये। खूब चबाचबाकर खानेसे लार इत्यादि पाचक रस इतने परिमाणमें खाये हुये पदार्थके साथ पेटमें चले जाते हैं कि और पानी पीनेकी जरूरत ही नहीं रहती।

भोजनके समय या ठीक उसके बाद सोडा, लेमनेड या अन्य प्रकारकी पीनेवाली वस्तुओं के व्यवहार से पाचक रसों की शक्ति नष्ट हो जाती है, इन्हीं बुरी आदतों के कारण ही बहुधा कब्जियत और बदहज़मीके रोग पैदा हो जाते हैं।

यह प्रकृतिके नियमके विरुद्ध है कि हम भोजनके समय पानी पीयें। हम देखते हैं कि जंगलके पशु एक समय भोजन करते हैं और दूसरे वक्त पानी पीते हैं; पानी पीनेके समय वे दल बाँधकर नदी या तालाबके किनारे जाते हैं। पालतू बिल्ली और कुत्ते भी जिस समय खाना खाते हैं उसी समय पानी नहीं पीते। सभी प्राणियों की स्वास्थ्य रक्षा के लिये यह सबसे अच्छा नियम है।

प्रकृतिके इस नियमके पालन करनेसे असाध्य कब्जियत और अजीर्ण जैसे रोग भी थोड़े ही दिनों में दूर हो जाते हैं। भोजनके समय पानी नहीं पीनेसे सभी पाचक रस खाये हुए पदार्थ पर अपना असर करते हैं। इसके फलस्वरूप कमजोर रोगीकी भी पाचनशक्ति इससे बढ़ जाती है। जिन लोगों को कोष्ठ-बद्धता हो, यदि वे भोजनके समय पानी पीना छोड़ दें तो खाये हुये पदार्थको हजम करनेके लिये आँतों में इतनी ताकत आ जाती है कि वे दिनमें एक दो बार इकट्ठे मलको बाहर कर दें (Redei Mallett—Nature's Ways, P. 16—17)।

बहुत दिनों से चले आते हुए अभ्यासके कारण पहले पहल भोजनके समय

या बादमें प्यास लग सकती है, किन्तु तीन-चार दिन बाद देखनेमें आयेगा कि फिर इस समय प्यास नहीं लगती।

परन्तु नियमित रूपसे पानी पीना किसी भी हालतमें बन्द नहीं करना चाहिये क्योंकि जल ही शरीरके लिये प्राण (जीवन) स्वरूप है। किन्तु पानी पीनेका सबसे अच्छा समय भोजन के एक डेढ़ घंटे पहले है, जब कि पेट खाली रहता है और भोजनके एक घंटा बाद जब कि खाये हुये पदार्थ पर पाचक रसोंकी क्रिया समाप्त हो चुकती है।

जब पेट खाली हो तभी खूब पानी पीना चाहिये। एक बार एक गिलास पानी पी लेनेके बाद जब वह शरीरसे बाहर निकल जाये तो फिर पानी पिया जा सकता है। इसी प्रकार जरूरतके मुताबिक सुबह दो गिलास, दोपहरको भोजनके पहले एक गिलास, इसके एक घंटा बाद से शामतक दो गिलास और रातमें भोजनके पहले एक गिलास ठंडा पानी पी लेना ही पानीका ठीक ठीक पीना कहा जा सकता है।

भोजनके समय पानी पीनेकी बुरी आदतको छोड़कर इससे पहले उपरोक्त विधिसे पानी पीनेसे पेटकी कोई भी बीमारी रह नहीं सकती। फलस्वरूप बहुत ही थोड़े समयमें शरीर मजबूत, स्वस्थ और पुष्ट हो जायगा।

भोजनके पहले पानी पीनेसे भूख और पाचन शक्ति बढ़ती है और पाकस्थली मजबूत हो जाती है। पाकस्थलीके भीतर खाये हुए पदार्थका जो अंश सड़ता रहता है, पानी पीनेसे बिल्कुल बह चला जाता है। फलस्वरूप घंटे भर बाद जब नया भोजन वहां आता है, तब पाचक रस और खाद्य पदार्थके बीचमें तीसरा कोई भी पदार्थ नहीं रहता। इसी कारण भोजन करनेके पहले पानी पीने से अजीर्ण, पाकस्थलीकी जलन और उससे उत्पन्न विविध रोगों से बहुत जल्द छुटकारा मिल जाता है।

इससे कमजोर यकृत मजबूत हो जाता है एवं बहुत सा पित्त निकलकर खाये हुए पदार्थमें मिल जाता है।

इससे पेशावमें कोई रुकावट नहीं होती। पेशाव काफी मात्रामें होता है और वह साफ तथा दुर्गन्ध रहित हो जाता है। मूत्राशय (kidney) जो पेशावको खूनसे छानता है, उसका वह काम भी आसान हो जाता है। इससे अंतड़ियोंकी क्रमिगतिमें स्फूर्ति आ जाती है और उनके भीतर बहुत दिनों तक एकत्रित होकर मल सड़ने नहीं पाता।

इससे खून साफ और पतला हो जाता है और सारे शरीरमें इसका दौरा अच्छे ढंगसे होने लगता है (Emla Stuart—What must I do to get well ? and how can I keep so ? 32 nd. Edition, P. 22-24)।

साधारणतया पीनेका पानी प्रायः ठण्डा (७०°) होना चाहिये। किन्तु बुखार और कब्जियतमें और भी अधिक ठण्डा पानी (६०° से ६५° तक) अच्छा होता है। परन्तु पानी पीनेका एक खास तरीका होता है। कलसीसे पानी ढालकर गटगट पीने नहीं लगना चाहिये। पानीको एक गिलासमें ढालकर एक दूसरे गिलासमें कई वार फेंट लेना चाहिये। इससे पानीके अन्दर हवाका प्रवेश होता है और उसमें प्राणका संचार होता है। इस तरीकेसे पानी पीनेसे यह शरीरको बहुत ही फायदा करता है। दूध, शरवत इत्यादि को भी ठीक इसी ढगसे पीना चाहिये (Yogi Ramcharak— Practical Water-cure, P. 10)।

पानी पीना गुणकारी है सही, परन्तु कई अवसरोंपर जल पीनेमें विशेष सावधानीकी आवश्यकता पड़ती है। ठंड लगनेके कारण छातीमें दर्द होनेपर तथा बहुत थकान और पसीनेकी हालतमें पानी पीना ठीक नहीं। जो रोगी बहुत दुर्वल हों उन्हें बड़ी सावधानीके साथ पानी पिलाना चाहिये

पानी पीनेका सबसे निरापद नियम यही है कि पानी जितना सह्य हो सके अर्थात् जितना पीनेसे किसी प्रकारके कष्टका अनुभव न हो, उतना ही पीना उचित है। ज्यादा पानी पीना कम पानी पीनेके समान ही खराव है।

जो लोग काफी मात्रामें पानी पीनेके अभ्यस्त न हों, उन्हें चाहिये कि पहले पहल वे केवल चौथाई गिलास मात्र ही पानी पीयें। फिर धीरे धीरे इसकी मात्रा बढ़ानी चाहिये।

भर पेट पानी पी चुकने पर कभी भी भोजन नहीं करना चाहिये। क्योंकि इस प्रकार खाया हुआ भोजन असलमें पानीमें फेंकनेके ही समान है।

[३]

ऐसे भी अनेकों रोगी होते हैं जिनके शरीरमें पानीकी मांग (demand) होती ही नहीं। उनके शरीर में पानी की वह मांग उत्पन्न कराना अत्यन्त आवश्यक है। वाष्प-स्नान और उष्ण पाद-स्नानसे यह मांग पैदा हो जाती है। इस मांग को पैदा करनेका अर्थ है शरीरके विकारको मूत्रद्वारसे बाहर निकाल फेंकनेके लिये प्रकृतिको तैयार करना। ऐसी अवस्था आने पर काफी जल पीनेसे ही वास्तविक लाभ होता है।

परन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हमारा मूत्रयन्त्र (kidney) जो रक्तसे मूत्र छान लिया करता है—अपने इस कार्यमें शिथिल पड़ जाता है। हमारा मूत्राशय दोनों कटि प्रदेशमें (in the lumber region) उदरकी लपेटनेवाली झिल्लीके पीछे मेरुदण्डकी दोनों ओर अवस्थित है। यह क़रीब ४ इञ्च लम्बा होता है। खूनसे पेशावको छानकर शरीरसे निकाल बाहर करना ही मूत्राशयका काम है। जब यह कमजोर हो जाय और उचित मात्रामें मूत्र तैयार करनेमें असमर्थ हो, तब इसे गरम और ठंडी

पट्टी (the hot and cold renal compress) द्वारा बड़ी आसानीसे चङ्गा किया जा सकता है।

खूब ठंडेपानीसे भींगी हुई एक तौलियेको छातीकी हड्डीके निचले एक तिहाई भाग (lower third of the sternum) पर रखकर साथ ही साथ पीठके निचले आधे हिस्सेसे लगाकर चूतड़के अन्तिम भाग तकको सेंक देनेसे ही यह पट्टी हो जाती है। हर १० मिनटके वाद ठंडी और गरम दोनों ही पट्टियोंको हटाकर ठंडी पट्टीकी जगह एक गर्म फ्लानेल कपड़ेसे एक मिनट तक धीरे धीरे रगड़कर गर्म कर लेना चाहिये एवं सेंकनेकी जगह भी आधी मिनट तक ठंडेगमछे द्वारा पोंछ लेना आवश्यक होता है। इसके वाद ही फिर तुरंत गरम और ठंडी पट्टी यथास्थान रखना चाहिये। इसी प्रकार २० मिनट से लेकर एक घंटे तक यह क्रिया चालू रखी जा सकती है। किन्तु इससे रोगीकी छातीमें ठंड न लग जाये, इसलिये प्रयोगके अन्तमें विशेष साव-धानीके साथ रोगीकी छाती को रगड़कर फिर गर्म कर लेना चाहिये।

छातीकी हड्डीके नीचेके इस ठंडे प्रयोगसे स्नायविक प्रतिक्रियाके द्वारा दोनों मूत्राशय बड़ी तेजीसे संकुचित होते हैं। फलस्वरूप उनमें बन्द रक्त ओर विभिन्न दूषित पदार्थ वड़ी तेजीसे वाहर हो जाते हैं। साथ ही साथ पीठकी ओर सेंक देनेके फलस्वरूप इस भागमें खूनका दौरा तेज हो जाता है। अतः खूनकी अधिकता और विषके वोझसे मूत्र यंत्र वड़ी जल्दी छुट-कारा पा जाता है और देखते-देखते इन दोनों यंत्रोंके मूत्र उत्पादन करनेकी शक्ति वढ़ जाती है। शोथ, टाइफाइड, डिपथिरिया, चेचक और अन्यान्य सभी रोगोंमें जब पेशाव भारात्मक रूपसे कम हो जाये तभी इस प्रयोगका इस्तेमाल करना जरूरी हैं। किन्तु वहुत कमजोर रोगीको काफी देर तक या अत्यधिक गरम या ठंडा देकर कभी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये।

षष्ठ-अध्याय

स्नान और आरोग्य

[१]

बाजारोंमें टानिक के नामसे जो कई प्रकार की दवाइयां बिकती हैं, वे थोड़े समय के लिये स्नायु मण्डलमें एक प्रकारकी कृत्रिम चंचलता पैदा कर शरीरमें एक प्रकार की उत्तेजना की सृष्टि करती है। हमलोगों को भ्रम हो जाता है कि वे शक्ति संचारिणी हैं। परन्तु थोड़े ही समय बाद ये और भी अधिक अवसाद का कारण बन जाती हैं। इसके विपरीत ठंडे पानी के स्पर्श से जो जीवनी शक्ति उत्पन्न होती है, वह कभी भी अवसाद (ग्लानि) के रूपमें परिणत नहीं होती। बल्कि यह बहुत समय तक स्थायी रहती है।

इसलिए ठंडे पानीका स्नान ही सबसे बड़ा टानिक है और शरीर को विष रहित करने के साथ साथ इससे बहुतसे रोगोंसे छुटकारा मिल सकता है।

प्राचीन रोमवासियोंने अपने बाहुबलसे एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। किंतु प्रायः पांच सो वर्षों तक लड़ाई के मैदानों में बड़े बड़े स्नानागारों के अलावा उनकी चिकित्सा का और कोई प्रबंध न था। स्नानागार ही केवल मात्र उनके अस्पताल थे। रोमकी सेनाको किसी जगह भेजने के पहले वहाँ स्नानागार बनवा लिये जाते थे। रोम देशवासी अपने सैनिकों को रोजाना स्नान करवा कर ही उन्हें रोगसे मुक्त रखते थे (F. W. Powel—Water Treatments, p. 24-30)।

पुराने समयमें ग्रीस के स्पार्टा देशके रहने वाले अपनी बहादुरी के लिये बहुत प्रसिद्ध थे। इस देशकी सरकार ने कानून द्वारा सर्वसाधारण के लिये

स्नान अनिवार्य कर रक्खा था ; क्योंकि शरीरको रोगसे वरी रखनेके लिये स्नान ही प्रधान उपाय है।

हमारे पूर्वज भी हजारों वर्ष पहले इस वातकी पूरी जानकारी रखते थे। इसीलिये उन्होंने प्रातः स्नान, मध्याह्न स्नान, सन्ध्या स्नान, ग्रहण-स्नान, नन्दा स्नान, मकर-स्नान, वारुणी-स्नान आदि स्नानोंकी पद-पद पर व्यवस्था कर रक्खी थी।

आज कलके डाक्टरोंने भी स्नानके सम्बन्धमें कई तरहकी खोज कर यह स्थिर किया है कि स्नानके द्वारा सभी प्रकारके रोगोंका आक्रमण दूर किया जा सकता है।

एक वार मिश्र देशमें अंग्रेज सिपाहियोंमें मियादी बुखार (typhoid) फैला। इस रोगने इतने जोरोंसे फैलना आरम्भ किया कि कुछ ही दिनोंमें सेनाका पांचवा हिस्सा रोगग्रस्त हो गया और दिन पर दिन रोगियोंकी संख्या बढ़ने लगी। जिन लोगोंको टाइफाइड हुआ था, उनमेंसे वहुतोंको न्यूमोनियाने आ घेरा। तव वहांके प्रधान डाक्टरने सिपाहियोंको समुद्रके किनारे मार्च कराया और हर एक सिपाहीको दिनमें तीन वार स्नान करनेका हुक्म दिया। इसका आश्चर्य जनक परिणाम यह हुआ कि, दो-तीन दिन वाद ही रोगका आक्रमण ढीला पड़ गया और थोड़े ही दिनोंमें नया आक्रमण एकदम वन्द हो गया (J. H. Kellogg, M. D.—Rational Hydrotherapy, P. 532)।

इसमें कोई भी आश्चर्यकी वात नहीं। शरीरकी जीवनी शक्ति एवं उसमें रोगसे मुक़ावला करने की ताकत (vital resistance) जिस समय कम हो जाती है, उसी समय रोग हमें आ घेरते हैं। इसके पहले किसी भी प्रकारके कीटाणु रोग पैदा नहीं कर सकते। ठंडे पानीसे नहानेसे जीवनी शक्ति और रोगोंके मुकाविला करनेकी ताकत वहुत ही वढ़ जाती है। इसलिये

नियमित रूपसे स्नान करने मात्रसे ही बहुत से रोग काफूर हो जाते हैं।

स्वाभाविक ढंगसे भी रोगके आक्रमणसे आत्मरक्षा करनेका सबसे अच्छा और प्रधान उपाय स्नान ही है।

इङ्गलैंडके प्रधान डाक्टर क्यूरी (Dr. James Currie) कहते हैं कि अगर कोई अगनित प्लेग के रोगियोंके बीचमें रहे और नियमानुसार स्नान करता रहे तो वह प्लेगकी बीमारीसे अछूता रह सकता है। दूसरे एक और प्रसिद्ध डाक्टर (Alfred Mertinet, M. D.) का कहना है कि, रोगके कीटाणुओंको रोकनेके लिये स्नान की तरह और कोई दूसरी चीज नहीं (Clinical Therapeutics, P.875)। यदि देशमें महामारीका जोर हो तो दिनमें दो तीन वार ठंडे पानीसे स्नान करनेसे रोगसे वरी रहा जा सकता है।

शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये नियमानुसार दिनमें दो वार स्नान करना सबसे उत्तम उपाय है। नियमित रूपसे स्नान करनेसे हाजमा शक्ति बढ़ती है, भूख लगती है और मनमें सन्तोष तथा आनन्द छाये रहते हैं।

हमारे देशमें स्नानके बाद भोजन करनेकी पद्धति है। इसका कारण यह है कि, स्नानसे पाकस्थली मजबूत होती है और उससे बहुत अधिक पाचक रस खर्च हुए पदार्थमें चला आता है। इसी कारण भूख और हाजमा शक्ति बढ़ जाती है।

आजकलके अनुसन्धानसे यह सिद्ध हो गया है कि टाइफाइड, हैजा, एवं अन्यान्य रोगोंके कीटाणु पाकस्थलीके स्वस्थ पाचक रसके अन्दर बहुत समय तक कदापि टिक नहीं सकते। इसीलिये ठंडे पानीके स्नान द्वारा बहुत से रोगोंसे अछूता रहा जा सकता है।

इससे आंतोंकी रस सोखनेकी ताकत बढ़ती है, जिससे शरीर पुष्ट होता है।

अचानक ठंडे पानीके छू जाने मात्रसे ही शरीरके अन्दर एक प्रकारकी उत्तेजना पैदा हो जाती है। इससे लिवर और मूत्रयन्त्र (kidney) अपना काम अच्छी ढंगसे करने लगते हैं। अतः लिवर प्रत्येक दिन शरीरके जिस विषको नष्ट कर देता है एवं किडनियाँ खूनसे जिस विषको छान कर प्रति क्षण बाहर करती रहती हैं—उनका यह काम इसके द्वारा वेरोक टोक चलने लगता है।

हृदयको ठीक रखनेके लिये नियमित स्नानके समान और कोई दूसरी चीज नहीं। ठंडे पानीसे हृदय इतना मजबूत हो जाता है कि अल्कोहल, डिजिटेलिस, स्ट्रिकनियाँ इत्यादि संसारकी दवाईसे किसी भी इतना फायदा होना असम्भव है।

जो लोग अधिक मानसिक कार्य करते हैं, उनके लिये दोनों वक्त स्नान अत्यन्त लाभ दायक है। स्नानके वाद सिरमें नये खूनका दौरा होने लगता है। मन यदि खिन्न एवं ढीला ढाला रहे तो स्नान मात्रसे उसमें नवस्फूर्ति संचारित होने लगती है। इसीलिये नियमित रूपसे नहानेसे मानसिक शक्तियां (intellectual functions) प्रखर होती है।

[२]

रोगोंमें स्नान

कुछ लोग मामूली अस्वस्थ होते ही स्नान वन्द कर देते हैं। यह वैसा ही है, जैसा कि डाकुओंके आ पड़ने पर हथियार डाल देना।

स्नान जिस प्रकार रोगके आक्रमणसे हमारी रक्षा करता है, उसी प्रकार यह हमें रोगोंसे छुटकारा भी दिलाता हैं।

अमेरिकाके न्यूयार्क अस्पतालमें कितने ही टाइफाइडके रोगियोंको बीचबीच में स्नान करा कर देखा गया है कि मृत्यु संख्या जहां प्रतिशत ३० से ४० थी, वहां यह संख्या नहीं के बराबर रह गयी।

इंगलैंडके सुप्रसिद्ध जलचिकित्सक डा० ब्रांडने १२२३ टाइफाइडके रोगियोंका इलाज पहले पहल जल-चिकित्सासे प्रारम्भ किया। इनमेंसे केवल १२ रोगियों की मृत्यु हुई। अर्थात् १ प्रतिशत से भी कम रोगीको मृत्यु हुई (J. H. kellogg, M. D.—Rational Hydrotherapy, P. 586)।

केवल टाइफाइड ही में नहीं वल्कि अन्य सभी प्रकारके बुखारोंमें स्नान अत्यावश्यक है। डा० मार्टिनेट, एम०, डी०, का कहना है कि, बुखारको मार भगानेवाली जितनी भी व्यवस्थायें हैं, उन सबमें जल-चिकित्सा ही सर्वोत्तम है (Clinical Therapeutics, P. 875)।

विभिन्न अस्पतालोंमें न्यूमोनियाके रोगियोंकी पहली अवस्थामें नियमानुसार जलचिकित्सा कराकर देखा गया है इससे मृत्यु संख्या औसतसे घटकर आधेसे भी कम हो गयी। चेचक आदि रोगोंमें भी अनुरूप फल प्राप्त हुआ है।

हम लोगोंके शरीरमें जो नियत ताप उत्पन्न होता है उसके १० हिस्सेमें से ९ हिस्सा चमड़े से बाहर निकल जाता है। इस तापको बाहर खींच निकालनेमें पानीसे बढ़कर दूसरी कोई चीज नहीं। इसलिये सब प्रकारके ज्वर के रोगियोंको अवस्य स्नान करना चाहिये।

जिस प्रकार कुनैन इत्यादि विषाक्त दवाइयोंसे ज्वर कम कर दिया जाता है, स्नान द्वारा भी ठीक उसी प्रकार ज्वर कम कर दिया जा सकता है। औषधिसे जो लाभ होता है वे सभी उसमें विद्यमान हैं, किन्तु उससे किसी प्रकारकी हानि नहीं होती। तेज बुखारकी कई हालतोंमें एक बारके स्नानसे आधी डिग्रीसे लेकर दो डिग्री तक कम हो जाता है।

किन्तु रोगीके शरीरके तापको किसी भी अवस्थामें खूब कम नहीं करना चाहिये। रोगके समय यदि शरीरमें काफी गर्मी न रहे तो रोगीके लिये यह अच्छा लक्षण नहीं है। यूरोपीय चिकित्सा विधिके प्रवर्तक हिपोक्रेट्स (Hippo

crates) ने कहा है, "मुझे जरा ज्वर दो, मैं उसके जरिये सभी रोगोंको दूर कर दूंगा।"

रोगके विषका पूरे मूलोच्छेद न होने तक शरीरमें पर्याप्त ताप (ज्वर) का बना रहना ही श्रेयस्कर है। इस तापके न रहनेसे प्रकृति किसी भी रोगको अच्छा नहीं कर सकती। किन्तु इस ज्वरका ताप जब अत्यधिक मात्रामें हो तब वह केवल रोगके विषको ही जलाता है, ऐसी बात नहीं, यह हमारे शरीरके रक्त और रसको भी भष्म करने लगता है। इसी कारण ज्वर की अवस्था शीतल जलका प्रयोग करके शरीरके तापको इस प्रकार नियन्त्रित रखना चाहिये जिससे कि यह ताप शरीरमें किसी प्रकारका अनिष्ट न करने पावे।

तेज बुखारमें वाष्प-स्नान आदिका प्रयोग रोगीके लिये अच्छा नहीं। उस समय नियमानुसार रोगीको स्नान कराकर ही वाष्प स्नानका काम लिया जा सकता हैं। शीतल जलके स्पर्शसे चमड़ा पहले संकुचित होता है सही, पर इसकी प्रतिक्रियाके फल स्वरूप रोमकूप इस प्रकार खुल जाते हैं कि इस खुले मार्गसे शरीरका पर्याप्त विष वाहर निकल जाता हैं—और रोगीका बुखार अपने ही आप कम हो जाता है।

स्नानसे शरीरमें रक्त कणिका—विशेष कर श्वेत रक्त कणिका वृद्धि होती है और ये कणिका रोगके कीटाणुओंका नष्ट कर देती है। इसी कारण ज्वरकी अवस्थामें शरीरमें अतिरिक्त तापको खींचकर ही यह केवल ज्वर कम नहीं करता वरन् रोगके मूल कारणका उच्छेद कर ही यह ज्वर कम करता हैं।

स्नानके वाद शरीरके विषको नाश तथा दूर करनेवाले यन्त्रोंकी शक्ति इस प्रकार वढ़ जाती है कि ये रोगके विष और उसके कीटाणुओंको शरीरके अन्दर नष्ट कर डालते हैं या उन्हें वाहर निकाल फेंकनेमें सक्षम हो जाते हैं। टाइफाइडके रोगीको स्नान कराकर देखा गया है कि साधारण तौरसे पेशाबमें जिस परिमाणमें विष वाहर निकलता है स्नानके वाद उसका परिमाण पांच-गुना अधिक वढ़ जाता है।

इसलिये ज्वर होने पर ही रोगीको स्नान करना चाहिये—ऐसी बाते नहीं, वल्कि प्रत्येक रोगीको ही स्नान कराना लाजिमी हैं। रोगीको अवस्थानुसार पूर्णस्नानसे लेकर स्पंज वाथ तककी विभिन्न व्यवस्था आवश्यक होता है।

रोगके समय स्नानका प्रधान गुण यही है कि इससे रोगी इतने आरामसे रहता है कि उसे पता ही नहीं चलता कि रोग किस प्रकार काफूर हो गया। बुखार आदिमें साधारणतथा कई उपसर्ग एकत्रित हो जाते हैं किन्तु रोगके आरम्भसे ही यदि रोगीको स्नान कराया जाये तो, पेटका फूलना, पतला दस्त आना, सिर दर्द, कानकी पीड़ा, न्यूमोनिया, दिलको जलन, मूत्र ग्रन्थिकी सूजन, खूनकी कमी एवं पक्षाघात इत्यादि उपसर्गोंका प्रकाश नहीं होने पाता एवं डाक्टरी पुस्तकोंमें हररोगके जिन लक्षणोंका उल्लेख है, उनमेंसे अधिकांश प्रकट ही नहीं होने पाते।

प्रायः देखनेमें आता है कि रोगके हटजानेपर रोगीका शरीर आधा हो गया है। किन्तु रोगकी पहली अवस्थामें जलचिकित्सा चलानेसे शरीर विशेष खराव नहीं होने पाता और रोगके दूर हो जानेपर ऐसा मालूम होता है याने, रोगीको कोई खास वीमारी ही नहीं हुई थी।

रोगके समय स्नान करानेसे रोगके वहुतसे लक्षण आश्चर्यजनक रीतिसे गायव हो जाते हैं।

स्नायु मंडलीको स्निग्धकर रोगीको नींद लानेमें स्नानसे वढ़कर और कोई दूसरा साधन नहीं।

रोगी हालतमें वहुधा फुस-फुस, लीवर, प्लीहा और मस्तिष्क इत्यादिमें खूनकी अधिकता हो जाती है। इस अवस्थाको दूर करनेके लिए एलोपैथीके डाक्टर इस शताब्दीमें भी जोंक लगाते हैं। किन्तु ठंडे पानीके स्नानके वाद स्नायविक प्रतिक्रियासे चमड़ेमें सारा खून फैल जाता है एवं आंतरिक खूनकी अधिकता जादूकी तरह छू मंतर हो जाती है।

जिस प्रकार रोगके समय स्नान जरूरी है, उसी प्रकार रोगके बाद भी स्नान आवश्यक है। प्रकृति जिस समय रोगके विषको नष्ट करना चाहती है उस समय वह शरीरके अंदर एक प्रकारकी गरमी पैदा करती है। यह उनकी नाशकारी मूर्ति है। ज्वरके बाद वह निर्माणके काममें लगती है। उस समय उचित स्नान द्वारा शरीरको स्निग्ध रखनेसे प्रकृतिको शरीरके संस्कारमें उचित सहायता मिलती है।

किन्तु स्नानके सम्बन्धमें लोगोंकी धारणा बिल्कुल उट पटांग होती है। यहां तक कि हम लोगोंके कई डाक्टर भी ठंडे पानीके स्नानके नामसे सिहर उठते हैं।

एक समय कलकत्तेमें जिस मकानमें मैं रहता था उसके पासवाले घरमें हरिपद घोष नामक एक लड़केको बड़े जोरका बुखार हो आया। सुबह ही से लड़केने इस प्रकार रोना चिल्लाना शुरू किया कि पासके घरमें लिखना पढ़ना हराम हो गया। वह लड़का एक होमियोपैथिक डाक्टरका कम्पाउडर था। पहले उसको डाक्टरका आदमी समझकर मैं उसके पास नहीं गया। इसके बाद मैंने देखा कि ग्यारह बज गये फिर भी किसीने उसके पास जाकर कुछ पूछा भी नहीं। तब मैं स्वयं उसके पास जा पहुँचा। जाकर देखता हूं कि उसका बुखार १०४° से भी ज्यादा है। रोगकी यंत्रणासे वह छट-पटा रहा है। तुरंत ही मैंने उसे बिछौनेसे उठाकर हिप बाथके लिये बैठा दिया। आश्चर्य की बात है कि पानीमें १० मिनट तक बैठे रहनेके बाद ही उसकी अस्थिरता कम हो गयी। मैंने करीब बीस मिनट तक उसको टबमें रक्खा। इसके बाद नियमानुसार उसके सारे शरीरको धोकर आठ दस लोटे जलसे उसे स्नान कराकर बिस्तर पर लिटा दिया। बिछौने पर लिटानेके बाद उसके सारे शरीरको कम्बलसे अच्छी तरह ढक दिया और उसे कुछ गरम पानी भी पिलाया। इससे खूब अच्छी तरह पसीना हुआ।

किन्तु इसी बीच उसके डाक्टरसे जाकर किसीने कहा कि मैंने उसके कम्पाउडरको पानीके लोटेके बाद लोटे उड़ेलकर खूब स्नान कराया है। सुनते ही डाक्टर मारे गुस्सेके आग बबूला होकर दौड़ा आया। मेरे कुछ कहनेके पहले ही उसने मुझे इस प्रकार गाली गलौंज देना शुरू किया कि मैं अवाक रह गया। मन ही मन मुझे भी बहुत गुस्सा आ रहा था पर मैंने कुछ कहा नहीं। उस घरके और लोगोंने भी कहा कि लड़केको जरूर न्यूमोनिया हो जायेगी। दूसरे दिन सुबहके वक्त जब लड़का नींदसे उठा तो सभी यह देखनेके लिये आये कि उसे कितनी न्यूमोनिया हुई है। किन्तु सभीने आश्चर्यके साथ देखा कि उसे अब जरा सा भी ज्वर नहीं था। कुछ दिनोंके बाद वह डाक्टर दुखित होकर मुझसे क्षमा याचनाके लिये आये। किन्तु मुझे तो इतना क्रोध आया था कि घटनाके तीन महीने बाद तक मैं उनसे बोला नहीं।

[३]

स्नानकी पद्धति (तरीका)

स्वस्थ अथवा अर्धस्वस्थावस्थामें डुबकी लगाकर स्नान करना सबसे उत्तम है। तालाब, नदी, पोखर या समुद्र में जहाँ कहीं भी हो, स्नान किया जा सकता है। शहरके लोग हौजसे पानी लेकर स्नान कर सकते हैं। किन्तु रोगीको खास तरीकेसे ही स्नान करना चाहिये।

यदि रोगी उठकर बैठ सकता हो और उसमें काफी ताकत हो, तो उसे घरके भीतर पूर्ण स्नान कराया जा सकता है।

पूर्ण स्नान (Full bath)

स्नानके पहले रोगीका सिर, मुंह, गर्दन, पेडू इत्यादि स्थानोंको ठंडे पानीसे अच्छी तरह धो डालना चाहिये। इसके बाद रोगीके सिर पर एक गीली तौलिया लपेटकर उसे स्नान करा देना चाहिये।

अनेक समय रोगी ठंडे पानीका बड़ा विरोध करते हैं। ऐसी अवस्थामें क्रमानुसार ठण्डे पानीके स्नानका (graduated bath) प्रयोग किया जा सकता है। पहले गरम पानीसे स्नान शुरू कर फिर बादमें कुछ कुछ समय बाद उसमें ठण्डा पानी मिलाकर धीरे धीरे पानीको ठण्डा करता जाना चाहिये। अथवा पुराने रोगियोंको प्रत्येक दिन पहले की अपेक्षा अधिक ठंडे पानीसे स्नान कराया जा सकता है। जिस प्रकार पहले कम ठंडे पानी व्यवहार करके क्रमशः अधिक ठण्डे पानीका व्यवहार करना पड़ता है उसी प्रकार धीरे धीरे स्नानका समय भी बढ़ाते जाना चाहिये। रोगीको पहले थोड़ा स्नान कराकर धीरे धीरे स्नानके समयको बढ़ाना उचित है। पहले पहल रोगीको तीन चार मिनट स्नान करानेके बाद फिर बढ़ाकर दस बारह मिनट तक स्नान कराया जा सकता है। इस प्रकार रोगी धीरे-धीरे ठण्डे पानीका आदी हो जाता है और किसी प्रकार की हानि होनेकी संभावना नहीं रहती।

रोगीको ठण्डे पानीसे स्नान कराते समय जरा भी रुके बिना हमेशा खाली हाथसे उसके शरीरको मलते रहना चाहिये। इससे रोगीको सर्दी लगनेका डर नहीं रहता और शरीरसे यथेष्ट मात्रामें ताप उतर आता है। स्नानके बाद ही बिना विलम्ब रोगीके शरीरको सूखे तौलिये या साफ चादरसे पोंछ देना चाहिये। इसके बाद रोगीके सारे शरीरको विशेषकर छाती और पीठको हाथोंसे मलकर गरम कर लेनेके बाद थोड़े समय तकके लिये उसके शरीरको गलेतक कम्बल इत्यादिसे जरुर ढक देना चाहिये।

अगर रोगीको मामूली हल्का स्नान देना उचित प्रतीत हो, तो उसे तौलिया स्नानका प्रयोग कराया जा सकता है।

तौलियेका स्नान (Sponge bath)

रोगी को एक छोटी चौकी के ऊपर गरम पानी में उसके दोनों पैरोंको डुबोकर बिठा अथवा मेजके ऊपर एक गरम पानीके वर्तनमें खड़ाकर या रोगीको बिछौने पर सुलाकर उसके पैरोंके नीचे गरम पानीकी बोतलें अथवा गरम पानीकी थैली रखकर पहले उसके सिर, मुख, गर्दन, जोड़, और जननेन्द्रियोंके ऊपरी भागको अच्छी तरह धो देना चाहिये। रोगी स्वयं ही जोड़ इत्यादि स्थानोंको गीली तौलियासे पोंछ सकता है। आखिरमें रोगीकी छाती और पेडू इसके बाद उसकी पीठ हाथ और पैर जरा दबाकर फुर्तीसे पोंछ देने चाहिये। अगर तौलिया सूख जाय तो उसे फिर गिलाकर लिया जा सकता है। इसके बाद एक सूखे तौलियेसे रोगीके सारे शरीरको अच्छी तरह पोंछकर उसे पैरोंके गरम स्नान (foot bath) से हटा देना चाहिये। अथवा उसके पैरोंके नीचे गरम पानीकी बोतलें या थैली इत्यादि हटा देना उचित है। उस समय रोगीके पैरोंपर दो लोटा ठण्डा पानी ढाल देना चाहिये या एक ठंडे पानीसे भींगे गमछेसे उन्हें पोंछ डालना चाहिये। फिर रोगीके सारे शरीर को विशेष कर उसकी छाती और पीठको खाली हाथकी मालिश द्वारा गरमकर कुछ समय उसे गलेतक एक कम्बलसे ढक देना उचित है।

(४)

स्नानमें सावधानी

जिस किसी प्रकार जैसे तैसे स्नान करने मात्रसे ही लाभ नहीं होता। स्नान का उद्दीपन फल उसी समय होता है जब पानी का ताप शरीरके तापसे कम हो, एवं पानी ठण्डा हो। कुछलोग सर्दीके भयसे गरम पानी से स्नान करते हैं। इन लोगोंका जुकाम जीवनमें कभी भी दूर नहीं होता। सर्दी लगनेकी सम्भावना से छुटकारा पाने के लिये सबसे अच्छा उपाय ठण्डे पानीके

स्नान का आदी होना है (William D. Zoethout—A Text-book of Physioloxy, p. 360)। ठण्डा पानी रोम कूपों को वन्दकर ठण्डेमें शरीर रक्षा करता है यह वात नहीं; वल्कि नियमित रूपसे स्नान करनेसे खून चमड़े में उतार कर स्थायी रूपसे रहने लगता है, एवं सारा रोगों को रोकने की ताकत (vital resistance) वढ़ जाती है। इसलिये सर्दी दूर हो जाती है।

रोगकी पहली अवस्थामें कभी कभी गरम पानी से स्नान करना जरूरी होता है। किन्तु उस समय भी इस वातपर विशेप ध्यान देना चाहिये कि पानी का उत्ताप धीरे धीरे कम किया जाय, जिससे रोगी जल्दी ठण्डे पानीका आदी हो जाय।

मामूली तौरसे ठण्डे पानीका स्नान थोड़े ही समय तक करना चाहिये। जितने समय तक आराम मालूम हो, उतने ही समय तक स्नान करना चाहिये। किन्तु वहुत समय तक स्नान करनेसे स्फूर्ति के वदले अवसाद आता है (Encyclopedia Medica, vol. VI, 257)।

परन्तु वुखारके वक्त थोड़े थोड़े स्नानसे कुछ लाभ नहीं होता है। जोरके वुखार के वक्त वरावर तौलिये का स्नान का प्रयोग कर शरीर का ताप कम कर देना होता है।

जिस समय जोरका वुखार हो, शरीरमें अस्थिरता और जलन हो, उसी समय स्नान सवसे ज्यादा फायदेमन्द होता है। किन्तु मलेरिया इत्यादि रोगों में जव कंप-कंपी और जाड़ेके साथ वुखार आया हो, या जव चमड़ा ठण्डा, होंठ नीले रंगका हो एवं शरीरमें कंप-कंपी वर्त्तमान हो, उस समय किसी भी हालतमें ठण्डे पानीसे स्नान करना ठीक नहीं है। वुखार की इस ठण्डी अवस्था (cold stage) के चले जाने मात्र पर ही स्नान या अन्य शीतल वाथ कराया जा सकता है।

कमजोर रोगीके बड़ी सावधानीसे स्नान करना जरूरी है। मजबूत रोगियों की अपेक्षा कमजोर रोगियों के शरीरमें ताप पैदा करने की शक्ति बहुत कम होती है। इसलिये कमजोर रोगी को बहुत अधिक ठण्डे एवं बहुत ज्यादा समय तक स्नान कराना नहीं चाहिये। किन्तु इस बातको भी याद रखना चाहिये, कि ठण्डे पानीसे अगर किसी को प्रयोजन है, तो वह सबसे ज्यादा कमजोर रोगी को है। क्योंकि ठण्डे पानीके सिवा जीवनी शक्ति को बढ़ाने वाली कोई चीज नहीं है।

बहुत छोटे बच्चे ठण्डे पानी को बरदास्त नहीं कर सकते हैं और अधिक ठंडे पानीसे उनको नहलाने से फिर शरीर भी आसानी से गरम होना नहीं चाहता है। इसलिये नातिशितोष्ण या थोड़ा गरम पानी ही (७०° से ८०°) उनके लिये काफी है। पर बच्चों को रोज नहलाना जरूरी है। यह जितना ही उनके शरीर को बढ़ाने के लिये जरूरी है, उतना ही उनके बीमारी से दूर रखने के लिये भी आवश्यक है। बहुतसे बच्चों की पेशाब बन्द हो जाती है। किन्तु रोज नहलाने से ऐसा कभी नहीं होता। जाड़ेके दिनोंमें पहले बच्चोंको तेल मालिश कर फिर कुछ समय धूपमें रखकर स्नान कराया जाय तो इससे उनकी कान्ति बढ़ती है, और आश्चर्य जनक ढंगसे पुष्ट होने लगते हैं।

हमलोगों की धारणा है कि मासिक होनेपर स्त्रियोंको स्नान नहीं करना चाहिये। किन्तु यह धारणा बिल्कुल गलत है। थोड़े कालके स्नानसे इस अवस्थामें किसी प्रकारकी हानि हो ही नहीं सकती बल्कि स्राव खूब अच्छी तरह होता है (T. Watts Eden, M. D., F. R. C.P.—Gynecology for Students and Practitioners, P. 1-1-4) किन्तु जिन्हें जरा जरामें ठंडक लगती है, उन्हें स्नान के बदले भींगी तौलिये से शरीर पोंछ लेना अच्छा होगा। यदि मासिक होने के समयमें ज्वर हो, तब नातिशीतोष्ण जलसे शरीर पोंछे लेनेमें हरगिज आना कानी नहीं करनी

चाहिये। तेज बुखारमें इस प्रकार जलके प्रयोगसे स्राव वन्द नहीं होता। किन्तु इस प्रकार के ज्वर के समय लापरवाही करनेसे रोगका निवारण करना कठिन हो जाता है (Lindlahr—Practice of Natural Therapeutics, p. 80)।

वहुत ही वुढे मनुष्य के स्नानके सम्वन्धमें भी विशेष सावधान रहना जरूरी है। इसलिये जिन लोगों को इसका पहले से अभ्यास न हो, उन्हें नातिशीतोष्ण पानीसे ही (७५° से ८५° F.) स्नान करना जरूरी है।

स्वस्थ मनुष्योंके कमसे कम दिनमें दो वार जरूर स्नान करना चाहिये। गरमी के दिनोंमें जितने समय तक शरीर को स्नान अच्छा लगे इसे करते रहना आवश्यक है। किन्तु जाड़े के दिनों में खूब थोड़े समय तक ही स्नान करना जरूरी है।

भोजन के वाद दो घण्टे के भीतर कभी भी स्नान नहीं करना चाहिये। स्नान के वाद भी जव चमड़े में गरमी वापस आ जाय तभी पथ्य या अन्न खाया जा सकता है।

जव शरीर गरम हो तभी स्नान करना अच्छा है। किन्तु थकी मांदी (exhausted) अवस्था में कभी भी स्नान नहीं करना चाहिये। उत्तप्त एवं श्रान्त अवस्था का भेद समझना अत्यन्त आवश्यक है। वहुत ज्यादा परिश्रम के वाद अगर थकान मालूम हो तो पूरा विश्राम कर लेने के वाद ही केवल स्नान करना चाहिये। इस प्रकार श्रान्त अवस्था में स्नान करने से मृत्यु तक होने की सम्भावन वनी रहती है।

स्नान के समय शरीर को खूव रगड़ते रहना चाहिये। तौलिये या अंगौछा खुरदरा हो तो अच्छा है। खुरदरी तौलिये से शरीर को रगड़ने से शरीर खूव साफ हो जाता है और रोम कूप खुल जाते हैं।

स्नान के पहले इस वातको विशेष रूपसे देख लेना आवश्यक है कि

शरीर गरम है या नहीं। No one ought to take a cold bath unless completely warm—शरीरके अच्छी तरह गरम न रहने पर कभी भी शीतल जलमें स्नान नहीं करना चाहिये (J. P. Multer My System, P. 17)। यदि शरीर गरम न हो तो स्वास्थ्यकी अवस्था के अनुकूल कसरत करके, धूपमें टहलना या मालिश करके शरीर को गरम करके उत्तप्त अवस्थामें ही स्नान कर लेना चाहिये। स्नानके वाद भी फिर शरीरको गरम कर लेना अत्यन्त आवश्यक है (British Encyclopedia of Medical Practice, vol. 6, p. 576)। यदि स्नान के वाद शरीर को ठंडी अवस्थामें ही रहने दिया जाय तब स्नानसे लाभ तो कुछ होगा नहीं, वल्कि हानिकी सम्भावना है।

सुखी मालिश (Dry friction)

☞ स्नान के वाद स्वस्थ शरीरको गरम करने की सर्वश्रेष्ठ विधि (सुखी मालिश dry friction) है। नहाने के वाद पानीको विल्कुल सुखाकर एक सुखी चादर या वड़ी तौलिये से शरीरके प्रत्येक अंश को खूब रगड़कर लाल एवं गरम कर लेने को ही सुखी मालिश कहते हैं। तौलिये के दोनों सिरों को पकड़कर उसे पीठकी तरफ करके वार वार इधर उधर खींचने से सारी पीठ कन्धासे कुल्हातक गरम की जा सकती है। गर्दन पर रगड़ते समय चादरको छातीकी तरफ राखकर वारवार खींचनेसे ही छाती गरम हो उठेगी। इसके वाद जंघे के नीचे उसी प्रकार रगड़ कर सारे पैर, जंघा, उरुसंधि भी गरम किया जाता हैं। इसी प्रकार पैरोंके और अन्यान्य स्थान खूब आसानीसे गरम किये जा सकते हैं।

स्नान करके आनेके वाद तुरत सुखी मालिशसे शरीर गरम हो उठता है और सारे शरीरमें एक प्रकारकी उद्दीपन आती है। इस उद्दीपनाका प्राप्त करना ही स्नानका मुख्य उद्देश्य है। स्नानके वाद जिन

लोगोंका शरीर शीघ्र गरम नहीं होता तथा कंपनकी भावना चलती रहती है— इस सुखी मालिशसे उनने अति अल्पकालमें ही सारे शरीरको गरम कर सकते हैं। जो बहुत कमजोर हो दूसरे उनके शरीरपर इसका प्रयोग कर सकते हैं। स्नानके बाद इस प्रकार घर्षणके द्वारा शरीरको गरम करे लेना खांसीके लिये ब्रह्मास्त्र है। जिन्हें सदा सर्दी होती रहती है और जरा जरामें ठंड लगजाती है—उन्हें इससे आश्चर्यजनक लाभ हो सकता है। वात रोग और मधुमेह आदिके रोगियोंको, एवं जिनका शरीर स्वभावतः ही ठंडा रहता है—यह सुखी मालिश बड़ा लाभप्रद है, बात यह है कि इससे चमड़ेमें खूनका दौरान बढ़ जाता है, चमड़ा शरीरसे जो दूषित पदार्थकों बाहर निकाल फेंकता है, उनकी यह क्षमता वृद्धि होती है, शरीरमें दग्धकारी शक्ति (oxidation) बढ़ जाता है, और स्वास्थ्य तथा जीवनी शक्ति उन्नत होती है। इसी कारण स्वास्थ्य रक्षाके लिये जितनी व्यवस्थायें है उनमें सुखी मालिश अत्युत्तम व्यवस्था है।

सप्तम अध्याय

रोग किस प्रकार दूर होते हैं

[१]

चिकित्सक लोग इस बातका घमण्ड करते हैं कि वे रोगको दूर करते हैं—और दवाइयों से सभी रोग दूर हो जाते हैं। किन्तु असलियत यह है कि हाथमें जरासी खुरच लगने से संसार के किसी भी डाक्टर या दवाई में ऐसी ताक़त नहीं कि उस पर मुलम्मा चढ़ा दे। प्रकृति के उसे भीतर से भर देने पर ही उस पर मुलम्मा चढ़ता है।

किसान खेत में धान पैदा करता है, किन्तु सचमुच ही क्या वह उन्हें पैदा करता है ? खेतमेंसे दूसरे पौधे वह उखाड़ फेंकता है। खेतमें खाद देता है, कीड़ोंसे पौधोंकी रक्षा करता है, खूब हवा और धूप लगनेकी व्यवस्था करता है। किसान केवल यही कर सकता है। इससे वह रत्ती भर भी ज्यादा नहीं कर सकता है। प्रकृति अपनी रहस्यमयी क्रियासे तिल तिल करके पौधोंको बढ़ाती है, पौधों में फूल खिलते हैं एवं फल लगते हैं। किसान चेष्टा कर प्रकृतिको केवल सहायता मात्र कर सकता है। किन्तु सैकड़ों प्रयत्न करने पर भी वह एक कलीको खिला नहीं सकता है। प्रकृतिके खिलानेसे ही फूल खिलता है। इसी प्रकार रोगको दूर करनेके उपायमें भी हम विजातीय पदार्थको शरीर से दूर कर, शरीरके लिये पुष्टिकारक खाद्यका प्रबन्ध कर एवं शरीरको उचित हवा और प्रकाश दे, केवल प्रकृतिकी सहायता मात्र ही कर सकते हैं, किन्तु प्रकृति स्वयं ही शरीरके भीतर ही भीतर शरीरका संस्कार करती है। संसारका सबसे बड़ा डाक्टर भी अपने शरीर

की जरा सी उन्नति नहीं कर सकता है। प्रकृति के संस्कार करनेसे ही शरीरका संस्कार होता है।

प्रकृतिने हमारे शरीरके अन्दर रोग दूर करने और शरीरकी सब प्रकारसे रक्षा करनेकी व्यवस्था कर रखी है। रोगको दूर करनेका प्रधान यन्त्र खून है। खून ही शरीरको दूषित पदार्थोंसे मुक्त करता है एवं यही शरीरके सभी भागोंमें पौष्टिकता पहुंचाता है। यन्त्रकी सहायता से खूनकी परीक्षा करनेसे देखा गया है कि खूनमें तीन प्रकारके उपादान हैं—लालकण (Red corpuscles), सफेदकण (White corpuscles) और खून का रस (Plasma)। इसी खूनके रसके अन्दर लाल और सफेद कण तैरते रहते हैं। इनमेंसे हर एक की खास विशेषतायें हैं। हमारे खूनके अन्दर जितने सफेद कण हैं उनके प्रायः चार-पांच सौ गुणा लालकण हैं। लालकणोंके लाल होने कारण ही खूनका रंग लाल होता हैं। ये फुसफुस से औक्सिजन खींचकर शरीरमें सब जगह ले जाते हैं। यही औक्सिजन शरीरके आक्रान्त स्थान पर जाकर इसके हर एक कोषको उद्दीपित कर देता है। और शरीरमें इकट्ठे हुए विषको जला डालता है।

शरीरके सफेद कणको सधारणतः लड़नेवाले कण कहा जाता है। जब किसी फोड़े या जखमके कारण विषाक्त पदार्थ या रोगके कीटाणु शरीरके अन्दर प्रवेश करनेको तैयार होते हैं, तो हजारों सफेद कण सुशिक्षित सिपाहियोंकी तरह जखम के चारों ओर व्यूह बनाकर खड़े हो जाते हैं, जिससे दूषित घावसे विष शरीरके अन्दर प्रवेश न कर सके। इसीलिये फोड़ा होने पर इसके चारों तरफ कड़ा हो जाता है। इस जगह पर रोगके कीटाणुओंसे उन की बकायदा लड़ाई होती है। युद्धमें जो सफेद कण ध्वंस हो जाते हैं, उनको शरीर ही प्रायः पीब पैदा करतां है। जबतक शरीर में आक्रमण करने वाले शत्रु सम्पूर्ण रूपसे नष्ट

नहीं हो जाते तब तक ये समान रूपसे युद्ध जारी रखते हैं। हम लोगोंका शरीर इस प्रकारका एक सक्रिय यन्त्र है कि जिस समय हमारे शरीरमें कहीं भी सूजन या फोड़ा हो जाता है तो प्रकृति श्वेत कण की संख्या बढ़ा देती है।

भोजन, पीनेकी चीजों और निश्वासके साथ हजारों जीवाणु हमारे शरीरके अन्दर प्रवेश करते हैं। अगर सफेद कण नहीं होते तो हम बच नहीं सकते। सफेद कण हमेशा हमारे शत्रुओंके साथ युद्धकर हमारी रक्षा करते रहते हैं। हमारे शरीरके जीवकोष भी सर्वदा नष्ट होते रहते हैं। शरीरमें इनके इकट्ठे हो जानेसे इनमें कई रोगोंके जीवाणु पैदा हो सकते हैं। किन्तु किसी कोषके नष्ट होते ही सफेद कण उसको खा कर हजम कर लेते हैं या शरीरसे उन्हें निकाल बाहर करते हैं। इसलिये यदि शरीरके सफेद कण एक तरफ हमारे शरीरके रक्षक हैं, तो दूसरी ओर वे ही इसके मेहतर हैं।

शरीरके खूनके रसमें भी स्वतंत्र रूपसे रोगके कीटाणुओं के नाश करनेकी क्षमता है। विभिन्न रोगोंमें शरीरके अन्दर विभिन्न जातिके रोग विष (toxin) उत्पन्न होती है। किन्तु प्रकृति अपनी रहस्यमयी प्रतिक्रिया द्वारा हमेशा इस अवस्था विशेषमें खूनमें एक प्रतिविष (antitoxin) उत्पन्न करती है। ये प्रतिविष जीवाणु विषको नाशकर शरीरको मृत्युके मुखमें जानेसे रक्षा करते हैं। जिसके शरीरमें रोगके प्रतिरोध करनेकी जितनी ही अधिक क्षमता होती है, उसके शरीरमें उतना ही सबल प्रतिविष उत्पन्न होता है।

हमारे लिवरको खाद्य परीक्षक (food inspector) कहा जाता है। शरीरके मुख्य प्रवेश मार्गमें जिस प्रकार जीभ प्रहरी है, इसके भीतर लिवर भी ठीक उसी प्रकार प्रहरीका काम करता है। हम लोगोंके भोजनका सार जब लिवरमें पहुँचता है, तो वह उसमें से दूषित पदार्थको छानकर अलग कर देता है और विशुद्ध खाद्य-रसको खूनके अन्दर डाल देता है। शरीरके

रक्त स्रोतको भी लिवर साफ करता है, एवं उसके विषको नष्ट करता है। यकृत के कारखानोंमें यह काम दिन रात लगातार जारी रहता है।

हमलोगोंकि शरीरकी प्लीहा और ग्रन्थियाँ भी यथेष्ट विष और कीटाणुओं को नष्ट करती हैं। यही कारण है कि विभिन्न रोगोंमें प्लीहा, लिवर और ग्रन्थियाँ बड़ी हो जाती हैं।

हम लोगोंकी आंतें, मूत्राशय (kidney) एवं पसीनेकी ग्रन्थियां मल, मूत्र और पसीनेके रूपमें शरीरके यथेष्ट विषको बाहर कर देती हैं।

प्रकृतिने शरीरको स्वस्थ और निरोग रखनेके लिये एवं उसे रोग मुक्त करनेके लिये शरीरके अन्दर इस प्रकार आश्चर्यजनक व्यवस्था कर रखी है।

वनोंमें जो पशु-पक्षी रहते हैं, समय-समय पर उन्हें बड़ी चोटें आ जाया करती है। कभी कभी तो बहुतसे पशुओंको दुःसह रोग आ घेरते हैं। उन्हें चङ्गा करने या उनकी हत्या करनेके लिये किसी भी औषधिका प्रयोग नहीं होता। तोभी हम लोगोंकी अपेक्षा वे आसानीसे अच्छे हो जाते हैं। प्रकृति ही भीतरसे इनको चङ्गा कर देती है।

अमेरिकाके एक बहुत बड़े डाक्टर (Dr. Nicholas Senn) अपने व्यवसायका बड़ा नुकसान कर कैन्सर रोगके कारणका अनुसन्धान करने के लिये अफ्रिका गये थे। वे अफ्रिकाकी बहुत सी अर्द्धसभ्य और असभ्य नग्न जातिओंके बीचमें घूमते रहे। बहुत दिनोंतक अफ्रिकाके भीतर घूम-कर उन्होंने यह देखनेकी खास कोशिशकी कि किस जातिमें रोगका प्रभाव किस प्रकार है। उन्होंने देखा कि जिन सभी जातिओंका जीवन वनके पशु पक्षिओंके जितना निकट है, उनमें कैंसरकी बीमारीका आक्रमण भी उतना ही कम है। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जो जातियाँ वनके पशु पक्षियों के समान ही असभ्य हैं, उनमें मोटापन, मृगी, स्नायविक दुर्बलता इत्यादि सभ्यताके रोग नाम मात्रको भी नहीं हैं। वे अन्य बहुतसे रोगोंसे भी मुक्त हैं। यक्ष्मा रोगकी बात तो उनमेंसे शायद कोई जानता ही नहीं। जो समुद्र

के किनारे आकर बस गये हैं एवं जिनका सभ्यतासे संसर्ग हो गया है, केवल उनमें ही यक्ष्मा रोग देखा गया है (Kilka—Natural Ways of Cure, p. 10)।

वनके ये सभी पशु-पक्षी एवं ये सब अर्द्ध सभ्य मनुष्य क्योंकर स्वस्थ होते एवं स्वस्थ रहते हैं ? हम लोगोंके भीतर शरीरकी रक्षा करने एवं रोगोंको दूर करनेकी व्यवस्था है, यही कारण है कि वे स्वस्थ होते एवं स्वस्थ रहते हैं।

हम देखते हैं कि, दांतके भीतर अगर एक तिनका अटक जाता है तो जीभ अनजाने ही बार बार उसी जगहपर जा लगती है। जबतक वह वहांसे बाहर नहीं हो जाता तबतक जीभको शांति नहीं मिलती। हमारे शरीरका जब कोई भी अंग अस्वस्थ हो जाता है तो जबतक वह स्वस्थ नहीं हो जाता प्रकृतिको शांति नहीं मिलती।

शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये प्रकृति इसी प्रकार हमेशा सजग रहती है। रोगकी प्रधान चिकित्सा उसकी बाधाको दूरकर एवं शरीरके यंत्रोंको संजीवन कर प्रकृतिको सहायता देना मात्र है। हिपबाथ कटिस्नान, स्टीम बाथ इत्यादि के द्वारा शरीरको दोषमुक्त कर जब स्नान इत्यादिसे शरीरके यंत्रोंको मजबूत कर लिया जाता है, तब प्रकृति सारे प्राणोंकी ताकत लगाकर रुग्ण शरीरको आप ही स्वस्थ कर देती है। क्योंकि इसके द्वारा रोगका मूल कारण जिस प्रकार दूर हो जाता है उसी प्रकार शरीरमें रोगोंसे छुटकारा पानेकी जो व्यवस्था है वह भी उन्नत हो उठती है। प्रकृतिकी इस प्रकार सहायता कर शरीरको स्वस्थ रखने एवं रोग मुक्त करनेका और कोई भी दूसरा ऐसा निर्दोष उपाय नहीं है।

दवाईसे शरीरको आरोग्य करनेकी चेष्टा की जाती है, किन्तु ज्यादातर इससे लाभके बदले हानि ही हुआ करती है। शरीरके रक्त स्रोतके दूषित होनेके कारण ही रोग या बीमारीकी उत्पत्ति होती है। दवा इसके ऊपर विषका-सा असर

करती है। प्रकृति रोगके विषके ही कारण अस्थिर रहती है। अब उसे रोग और दवा दोनोंके विषोंसे लड़ना पड़ता है। इन दोनों विषोंसे लड़कर यदि वह विजयी होती है तो वह बचती है। अगर ऐसा न हुआ, तो पुराने और जीर्ण कुसंस्कारकी वेदीपर वह अपने जीवनका बलिदान कर देती है।

दवा अगर विषाक्त है, तब तो वह नुकसान करती ही है, अगर वह विषैली न भी हुई, तौभी शरीरकी रुग्णावस्थामें वह शरीरके लिये विषके ही समान होती है। किन्तु दवाके मोहने लोगोंको अंधा बना रखा है। अगर डाक्टर रोगीके शरीरमें खूब मोटी सुई चुभा दे या उसकी विषाक्त दवासे रोगी का मुंह कड़ुवा हो जाय, तो रोगी समझता है कि उसका इलाज हो रहा है। यही कारण है कि डाक्टर लोग जान-बूझकर भी अक्सर अपनी इच्छाके विरुद्ध रोगीको दवा देनेके लिये विवश हो जाते हैं। इंगलैंडके एक बड़े नामी डाक्टर अपने मरीजोंको सन्तुष्ट करनेके लिये पावरोटीकी गोलियां बनाकर (bread pill) उसे रङ्ग करके उन्हें देते थे। क्योंकि रोगी को दवा न देनेसे वह संतुष्ट नहीं होता है। ऐसे ही रोगियोंसे बुद्धिमान होमियोपैथिक डाक्टर लोग 'सूगर आफ मिल्क' बेचकर हर साल बहुतसा रुपया पैदा करते हैं।

किंतु मनुष्यके द्वारा तैयार किये हुए विष पर निर्भर न रहकर प्रकृतके विधान पर ही निर्भर रहना उचित है ; अंधेकी तरह नहीं—बुद्धिमानकी तरह एवं युक्तिपूर्वक। भगवानके जिस विधानसे आकाशके करोड़ों ग्रह और उप-ग्रह परिचालित हो रहे हैं उसी नियमसे हमारी शारीरिक प्रकृति भी चल रही है। अगर हमें भगवानकी पैदाकी हुई इस प्रकृतिका अनुसरण करें, तो हमें किसी भी प्रकारकी बीमारी न हो। अस्वस्थ होने पर भी प्रकृतिकी बाधाओंको दूरकर एवं उसकी सहायताकर हम सब प्रकारके रोगोंसे छुटकारा पा सकते हैं।

अष्टम अध्याय

कमजोर रोगीका इलाज

[१]

हिपवाथ, स्टीमवाथ और पूर्णस्नानसे अधिकांश रोग अच्छे हो जाते हैं—यह वात सच है ; किन्तु वहुतसे ऐसे भी रोगी हैं जो इतने कमजोर होते हैं कि उनको हिपवाथमें नहीं वैठाया जा सकता, स्टीमवाथ देनेसे भी काम नहीं चलता एवं स्नान करानेसे भी वादमें उनका शरीर आसानीसे गरम होना नहीं चाहता। ऐसे सभी रोगियोंके लिये अपेक्षाकृत हल्की पद्धतिकी आवश्यकता होती है। जिनलोगोंको हिपवाथ नहीं दिया जा सकता, वे गीली कमर-पट्टी (wet girdle) लगाकर आसानीसे पेट साफ कर सकते हैं। वहुत ही कमजोर रोगियोंको स्टीम-वाथ, खासकर वहुत देर तक देना कभी भी ठीक नहीं है। किन्तु गरम पाद स्नान (hot foot bath) उन्हें यही फायदा पहुँचाता है। जिन लोगोंके लिये पूर्ण-स्नान करना संभव न हो, उन्हें शीतल घर्षण (cold-friction) से भी वही लाभ होता है। ये समस्त पद्धतियां यद्यपि कमजोर रोगियोंके लिये ही हैं, पर सवल रोगियोंके लिये भी इनका व्यवहार करनेमें कोई हानि नहीं। वल्कि इनके द्वारा सभी विशेष लाभ उठा सकते हैं।

परन्तु यह जान लेना जरूरी है कि सवल और दुर्वल रोगी दोनोंकी चिकित्साका सिद्धान्त एक ही है। पेट साफ करके, पसीना लाकर एवं पानी पिलाकर शरीरको दोषरहित करके एवं स्नान आदि से शरीरको संजीवित कर जिस प्रकार सवल रोगियोंका इलाज किया जाता है, कमजोर रोगियोंके इलाज

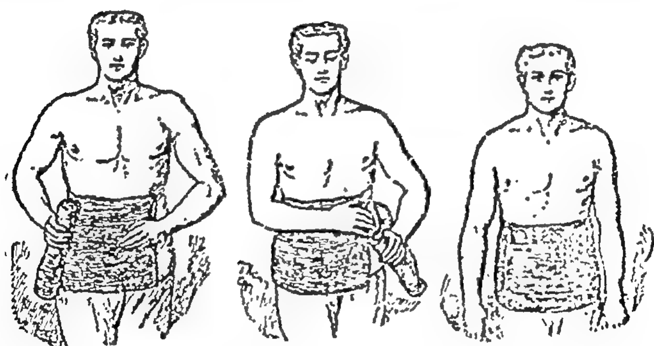
-की भी यही रीति है। तेज चिकित्सा उनके लिये लाभप्रद नहीं होती, इसी कारण उनके लिये कोमल विधानकी आवश्यकता है।

कमजोर रोगीकी कब्जियत दूर करनेके उपाय

जो रोगी हिप-बाथ लेनेमें असमर्थ हो अथवा जिन्हें हिपबाथ देनेकी सुविधा न हो, उनके लिये इसके बदले गीली कमर पट्टी (the wet girdle) बांधना ही सबसे उत्तम व्यवस्था है। दिनभरमें कई बार अथवा सारी रात इसके व्यवहार करनेसे इससे बहुत जल्दी पेट साफ हो जाता है।

गीली कमर पट्टी (The wet-girdle)

मामूली आठ नो इंच चौड़े एक कपड़ेको पानीमें भिगोकर निचोड़ डालना चाहिये फिर छातीके स्तनबिन्दुसे लेकर सारा पेड़ू और कमरके चारों ओर

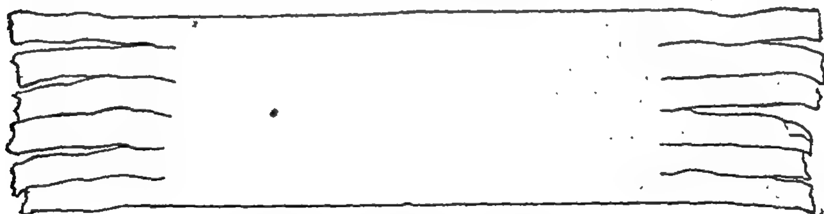


भीगी कमर पट्टी (The wet girdle)

लपेट देना चाहिये। इस कपड़ेको दोसे आठ बार तक घुमाकर लपेट लेना काफी है। शरीरका ताप जितना ही ज्यादा हो उतनी ही अधिक बार लपेटना चाहिये। महीन और पुराना पर साफ कपड़ा ही इस तरहकी पट्टियोंके लिये

अच्छा है। पर इस बातका ध्यान रहे कि किसी भी अवस्थामें इसमें इतना पानी न रहे कि बिछौनेकी चादर भीग जाय।

इस प्रकार भीगे कपड़ेको लपेटकर एक छोटे ऊनी अलवानको तह करके इस तरह लपेट देना चाहिये कि जिससे भीगे कपड़ेमें हवा न लगने पावे एवं न खूनका दौरा ही बन्द हो। अलवान न रहनेसे एक पतले फलालेनके टुकड़ेसे भी पट्टी ढकी जा सकती है। इसके बाद कपड़ेको एक सेफ्टी पिनसे अच्छी तरह अटका देनेसे ही पट्टी लगानेकी क्रिया पूरी हो जाती है। और भी अच्छा हो यदि १४।१५ इंच चौड़े एक नये नैनक्लाथ या मार्किन के टुकड़ेसे इसे अच्छी तरह बांध दिया जाये। इस नये कपड़ेके टुकड़ेको दोनों छोरसे इस प्रकार कई जगह पास पास फाड़ देना चाहिये कि इसे पट्टीके ऊपर घुमाकर पेटकी ओर सात आठ जगह गांठ दी जा सके। इस प्रकार बांधदेनेसे पट्टीके खुलनेकी आशंका नहीं रहती।



भीगी कमर पट्टी की बन्धनी

अथवा पहले इस नये कपड़ेके टुकड़ेके बंधनीको बिछौनेपर बिछा दे इसके ऊपर तह किया हुआ अलवान या फ्लानेल भी फैला दिया जाय। इसके ऊपर भीगे कपड़ेको सजा कर रोगीको उसके ऊपर सुला देना चाहिये। इसके बाद दोनो तरफसे बारी-बारी पहले भीगा कपड़ा, फिर फ्लानेल या अलवान और तब इस बंधनसे पेट ढककर बांध देनेसे बड़ी ही आसानीसे यह पट्टी ली जा सकती है।

अन्दरका भीगा कपड़ा शीघ्र ही गरम हो उठता है। यदि गीला कपड़ा गरम न हो, तो कपड़ेके लपेटकी तह कम कर देनी चाहिये। या पेड़ूके चारों ओर अधिक फ्लालेन या अलवान लपेट देना उचित है। जिनका शरीर जल्दी गरम नहीं होता उनको भीगी पट्टीके ऊपर और अलवानकी तहमें एक आयेल क्लाथ या इसके न होनेपर आयेल पेपरका व्यवहार करना चाहिये। ऐसा करनेसे पट्टीके अन्दर आसानीसे ताप (गर्मी) संचित होने लगता है। असलीयत यह है कि पट्टीके नीचे थोड़ी गर्मी पैदा करनी चाहिये। तभी इससे लाभ होगा। परन्तु इतना अधिक फ्लानेल या अलवान भी नहीं लपेटना चाहिये कि रोगीका सारा शरीर गरम हो जाये। केवल ऐसी पट्टीके प्रयोगसे ही रोगीको लाभ हो सकता है जो रोगीके लिये आराम दायक हो अर्थात् वह न तो अधिक गरम हो और न अधिक शीतल। इस प्रयोगमें इसका विशेष रूपसे ध्यान रखना आवश्यक है।

साधारणतया पीठका भाग आसानीसे गरम नहीं होता। इसी कारण शरीरमें यदि ताप अधिक न हो तो हमेशा पीठकी तरफ एक या दो तह मात्र भीगा कपड़ा दे सामने अर्थात् पेटकी ओर इसका चार या इससे भी अधिक तह देना होता है। यदि पीठकी तरफ ठंडा रहे तो पहले कई दिनों तक केवल पेटपर भीगा कपड़ा रखकर उपरोक्त विधिसे ढक लेना चाहिये। इस प्रकार केवल पेट पर ही पट्टी ग्रहण करनेसे इसको ढका हुआ पेटकी पट्टी (heating abdominal compress) कहते हैं।

इस बातको याद रखना जरूरी है कि, इसकी प्रतिक्रिया तुरत हो। there should be immediate reaction—पट्टी बांधनेके साथ साथ इसे गरम हो जाना चाहिये। साधारणतया शरीर शीतल रहनेपर पट्टी आसानीसे गरम नहीं होती। इस हालतमें गरम पानीकी थैली या बोतलसे पट्टीके स्थानको गरम करके इसके गरम रहते ही रहते पट्टी

चान्धनेकी व्यवस्था करनी चाहिये (Bilz—The Natural Method of Healing, vol. II, P. 1684)। इस पट्टीसे सबसे ज्यादा लाभ होता है जब गरम शरीरमें एवं गरम बिछौनेपर इसका प्रयोग किया जाय।

तौ भी पहले पहल दो तीन दिनों तक सुबह शाम दो तीन घंटे तक इसका व्यवहार करनेसे पट्टी लेनेकी प्रणालीसे अभ्यस्त हो जाना बुरा नहीं। रातमें इसका प्रयोग करनेपर नींद आनेके कुछ पहले इसका व्यवहार करना आवश्यक है। इसे सारी रात और खोलते नहीं। सवेरे उठकर इसे खोल डालना चाहिये। प्रत्येक बार पट्टी खोलनेके साथ ही साथ सारे पेड़ू और मेरु दण्डके इससे ढके हुए भागको—एक भीगी पर खूब निचोड़ी हुई तौलियेसे खूब अच्छी तरह पोंछकरके फिर घर्षण द्वारा (रगड़ रगड़कर) उक्त स्थानोंको गरम कर लेना जरूरी है। इसके बाद कपड़े पहन लेना आवश्यक है। जाड़ेके दिनोंमें यदि सारी रातके लिये भीगी कमर पट्टीका व्यवहार किया जाय तथा शरीर स्वाभाविक रूपमें ठंडा रहे, तब दिनके समय पेट और पीठके चारों ओर एक सूखा फ्लानेल लपेटे रहनेसे बड़ा ही लाभ पहुँचता है (H. Illoway, M. D.—Constipation in Adults and Children, P. 277)।

पट्टी के भीगे कपड़े को हर रोज साबुन से साफ कर लेना उचित है तथा कभी-कभी बीच-बीचमें सोडा डालकर भी उसे खौला लेना चाहिये, नहीं तो पेटके चमड़े पर फुंसी होने की संभावना रहती है।

भींगी कमर पट्टी कुछ दिनों तक रोज व्यवहार करनी चाहिये। तौभी कुछ लम्बी अवधि तक इसके व्यवहार की अवस्थामें हर सात दिनके बाद एक दिन इसका व्यवहार बन्द रखना उचित है।

इस पट्टी की यह बड़ी सुविधा है कि इसका व्यवहार करने की अवस्थामें दैनिक काम-काज करनेमें कोई असुविधा नहीं होती।

हिपबाथ द्वारा पेटको चंगाकर नियमित रूपसे कोष्ठशुद्धि करनेमें साधारणतया कुछ अधिक समय लगता है। किन्तु भीगी कमर पट्टीका फल तो दो-एक दिनमें ही प्रकट होने लगता है। छोटी एवं बड़ी अंतड़ियोंके भीतर मलके विषाक्त हो जाने, मलकी गति रुक जाने अथवा साधारण कोष्ठबद्धतामें यह बड़ी जल्दी लाभ पहुंचाता है। भीगी कमरपट्टीके व्यवहार करनेसे अंतड़ियोंका रसश्राव तेजीसे बढ़ने लगता है और पाकस्थली तथा लिवरके काम करनेकी शक्ति विशेष रूपसे उन्नत हो जाती है। इसी कारण भीगी कोमरपट्टीके प्रयोगसे बहुत शीघ्र फल प्राप्त होता है। पृथ्वी परके सभी सभ्य देशोंमें इस पट्टीका प्रचलन हो गया है। गत एक सौ वर्षके भीतर जर्मनीके घर-घरमें इसका व्यवहार हो चला है। उस देशमें इस पट्टीको वरुण वेष्टन (Neptune's girdle) कहते हैं।

किन्तु ऐसी बात नहीं कि केवल इससे कोष्ठबद्धता ही में आराम हो। पेड़ू एवं उसके ऊपरके विभिन्न अंतड़ियोंके रोगोंमें इस पट्टीका प्रयोग बड़ी सफलतासे किया जा सकता है।

पुराने अजीर्णमें तो यह बहुत ही फायदेमंद है। किसी भी प्रकारका अजीर्ण क्यों न हो, उसे दूर करने के लिये इससे बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं। किन्तु इसके लिये भीगे कपड़ेको खूब शीतल जलमें डुबोकर तथा इसे खूब अच्छी तरह निचोड़ सूखा जैसा करके काममें लाना चाहिये। जिन रोगियोंको दिनमें कईबार और काफी मात्रामें पाखाना होता है—इस पट्टीके इस्तेमालसे उनकी आंतोंकी अस्थिरता (irritation) कम हो जाती है, पाखाना जानेकी संख्या कमती होता है तथा धीरे-धीरे मल गढ़ा हुआ होने लगता है। इस पट्टीके व्यवहारसे मन्दाग्नि और पेटका फूलना आदि अजीर्णके विभिन्न साधारण लक्षण भी मूल रोगके साथ ही शीघ्र विलीन हो जाते हैं। ढाकाके इस्लामिया कौलेजके प्रिंसिपल मि० अब्दुल हाकिम,

एम० ए०, बहुत दिनोंसे पेटके कई रोगोंसे कष्ट पा रहे थे। अन्तमें उनकी ऐसी हालत हो गयी कि वे कुछ भी हजम नहीं कर सकते थे। उनका पेट हमेशा फूला रहता था इससे उनके हृदयकी धड़कन, स्वासकष्ट और सिर-दर्द आदि रोगोंने आ घेरा। अब क्या था—वे जीवनसे बिल्कुल निराश हो गये। उनकी इस हालतमें मैंने उन्हें एक गीली चादर की लपेट (west-heet pack) दी और बादमें गीली कमरपट्टी की व्यवस्था की। इस पट्टीके सात दिनों तक व्यवहार करनेके बाद उनका पेट स्वाभाविक अवस्थामें आ गया और वे सभी तरहका साधारण पथ्य खाने लगे।

अम्लरोग होनेसे, भोजनके बाद पेट भारी-भारी रहने, पाकस्थलीका आकार बढ़ जाने या इसके फूल जाने ((in dilatation and prolapse) एवं पाकस्थली तथा डिउडिनामके पुराने घाव आदि रोगोंमें यह बहुत लाभकारी है। असलियत तो यह है कि पेटके विभिन्न रोगोंसे जिनका शरीर बिल्कुल अकर्मण्य हो गया हो, इस पट्टीके प्रयोगसे उन्हें नव-जीवन प्राप्त हो सकता है।

एक समय काशीसे एक वृद्ध सज्जन हमसे चिकित्सा कराने आये। बहुत दिनोंसे वे पाकस्थलो तथा डिउडिनामके घावसे आक्रान्त थे। वे एक बड़े धनीके पुत्र थे तथा ब्रह्मामें किसी अच्छे पद पर थे। पांच लाख रुपये लगाकर उन्होंने मलायामें कोई स्टीमर सर्विस खोली थी। इसके अलावे दूसरी पूंजीसे उन्होंने मलायामें एक रबरका बगीचा भी लिया था। किन्तु बिमारीके कारण वे नौकरी छोड़नेको बाध्य हुए और अपने कारबार को छोड़कर इलाजके लिये कलकत्ते आये। कलकत्ते आकर बहुत खर्च करके काफी दिनों तक उन्होंने प्रचलित चिकित्सा कराई किन्तु इससे उन्हें कुछ भी लाभ नहीं हुआ। तब उन्होंने अपने स्वजनोंको अपना कुल कार-

चार सौंप दिया तथा काशी वासकर मरनेका निश्चय किया। काशीमें एक मकान लेकर वहीं रहने लगे। कई साल तक उनके प्राण किसी प्रकार शरीर पिंजरेमें अटके रहे। जब वे मेरे पास आये तो मैंने देखा इनके शरीरमें कहीं भी जरा भी मांस नहीं है। छाती और पीठ की सारी हड्डियां गिनी जा सकती थीं। नितम्बकी चर्बी बिल्कुल गायब हो गयी थी और चमड़ा झुर्री बनकर झूल रहा था। शरीरमें खून नहीं था। पेटमें हमेंशा दर्द बना रहता था। इसके अलावे बेल फलके आकारका एक वायुगोला उनके पेटमें हमेशा चक्कर लगाता रहता। अम्ल सदा बना रहता। अम्लके कारण वे प्रायः कुछ भी खा नहीं पाते थे। किसी किसी दिन कई बार कै होती। मैंने अपने चिकित्सालयमें उनके रहने की व्यवस्था की। ऐसे रोगियोंके पेटमें दर्द बन्द करनेके लिये और भीतरी घावको चंगा करनेके लिये हमलोगोंके पास एक बहुत बड़ा अस्त्र है। पेटपर सेंक देनेके बाद भींगी कमर पट्टी बांधकर बार-बार इसे बदलते रहना ही यह अस्त्र है। इस प्रयोगसे ही दर्दके साथ साथ सदा बना रहनेवाला उनके पेटका वायुगोला धीरे-धीरे कम हो गया और अंतमें बिल्कुल गायब हो गया। यहां आनेके तीन दिन बाद ही कै होना बन्द हो गया। अम्ल भी धीरे-धीरे कम होने लगा और तीन सप्ताह बाद किसी भी तेज रोगका लक्षण नहीं रह गया। तब उनके शरीर की गठनको बनानेकी ओर ध्यान दिया। इस समय भीगी कमरपट्टीके साथ-साथ मृदु वाष्प स्नान, ठंडी रगड़, हल्का डूस और भीगी चादरको लपेट आदिका प्रयोग होने लगा। प्रारम्भिक अवस्थामें इसका दूध, कमला नीबू और टमाटरका रस मात्र पथ्य था। इससे बाद इस पथ्यके साथ-साथ भात, तरकारीका जूस और मल्ट आदि जोड़ दिया गया। कुछ दिन बाद ही देखा कि उनका शरीर नवीन मांस एवं मज्जाएँ भर रहा है। वे एक महीनेके लिये आये थे।

यह देखकर कि चिकित्सासे नव-जीवन लाभ हो रहा है वे और एक महीने रहकरे काशी चले गये। दो महीने वाद फिर एक दिन लौटे। इसवार उनका चेहरा देख कर मैं भौंचक्का-सा रह गया। देखा कि उनका शरीर साधारण स्वस्थ मनुष्य जैसा हो गया है। मैंने इनके दुबारा आनेका कारण पूछा। उन्होंने वतलाया कि वे फिर मलाया जा रहे हैं। और वहां जाने के पूर्व एकबार घर होते हुए जानेका उन्होंने निश्चय किया है।

जिस अन्नपूछ (एवेण्डिसाइटिस) की सूजन वार वार (recurring appendicitis) लौट आती है उसमें भी यह लाभ दायक है। इस अवस्थामें इसका प्रयोग पेडूके एकदम नीचे तक करना चाहिये।

ग्रहणी (colitis) रोग धरातल किसी भी औषधिसे अच्छा नहीं होता। वे लोग तो सीधे कह देते हैं इसकी कोई दवा नहीं। एलोपैथीमें भी इधर-उधर कुलांकर केवल वचाए रखनेकी चेष्टा भर होती है। किंतु सारे शरीर की चिकित्साके साथ साथ इस पट्टीके व्यवहारसे दस दिनके भीतर आंव पड़ना वंद हो जाता है और एक महीनेके भीतर रोगी चङ्गा हो जाता है। इस रोगमें आधे घंटे तक क्रमशः गरमी और ठण्डक देनेके वाद इस पट्टीको दो-तीन घंटोंके लिये वांधनी चाहिये और घण्टे घण्टे वदलते रहना चाहिये। पिछले कई वर्षों में इस पद्धतिसे चिकित्सा करके मैंने कई पुराने ग्रहणीके रोगियोंको चङ्गा किया है; जिनमें एक जमींदार विचारे वाईस वर्षों से इस रोगके शिकार थे।

स्त्रियोंके वच्चादानी आदिके रोगोंमें इससे बहुत ही लाभ होता है। इन अवस्थाओंमें पेड़ूका निचला हिस्सा किसी रूपसे पट्टी द्वारा ढकना चाहिये। गर्भावस्थामें इस पट्टीके व्यवहारसे गर्भ संवंधी बहुत रोगोंसे छुटकारा मिल सकता है। गर्भावस्थामें खासकर इसके पिछले कई महीनोंमें यदि इसका प्रयोग किया जाये तो प्रसव वड़ी आसानीसे हो जाता है।

जवानीके ढलतेके समय औरतोंके ऋतुस्रावके
के रोग आ घेरते हैं। इस अवस्थामें भीगी कमर पट्ट
सभी प्रकारके पुराने मेरुदण्डके दर्दमें इसका व्यवह.
से रोगी आरोग्य लाभ करता है।

सिरके गरम होनेके कारण जब नींदमें बाधा पड़ती है ... पट्टीके व्यवहारसे सिरका रक्त नीचे उतर आता है, और रोगीको गहरी नींद आ जाती है। इसी कारण कोई कोई कहते हैं कि प्रगाढ़ निद्रा उत्पन्न करनेके लिये पृथ्वी पर इससे बढ़कर उत्तम एक भी व्यवस्था नहीं। इसी कारण सिर दर्द में (in congestive headache) भी इससे विशेष लाभ होता है।

जो बच्चे रातमें बहुत रोते चिल्लाते हैं, इस पट्टीके प्रयोगसे उनका क्रंदन बन्द हो जाता है।

किंतु बुखारमें इसका प्रयोग हर्गिज नहीं करना चाहिये। ज्वरकी हालत में कोष्ट शुद्धिके लिये पेड़ू पर शीतल पट्टी या गीली मिट्टीका प्रयोग किया जा सकता है। पेटका प्रदाह (inflamation), पाकस्थलीके घाव, पुरानी पिलही और लिवरके रोगोंमें एवं अर्श अथवा जरायु प्रभृति रक्तस्राव-युक्त रोगोंमें इसे खूब हल्के रूपसे फ्लानेलसे लपेटना चाहिये और भीतर कभी भी रबरकी क्लोथका व्यवहार नहीं होना चाहिये।

[२]

कमजोर रोगीके उत्तापका इलाज

उष्ण पाद-स्नान (Hot foot-bath)

वाष्प स्नान(steam bath) से जो लाभ होता है, उष्ण पाद स्नान आदि दूसरे प्रकारके पसीना लाने वाले स्नानों (sweating baths) से भी उसके अधिकांश फल प्राप्त किये जा सकते हैं।

रोगीको सुलाकर या बैठाकर यह बाथ दिया जाता है। जंघ से लेकर गर्दन तक रोगी के सारे शरीरको किसी कम्बल या अलवानसे

कर कि पैरोंको घुटनेसे थोड़ा नीचे तक पानीमें डुबा रखना होता है। गमेला, बाल्टी, टब या जिस किसी भी वर्तनमें यह बाथ लिया जा सकता है। पानीके वर्तनको बिछौनेसे बाहर रखना चाहिये। अन्यथा बिछौनेके भिगनेका डर रहता है। हां, एव आयल क्लाथ बिछाकर बिछौने पर भी वर्तनको रख सकते हैं। पानी जरा अधिक गरम (१०४° से ११२° तक) रहे तो अधिक लाभदायक होता है। किन्तु प्रारम्भमें पानी खूब कम गरम होना चाहिये। फिर धीरे धीरे उस वर्तनमें अधिकाधिक गरम पानी डालकर उसके तापको बढ़ाते जाना चाहिये। पानीके ठंडा हो जाने पर बीच बीचमें पानी निकालते जाना चाहिये और बदले में गरम जल वर्तन में ढालते जाना चाहिये। गरम पानी ढालते समय इस बातके लिये विशेष सावधान रहना चाहिये, रोगी का पांव जल न जाये। गर्मीके दिनों



उष्ण पाद स्नान (hot foot-bath)

में १५ से २५ मि० के भीत … रीरसे काफी पसीना आने लगता है । जाड़ेके दिनोंमें कुछ अधिक … । दोनों पांव जितने अधिक डूबे रहें रत … क लाभ होता है । इसके समाप्त होने पर आधे मिनट के लिये रोगीको ठंढे पानीमें पांव डुबाने चाहिये । किन्तु इसमें भी बाथ लेनेके पहले पेडू साफ करके, सिर, मुंह, गर्दन धोकर … नैमलियाका लपेट रखके और बाथके समाप्त होने पर … पोंछ कर या शीतल घर्षणका उपयोग करके … कई बार पानी … करके इस स्नानको पूरा क … तकके लिये लेने पर इस … तलाप हु … करना आव … है ।

… ही तरह उष्ण पाद-स्नानसे भी लोम … खुल जाते हैं … रा बहुतसा विजातीय पदार्थ बाहर निकल जाता है । इस … थसे कई विशेष लाभ होते हैं । उष्ण पाद स्नानसे अंत-ड़ियां, मूत्राशय और पेडूकी अन्यान्य यंत्रोंके भीतर खूनका दौरा बढ़ जाता है और इससे वे सबलता प्राप्त होता है ।

जिन स्त्रियोंका बीच बीचमें मासिक बन्द हो जाता है … क कालके लिये यह बाथ लें, तो उन्हें इससे बहुत-ही लाभ … शयु (uterus) और डिम्बकोष (ovaries) में प्रचुर मात्रामें रक्त संचार होता है, जिसके फलस्वरूप ये यंत्र मजबूत होते हैं और मासिककी गड़-बड़ी ठीक हो जाती है ।

सिर एवं ऊपरी अंगोंमें रक्तके वेगको कम करके उसकी गति पावोंकी ओर खींच ले जानेमें इससे बढ़कर … कोई साधन नहीं । इसी कारण तेज सिर-दर्द भी इससे बड़ी जल्दी आराम … जाता है । एक बार चेतलाके डेटिन्यू कैम्पमें श्री जगदीश चन्द्र सरकार तीव्र सिर दर्दसे पीड़ित हुये । लगातार चार दिन

तक उनका सिर-दर्द चालू रहा। यह रोग उन्हें प्रायः ही हुआ करता और सात-सात आठ-आठ दिनों तक चलता। इस अवधिमें उन्हें नींद नहीं आती और दर्दसे हर घड़ी चिल्लाते रहते। साधारण चिकित्सासे किसी प्रकारका फल प्राप्त नहीं होने पर वहांके युवकोंने मुझे बुलवा भेजा। मैंने उन्हें एक डूस देकर तुरन्त आधे घंटेके लिये उष्ण पाद-स्नानका प्रयोग किया। इस वाथके लेते समय ही उनका सिर-दर्द गायब हो गया और दूसरे ही दिनसे उन्होंने अपने दैनिक कार्य कलापमें योग देना शुरु किया।

ज्वरकी प्रारंभिक अवस्थामें जब जाड़े और कम्पनके साथ साथ ताप बढ़ रहा हो, यदि तुरंत साधारण गरम पानीका डूस लेकर फिर उष्ण पाद-स्नान लिया जाय तो ज्वरका मेरुदण्ड ही टूट जाता है और बहुधा ज्वरसे मुक्ति मिल जाती है। कभी कभी अचानक ठंडा लग जाये तो इस उष्णपाद-स्नानसे वह फौरन काफ़ूर हो जाती है। पांवका दर्द, पांवका घाव, पैरोंके ठंडा पड़ने पर भी यह बहुत लाभ पहुँचाता है। वात रोगोंमें जब शरीरका विभिन्न स्थानोंमें दर्द तेज होता है तब सिर और हृदय पर भीगी गमछी या तौलिया रखकर रोज सोनेके पहले ३० मिनटके लिये उष्ण पाद-स्नान लेनेसे दर्द बिलकुल मिट जाता है और हृदयका अस्वाभाविक अधिक स्पन्दन भी कम होकर स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त होता है।

इन सभी गरम स्नानों (hot baths) से जो लाभ होता है वह धूप-स्नान (sun bath) के द्वारा भी प्राप्त किया जा सकता है।

[३]

कमजोर रोगी का स्नान

सबल और दुर्बल सभी रोगियोंके लिये स्नान बहुत जरूरी है। सबल रोगियोंके लिये जो पद्धति काममें लाई जाती है, वह कमजोर रोगियोंके लिये

नहीं है। जो रोगी बिस्तरेपर पड़ गये हैं, जिनमें जीवनी-शक्ति कम है या जो पानी छूनेमें डरते हैं, उन्हें ठण्डे पानीके पूर्ण-स्नानका प्रयोग नहीं करना चाहिये। इन सभी रोगियोंको पूर्ण-स्नानके बदले हल्के स्पञ्ज-बाथ (mild sponge bath) या शीतल घर्षण (cold friction) का ही प्रयोग करना चाहिये। कमजोर रोगी इन हल्के स्नानोंसे ही पूर्ण-स्नान का लाभ उठाते हैं।

रोगी अगर बहुत कमजोर हो तो बिछौने पर सुलाकर ही उसे हल्के तौलियेका स्नानका प्रयोग करना चाहिये। एक मोमजामेके ऊपर चादर बिछाकर उसके ऊपर रोगीको गले तक कम्बलसे ढकी हालतमें सुलाकर पहले उसके सिर, मुख और गर्दनको अच्छी तरह ठण्डे पानीसे धो डालना चाहिये। इसके बाद हर एक बार रोगीके शरीरका एक एक हिस्सा खोलकर, ठण्डे पानीसे गीली तौलियेसे ५ सेकेण्ड तक पोंछकर, आखिरमें इतने ही समय तक उसे खाली हाथोंसे मल देना जरूरी होता है। इसके बाद ५ से १० सेकेण्ड तक सूखे तौलियेसे इस जगहको पोंछ कम्बलसे ढककर फिर शरीरके दूसरे हिस्सोंको भी इसी प्रकार पोंछना चाहिये। पहले रोगीका एक हाथ, इसके बाद उसका दूसरा हाथ, आखीरमें एक एक कर पेड़ू, छाती, पैर, और जांघोंका ऊपरी भाग एवं अंतमें पीठ, पांव और जांघोंका पिछला हिस्सा पोंछना चाहिये। तौलियेके स्नानका प्रयोग करते समय रोगीका गुदा-द्वार और जननेन्द्रियके ऊपरी हिस्से जिस प्रकार अच्छी तरह पोंछे जाय, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये। इस प्रकार एक बार सारा शरीर पोंछ लेनेपर, दूसरी बार भी आवश्यकता होनेपर इसी पद्धतिका अनुसरण किया जा सकता है। अगर रोगीके हाथ पैर ठण्डे हों, या रोगी खूब दुर्बल, बच्चा या वृद्ध हो तो तौलियेको खूब अच्छी तरह निचोड़ लेना आवश्यक है।

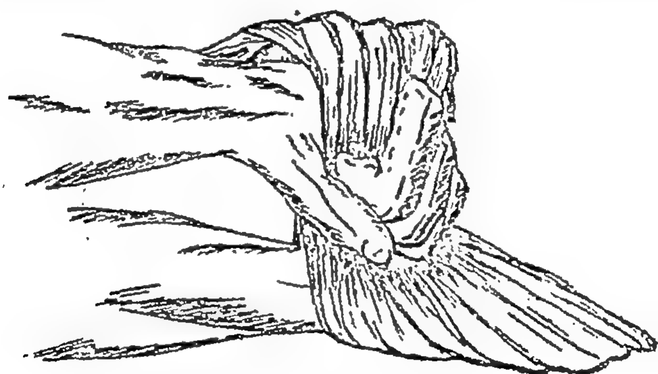
ठंडी मालिश (Cold friction)

विभिन्न वैज्ञानिक स्नानोंमें ठंडी मालिशके समान लाभदायक कम ही स्नान हैं। एक भीगे गमछेको दाहिने हाथमें लपेटकर, उससे रोगीके शरीरको रगड़नेको ही ठंडी मालिशका प्रयोग करना कहते हैं। ठंडी मालिशके प्रयोगके पहले रोगीके सिर, मुख और गर्दनको ठंडे पानीसे धो डालना चाहिये, और फिर उसे एक कम्बलसे गलेतक ढक देना चाहिये। गर्मीके दिनोंमें कम्बलके बदले बिछौनेकी चादरसे ढकनेसे भी काम चल सकता है। इसके बाद मालिशका प्रयोग होना चाहिये। मालिशके समय परिचर्याकारीका दाहिना हाथ भीगे गमछेसे इस प्रकार लपेटना चाहिये जिससे हाथके सामनेकी ओर गमछा काफी समतल रहे। फिर दाहिने हाथके पीछेसे बायें हाथ द्वारा बचे हुए गमछेको खूब खींचकर पकड़ करके दाहिने हाथसे रोगीके शरीरको रगड़ना चाहिये। हर दफे थोड़ा थोड़ा कम्बल सरकाकर शरीरके केवल एक अंश मात्रको बाहर करके उसे रगड़ना चाहिये। शरीरके प्रत्येक अंशको इस प्रकार रगड़कर लाल और गरम करके फिर ढककर दूसरे अंशको इसी प्रकार रगड़ना चाहिये। इसी प्रकार बारी बारीसे शरीरके प्रत्येक अंगको रगड़ना उचित है। पहले छाती, फिर पेट. इसके बाद हाथ, अंतमें बारी बारीसे पैरोंके ऊपरी भाग, पीठ, चूतड़ और जंघाके पीछेकी ओर घर्षण करना चाहिये। गमछेको साधारणतया निचोड़ लेना उचित है। पर यदि रोगीका ताप अधिक हो तो गमछेमें अधिक पानी रक्खा जा सकता है। साधारणतया जाड़ेके दिनोंमें कम और गर्मीमें अधिक जलका व्यवहार करना आवश्यक है।

इस प्रकार घर्षणसे बड़ा आराम मालूम पड़ता है और बुखारके मरीजको यदि अत्यन्त ठंडा बर्फके पानीसे भी इस प्रकार मालिश की जाये तो उसका कुछ भी अनिष्ट नहीं होता। इस स्नानसे समूची स्नायु-मण्डली, हृदय, विभिन्न ग्रन्थियां यानी समूचा शरीर ही संजीवित हो उठता है।

कुछ दिनों तक पांच, छः मिनट तक वाष्प-स्नान या थोड़ी देर तक सूर्यकर (धूप) स्नान करके २५ से ३० मिनट तक इस मालिशका प्रयोग करनेसे देखते देखते ही शरीर गठित हो उठता है।

बुखारके रोगीके बुखारको उतारनेका यह एक बहुत ही अच्छा तरीका है। राज यक्ष्मा (थाइसिस) के रोगीको यदि इसका प्रति दिन दो बार प्रयोग किया जाये तो बड़ी फुर्तीसे उसकी अवस्था सुधरने लगती है। ज्वरमें इसका प्रयोग करते समय हमेशा गमछेको जलमें खूब भिगोकर इस्तेमाल करना चाहिये। जब रोगीको बार बार या लम्बे समय तकके लिये उत्ताप चिकित्सा करनेकी आवश्यकता हो, तो उस अवस्थामें हमेशा रोगीको दिनमें



ठंडी मालिश (Cold friction)

कमसे कम तीन चार बार ठंडी मालिशका प्रयोग करना चाहिये। इससे हृदय ठीक होता है एवं रोगका मुकाबिला करनेकी ताकत काफी बढ़ जाती है। रक्त रहित शरीरमें खूनको पैदा करनेके लिये ठंडो मालिशसे बढ़कर अधिक लाभ प्रद पृथ्वीपर कुछ है—इसमें सन्देह है। अत्यन्त संगीन रक्तशून्यता रोगमें भी केवल १५ दिनमें रोगीका शरीर नये खूनसे लाल हो उठता है।

इन सब कारणोंसे कठिनसे कठिन रोगी भी इससे आरोग्य लाभ करता है।

एक बार महात्मा गांधीका नाती-बहू श्रीमती आभा गांधी अपने छोटे भाई श्रीमान रमेनको चिकित्साके लिये मेरे चिकित्सालय में लाई थीं। श्रीमान दो महीनेसे ज्वरसे पीड़ित थे। बुखार साढ़े तीन डीग्री तक चढ़ता था। ज्वर भोगते भोगते उनके शरीरमें सिर्फ हड्डियां ही रह गई थी और शरीरमें एक तरहसे कुछ भी मांस शेष नहीं बचा था। उनको हार्ट और लीवर बहुत बड़ा हो गया था। हजम करनेकी शक्ति प्रायः थी ही नहीं। स्वाभाविक तौरसे पैखाना होना बन्द हो चुका था और पेशाब खून जैसा होता था। सबसे ऊपर उनके शरीरमें खून न था और सारा बदन पीला पड़ गया था। कलकत्ते के कुछ श्रेष्ठ डाक्टर उनकी चिकित्सा कर रहे थे। लेकिन खून आदि सब चीजोंकी परीक्षा होनेके बावजूद भी उनके रोगका कोई निर्णय नहीं हुआ था। मैं उसे डूस, हल्की मालिश, हट फुट बाथ, पेटकी ठण्डी पट्टी आदिके साथ दिनमें दो बार ठंडी मालिश देने लगा। इसीसे तीन चार दिनोंके अंदर उसका ज्वर कम होकर मामूली हो गया। उसके बाद आहिस्ते-आहिस्ते पेशाबकी मात्रामें वृद्धि हुई और पेशाब पानी जैसा सफेद होने लगा। साथ ही साथ क्रमशः पेट ठीक हो गया और लीवर आदि छोटा होकर साधारण हो गया और तीन हफ्तोंके अंदर ही अंदर नये खूनसे सम्पूर्ण शरीर लाल हो गया। इसके पहले महात्माजी चिकित्साके लिए मुझे कई बार बुलाये थे और बहुतसे आदमियोंको मेरी चिकित्सा के आधीन रहनेके लिये लिखे थे। श्रीमान रमेनके आरोग्य लाभ करनेके बाद में उनको बहुत प्यारा हो गया। उस समय मैंने आशा की थी कि व्यापक रूपसे प्राकृतिक चिकित्साके चलनके लिये महात्मा गांधीके प्रभावका पूर्ण उपयोग करूंगा। लेकिन हत्यारेकी गोलीने अकालमें ही पृथ्वीके श्रेष्ठ

महापुरुषके जीवनदीपको बुझा दिया और हमलोगोंकी कोई भी आशा पूरी नहीं हुई।

आंशिक रूपसे जिस किसी भी अंगपर इसका प्रयोग किया जा सकता है। हृदयपर इसका प्रयोग करनेसे वह बड़ी जल्दी चंगा हो जाता है। पीठ और मस्तिष्क पर इस प्रकारके घर्षणसे मस्तिष्ककी क्षमता अत्यन्त वृद्धि पाती है। इसी कारण सभी स्नायविक रोगोंमें यह बहुत ही लाभप्रद है।

स्नायविक रोग चाहे कितना भी असाध्य क्यों न हो, सब दैहिक चिकित्सा के साथ साथ इसका प्रयोग करनेसे, रोगीकी अवस्था हमेशा ही बड़ी फुर्तीसे सुधरती है। श्रीयुक्त सोमेशचन्द्र वसु संसारके विद्वत् समाजमें सुपरिचित हैं। उनकी स्मरण शक्ति इतनी तेज है कि एक सौ राशियोंके नीचे उतनी ही राशि रख कर दोनोंका पूर्ण फल जब कभी भी जबानी बोल सकते हैं। यूरोप एवं अमेरिकाकाके विद्वान लोग उनकी यह क्षमता देखकर दंग रह गये। ये एक महात्मा पुरुष एवं महान योगी हैं। परन्तु शरीर पर ध्यान न देनेके कारण एवं अन्यान्य कारणोंसे आप कठिन स्नायविक रोगके शिकार हुए। वे अच्छी तरह घूम फिर भी नहीं सकते थे। खड़ा होनेसे प्रायः ही गिर पड़ते। अनजाने वे तरह तरहसे अंग भङ्गी करते। कभी उनका हाथ नाचता, कभी पांव मुड़ जाता, कभी गर्दनकी मांसपेशी अपने आप कई बार फड़क कर शान्त हो जाती। हर वक्त उनके शरीरमें यह मरोड़ (spasm) चलता रहता। वे एक क्षण भी चुपचाप बैठे नहीं रह सकते थे। कभी आगे झुककर सिर बिस्तरसे लगा लेते और साथ ही साथ शरीर खींचकर दूसरी तरफ पड़ जाते। सोये रहने पर भी प्रायः हमेशा समूचे बिछौने पर लोट पोट करते रहते थे। इस रोगसे छुटकारा पानेके लिये उन्होंने कलकत्तेके बड़े बड़े डाक्टर एवं वैद्योंसे करीब दो साल तक चिकित्सा करायी। किन्तु इससे उन्हें कुछ भी लाभ नहीं हुआ। अन्तमें उन्हें मेरे पास लाया गया। मैंने ठंडी मालिशके साथ साथ नियमित

मालिश, पेट एवं मेरुदण्डमें गर्म एवं ठण्डा प्रयोग, डूस, भीगी चादरकी लपेट, फूट पैक (पांवकी लपेट) एवं मृदु वाष्प स्नान आदिका प्रयोग करना प्रारम्भ किया। इसके अलावे घरमें भीगी कमर पट्टी और मेरुदण्ड पर ढकी हुयी पट्टी (heating compress) का प्रयोग करते। सोमेश बाबूका पेट बिल्कुल साफ नहीं होता था। चिकित्साके तीसरे ही दिन उन्होंने मुझसे कहा कि उन्हें इस प्रकार साफ पाखाना हो रहा है जैसा जीवनमें कभी भी नहीं हुआ। उनके स्नायविक लक्षण भी धीरे-धीरे कम होने लगे। प्रधान-तया शीतल घर्षणके फल स्वरूप ही तीन चार दिनोंके भीतर इनकी अस्थिरता बहुत कुछ कम पड़ने लगी एवं शरीरका अकड़ना शीघ्र कम होने लगा। इसके बाद उन्होंने एक दिन मुझसे कहा कि अब टहलने जानेपर मैं लड़खड़ाकर गिर नहीं पड़ता। पहले कई दिन उनके साथ आदमी आता एवं बड़ी सावधानीसे उन्हें लाया जाता। परन्तु, केवल सात दिन के बाद वे अकेले मेरे चिकित्सालयमें चिकित्सा कराने आने लग गये। चिकित्साके पहले प्रारम्भिक कई दिनों तक वे रोज मुझसे पूछते—मैं बचूंगा कि नहीं ? पर अब दिनपर दिन उनके जीवनकी आशा क्रमशः बढ़ने लगी। गत दो वर्षों से वे बाहरी दुनियांसे अलग से हो रहे थे। अब थोड़ी देरके लिये वे घरसे बाहर निकलने लगे। अन्तमें उन्होंने सबको आश्चर्य चकित कर दिया, जब कि चिकित्सा आरम्भ करनेके केवल सोलह दिन बाद अकेले घरसे बाहर जाकर यादवपुर इञ्जिनियरिङ्ग कालेज की गवर्निङ्ग बाडीकी मिटिंगमें भाग ले आये। उनका वजन पहले १ मन १० सेरके करीब रह गया था। चिकित्साके चार महीने बाद एक दिन देखा कि उनके वजनमें २४ पौंडकी वृद्धि हुई है।

वास्तवमें स्नायुमण्डलीको उद्दिप्त करनेमें ठंडी मालिशसे बढ़कर और कोई व्यवस्था नहीं और इस विषयमें सभी प्रकारके स्नानोंमें यह सर्वोत्तम है। यह याद रखनेकी बात है कि हमारे शरीरका दारोमदार स्नायु मन्डली पर ही

निर्भर है। इसके उद्दीप्त होनेसे सारा शरीर उद्दीप्त रहता है। हमारी स्नायुमण्डली मस्तिष्क, मेरुदण्ड और स्नायु तन्तु इन तीन भागोंमें प्रधानतया बंटी हुई है। मस्तिष्क और मेरुदंडसे असंख्य स्नायु तन्तु बाहर होकर शरीर में चारों ओर फैले हैं। शरीरमें ऐसा कोई भी स्थान नहीं जहां स्नायु जाल (nerves) न हों।

यह स्नायु मण्डली दो तरहकी होती है। एक प्रकारके स्नायु समूह सभी प्रकारकी अनुभूतियोंको मस्तिष्क तक पहुँचाते हैं। उन्हें संज्ञावाही (sensory nerves) कहते हैं। दूसरे प्रकारके स्नायु पुंज मस्तिष्कके आदेश को पहुंचाते हैं। इन्हें चेष्टावाही (motor nerves) कहते हैं।

इन स्नायुओंका काम प्रायः टेलीग्राफके तारकी तरह है। शरीरमें कहीं भी चोट लगनेसे संज्ञावाही स्नायु तुरंत इसकी सूचना मस्तिष्कको पहुँचाते हैं और हमें दर्द मालूम होने लगता है। मस्तिष्क तुरंत चेष्टावाही स्नायु द्वारा आदेश भेजता है। उस समय मस्तिष्कके निर्देशानुसार हम अपने अंगको हटा लेते हैं अथवा आक्रमण करते हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे हमारी स्नायुमण्डली हमारे शरीरके सारे यन्त्रोंको परिचालित करती है। स्नायुके कारण ही हमारी पाकस्थली खाद्य पदार्थको हजम करती है, अंतड़ियों से मल बाहर होता है, मूत्रग्रन्थि, फुस फुस, हृदय और शरीरके सभी अवयव अपने अपने कार्यको संपादित करते हैं। हमारी विचार धारा, यहां तककि स्मरण क्रिया भी स्नायुओंकी ही करामात है। इसी कारण ठंडी मालिशसे स्नायु मण्डलीको शीतल करनेसे उसकी प्रतिक्रियाके फल स्वरूप सारे शरीरकी स्नायु राशियां इस प्रकार शरीरमें उद्दीप्ति उत्पन्न करती हैं कि शरीरमें किसी भी प्रकारके रोगका रहना असम्भव हो उठता है।

[४]

सिज वाथ (Sitz bath)

कमजोर रोगियोंको कभी-कभी सीज वाथ देते रहनेसे वहुत लाभ होता है। सिज वाथका अर्थ है लिङ्ग-स्नान। एक साफ कपड़ेके छोटे टुकड़ेको शीतल जलमें डुवोकर इस जलसे लिङ्गके सिरको धीरे धीरे रगड़कर धो डालने को ही सीजवाथ कहते हैं। हरवार १५ मिनट से लेकर ३० मिनट तक इस वाथ को लेना आवश्यक होता है। आवश्यकता होनेपर इसे दिनमें दो-तीन वार लिया जासकता है। इस वाथके लेनेके समय हमेशा दोनों पांव सूखे रहने चाहिये। वाथ लेते समय कपड़ेसे इस प्रकार जल गिराना चाहिये ताकि जल किसी भी हालतमें लिङ्गके सिरके मांसको न स्पर्श करे। लिङ्गके ऊपरके चमड़ेको इस प्रकार आगे खींचकर उसपर जल डालना चाहिये कि जिससे भीतरके मांसपर जल न पड़े।

मुसलमानोंके लिङ्गके सामनेका यह चमड़ा कटा होता है। किन्तु जनेन्द्रियके नीचेके जुड़े मुखकी तरह जो चमड़ा रहता है, उसे ही कपड़ेके टुकड़ेको भिगो भिगोकर वार वार धीरे धीरे मुलायमियत से रगड़करके धोलेनेसे ही उनका सिज वाथ लेना हो जायगा।

स्त्रियां कपड़ेको पानीमें भिगोकर जननेन्द्रियके वाहरी भागके दोनों तरफ धीरे धीरे धो डाले। पानी किसी भी अवस्थामें भीतर प्रवेश न करने पावे (Louis Kuhne—The New Science of Healing, P. 111.)

जो रोगी कमजोरीके कारण विस्तरसे उठ न सकते हों उन्हें सिज वाथसे सवसे अधिक लाभ होता है। इन रोगियोंको दिनमें तीनवार सिज वाथ लेना चाहिये।

किसी प्रकारके परिश्रमके कारण शरीरके गरम हो जानेपर 'सिज वाथ' वड़ी जल्दी शरीरको शीतलकर देता है। आधे घण्टे तक सिज वाथ लेनेसे

भयानक श्वास रोग भी कम पड़ सकता है। हांफ, न्यूमोनिया, डिपथिरिया और कैन्सर आदि रोगोंमें भयंकर श्वास कष्ट सिज बाथसे बड़ी जल्दी बन्द हो जाता है। बीस मिनट तक सिजबाथके बाद प्रायः रोगी स्वयं सो जाता है।

सभी प्रकारके स्नायविक रोगोंमें इससे बहुत ही लाभ होता है। जिनलोगों को नींद न आती हो, वे यदि दिनमें हिपबाथ लें एवं सोनेके पहले सिजबाथ लेकर बरामदेमें सोये तो उन्हें रातमें जल्दी जगे रहनेके कष्टसे छुटकारा मिल सकता है। क्रोधी स्वाभावके मनुष्य, आसानीसे मानसिक कष्टके शिकार होनेवाले व्यक्ति एवं स्वभावसे ही चंचल, यदि कुछ दिनोंतक सिजबाथ लें तो उनका स्वभाव धीरे धीरे शांत हो जाता है। स्नायुशूल और साइटिका रोगमें इससे बड़ा ही फायदा पहुंचता है। उन्माद रोगमें तो यह बहुत ही लाभदायक है। मैंने सुना है कि केवल इसीके द्वारा अनेकों उन्माद रोगी रोगमुक्त हो गये हैं। स्त्रियोंके हिस्टिरिया रोगमें भी इससे बहुत लाभ होता है।

सिजबाथसे स्त्रियोंको सर्वाधिक लाभ पहुंचता है। प्रायः सभी स्त्रीरोगोंके लिये सिजबाथ की व्यवस्था की जासकती है।

किन्तु यदि रोगीमें हिपबाथ लेनेकी शक्ति हो, तो अलग सिजबाथ नहीं लेनेसे भी काम चल सकता है। क्योंकि हिपबाथमें सिजबाथके सारे लाभ प्राप्त होते हैं। यही कारण है कि इस समय सिजबाथ पृथ्वीके सभी देशोंसे उठ सा गया है एवं कई देशोंमें सिज बाथ कहनेसे भी लोग हिपबाथ समझते हैं। हिपबाथमें मेरुदण्डको डुबोकर बाथ लेनेसे सिज बाथका सभी गुण चला आता है। यदि रोगीमें हिपबाथ लेनेकी क्षमता न हो, तो ठंडी मालिशसे सिजबाथकी अपेक्षा अधिक लाभ होता है। किन्तु यदि रोगीमें हिपबाथ लेनेकी क्षमता न हो अथवा ठंडा मालिशके प्रयोगकी सुविधा या सुयोग संभव न हो तो सिजबाथ देना अत्यन्त आवश्यक है।

नवम अध्याय

रोग चिकित्सामें पानीके दूसरे उपयोग

[१]

जल-पट्टी (Cold compress.)

मनुष्यमात्रके अधिकांश रोग स्टीमबाथ, हिपबाथ और स्नान आदि सारे शरीरकी साधारण चिकित्सा (general treatment) से आराम हो जाते हैं। परन्तु हमेशा सारे शरीरका इलाज जरूरी नहीं होता। बहुधा सिर्फ खास अंगकी चिकित्सासे ही रोगी चंगा हो जाता है। और कई वार सारे शरीरके इलाज कर लेने पर विभिन्न प्रकारसे आक्रान्त भिन्न भिन्न अंगों-के लिये अलग अलग चिकित्साकी आवश्यकता होती है। इनमें शीतल जल-पट्टीका स्थान सर्व प्रथम है।

शीतल जलमें भिगोकर एक साफ कपड़ेके टुकड़ेको फैलाये रखकर गरम होनेके पहले ही वदल देनेको शीतल पट्टी कहते हैं। आवश्यकतानुसार पाँच-से दस मिन्टके बाद इसे बदलते जा सकते हैं। कुछ समय बाद १५ से ३० मिन्टके बाद बदली जानी चाहिये। जल पट्टी हमेशा ही बड़ी होनी चाहिये। शरीरके जिस अंग-विशेष पर इनका प्रयोग करना हो, उस आक्रान्त अंगकी चारों ओर काफी दूर तक पट्टीसे ढक जाना आवश्यक होता है। यदि शरीर-के किसी ऐसे भागमें जल पट्टीका इस्तेमाल करना हो, जो पानीमें डुबोया जा सकता हो, तो इस अंश विशेषको शीतल जलमें डुबो रखनेसे भी जल पट्टी-का काम होता है।

विभिन्न रोगोंमें शरीरके भिन्न भिन्न स्थलों पर इस जल पट्टीका प्रयोग हो सकता है। स्नायु और धमनी आदिके द्वारा बाहरके चमड़ेके साथ हमारे भीतरी यन्त्रोंका संयोग है। इसी लिये अलग-अलग यंत्रोंके रोगोंमें इस यंत्र विशेषके चमड़ेके ऊपर पट्टीका प्रयोग कर इसका असर (reflex effect) बढ़ाया जा सकता है।

जोरके बुखारमें रोगीके सिर, गर्दन एवं मुख पर देर तक जल पट्टीका प्रयोग करनेसे ज्वर बड़ी जल्दी उतर आता है। इससे उनको बक बक बन्द हो जाती है, सिरदर्द और खूनकी अधिकता कम हो जाती है तथा बड़ी आसानीसे रोगीको नींद आ जाती है। ज्वरकी हालतमें इस पट्टीसे रोगीका सारा सिर और गर्दन ढक देना जरूरी होता है।

बुखारके मरीजके पेड़ु पर आध घण्टेसे लेकर एक घण्टे तक जल पट्टीका इस्तेमाल करके ज्वर दो डिग्री तक कम किया जा सकता है। बुखारमें दिन-में तीन चार बार आध घण्टेसे लेकर एक घण्टे तक इस पट्टीका प्रयोग करनेकी आवश्यकता होती है। ज्वर कम करनेके लिये पेड़ू पर शीतल जल पट्टीके प्रयोग से बढ़कर और कुछ भी उपचार नहीं है। ज्वरके आरम्भसे लेकर अन्त तक इस पट्टीको चलाना आवश्यक होता है।

खूब तेज बुखारमें मेरुदण्डके ऊपर जल पट्टीके प्रयोगसे भी ज्वर बहुत कुछ कम हो जाता है।

दस्त (diarrhea) में पेट जब गरम रहे, पेड़ू पर भीगे गमछेको तह करके पट्टीका प्रयोग किया जाये तो परिमित दस्तोंके बाद दस्त अपने आप बन्द हो जाता है। किन्तु लम्बे समय तक इस पट्टीका इस्तेमाल करना हो तो हर तीन घंटे बाद पेड़ू पर गरम सेंक देकर फिर जल पट्टीका व्यवहार करना आवश्यक होता है।

भोजनसे पहले पाकस्थली पर आधे घण्टेके लिये जल पट्टीका प्रयोग किया

जाये, तो मन्दाग्नि और अरुचि दूर हो जाते हैं। जल पट्टीके ऊपर वर्फकी थैली रखनेसे और भी फायदा होता है। पुराने अजीर्ण रोगमें इससे बड़ी आसानीसे भूख लगने लगती है और हाजमा शक्ति वढ़ती है।

मुख और ऊपरी मेरुदण्ड के ऊपर एक साथ ही शीतल पट्टी का प्रयोग करने से नाककी श्लेष्मिक झिल्लियां संकुचित हो जाती हैं और इससे नाकसे खून का गिरना वन्द हो जाता है।

हृदय की धड़कन (palpitation of the heart) में हृत्पिण्ड के ऊपर दिन में दो वार आध घण्टे के लिये जलपट्टी रखने से वहुत ही फायदा होता है। पहले १५ मिन्ट तक पट्टी रख कर फिर धीरे. धीरे समय बढ़ाते जाना चाहिये। पट्टी हटा लेनेके वाद इस स्थान को रगड़कर लाल और गरम कर देना उचित है। ऐसे वहुत से रोगी हैं जिनके हृदय का स्पन्दन स्वभावतः मिन्ट में ७५ वार की अपेक्षा वहुत अधिक वार होता है। वहुतेरे पुराने रोगियों के हृदय की धड़कन (स्पन्दन) विना ज्वर के प्रति मिन्ट १०० से लेकर १२० तक होती है। ऐसे रोगियों को इस पट्टी के प्रयोग करने से कुछ ही दिनों में हृदय का स्पन्दन स्वाभाविक हो जाता है। छाती-पर पट्टी रखने से जिन्हें जाड़ा लगने लगे उन्हें पैरों के नीचे गरम पानी की वोतल या थैली रख लेनी चाहिये।

शरीर की सभी प्रकार की भीतरी और वाहरी सूजनों (inflamation) में जल पट्टी जादू का काम करती है। सूजन की पहली अवस्था में देर तक जल पट्टी का प्रयोग करके दो तीन घंटे के वाद वीच वीचमें ५ से १० मिन्ट तक के लिए गरम सेक देनी जरूरी होती है। सूजन की गति और जीवाणुओं की वाढ़ को रोकने के लिये जल पट्टी के समान और कोई दूसरी चीज नहीं है।

आग से जल जाने से उत्पन्न सभी प्रकार के दर्द और पीड़ा जल पट्टी

में आश्चर्यजनक रूपसे दब जाते हैं। कुछ लोगों का ख्याल है कि आगसे जली हुई जगह पर पानी देनेसे फफोले पड़ जाते हैं। किन्तु फफोले तभी पड़ते हैं जब उसपर थोड़े समय तक ही पानी दिया जाता है।

आगसे किसी अंग विशेष के जल जानेसे उस स्थान को ठंडे पानी में डुबो रखना चाहिए। पानीमें डुबाने के साथ ही पीड़ा आधी हो जाती है और क्रमशः कम होने लगती है। जब पीड़ा बिल्कुल न रह जाये, तब पानी से जले अंग को हटा लेना चाहिये और उसपर दूसरी जल पट्टी या कादा मिट्टी के मोटा लेप का खूब प्रयोग करना चाहिये। इससे बारह घंटेके भीतर जलन अच्छी हो जाती है एवं किसी प्रकारके जलनेके घाव का चिन्ह भी नहीं रह जाता। एक समय छपरे में लूची छानते हुए मेरी छोटी बहन सु श्री सावित्री देवी के हाथ पर कड़ाही के उलट जानेके कारण खोलता हुआ घी गिर पड़ा। उसने तुरंत ही जले हुए हाथको पानीसे भरी बाल्टीमें डुबो दिया और करीब घंटे भर तक इसी प्रकार डुबोये रक्खा। इसके बाद जब उसने हाथको बाल्टी से निकाला तो जलने का कोई भी चिन्ह हाथ पर नहीं था।

यदि शरीरका वह अंश जल जाये, जिसे पानीमें डुबाना संभव नहीं हो तो उस स्थानपर शीतल कादा मिट्टी की आधी इंच की तह छाप देनेसे जलमें भिगाने का ही लाभ होता है। मिट्टी ज्योंही गरम हो जाए तुरंत बदल डालना चाहिये।

यदि कपड़ेमें आग लगकर सारा शरीर जल जाये तो तुरंत रोगी को हौजमें ले जाकर गले भर पानीमें डुबोये रखना चाहिये। गांव के लोग इस अवस्थामें नदी या तालाबमें शरीर को डुबो सकते हैं। आवश्यकतानुसार एक दिन या उससे भी अधिक समय तक पानी में रहा जा सकता है। किन्तु इस बात का

विशेष ध्यान रहना चाहिये कि दोनों कंधे पानी में डूबे रहें। इससे नूमोनिया होनेका डर नहीं रहता और जलनेसे मृत्यु भी नहीं होगी।

आजकल संसारमें सभी जगह घाव पर जल पट्टीका प्रयोग किया जाता है। घाव पर बैंडेज, प्लास्टर या मलहम आदिका प्रयोग कर अब उस स्थानको भाराक्रांत नहीं करते। आये दिन कटे स्थानके घावको सुखानेके लिये बहुधा शीतल जल पट्टीका प्रयोग किया जाता है। इससे कटा हुआ बड़ासे बड़ा घाव भी बड़ी जल्दी सूख जाता है।

जल पट्टीके इस्तेमालसे कुचले या पीचे स्थान पर भी बहुत फायदा होता है। नरेन्द्र नाथ विश्वास नामक एक जसोहर जिलेका बालक किसी छापेखानेमें नौकरी करता था। एक दिन मशीन चलाते समय असावधानीसे उसकी दो अंगुलियां पिच गयीं। दोनो अंगुलियोंके दोनो नाखून उसी समय फट गये और उनसे खून गिरने लगा। प्रेसके किसी सज्जनने उसे पकड़ एक मिथिलेटेड स्पीरिटसे भिगोकर एक कपड़ेसे दोनो अंगुलियोंको बांध दिया और उसे सावधान कर दिया कि उस पर पानी न लगने पाये। किन्तु इससे उसका दर्द घटा नहीं बल्कि दर्द क्रमशः बढ़ने लगा। तब बुझी हुई बत्तीकी तरह मुँह किये वह मेरे पास आया। मैंने फौरन कपड़ेको खोलकर पानीका एक कटोरेमें उसके हाथको डुबो दिया। उसके हाथमें जो असह्य पीड़ा हो रही थी वह पानीमें डुबाते डुबाते ही आधी हो गयी। इस प्रकार तीन घंटे तक वह हाथ पानी में डुबाये रहा। दर्द प्रायः नहीं सा रह गया। तब एक भींगा कपड़ा उसपर लपेट दिया गया और उसे हिदायत कर दी गयी की वह उसे हमेशा पानी से तर रक्खे। दो दिनों तक उसने इस प्रकार उसे पानी से तर रखा। इस दो दिनमें ही उसका यह घाव बिल्कुल अच्छा हो गया और नाखूनों के जो गिर जाने की संभावना थी वह भी यथा स्थान ठीक बनी रही।

बोतल जलके प्रयोग से चोट या कटने या जलने सम्बन्धी सभी प्रकार

के दर्द दूर हो जाते हैं। यदि जल पट्टी देने के बाद भी दर्द बना रहे, तब समझना चाहिये, पानी काफी ठंडा नहीं रहा है। तब और भी अधिक शीतल जल देने से दर्द निश्चय ही कम हो जायेगा।

किन्तु शीतल जल पट्टी से यथेष्ट लाभ पहुंचने पर भी इसे अविच्छिन्न रूपसे बहुत अधिक समय तक प्रयोगमें नहीं लाना चाहिये। इससे खूनका दौरा बन्द होता है एवं उस स्थान पर एक प्रकार का अवसाद (depression) आता है। इस बात को याद रखना चाहिये कि रक्त ही सभी रोगोंको दूर करता है। इस लिये किसी भी स्थान विशेष पर लम्बे समय के लिये यदि जल पट्टी का प्रयोग चलाना हो तो कमसे कम दिन में तीन बार इस स्थान को ५ से १० मि० के लिये गरम सेंक देना बहुत आवश्यक है। सेंक देनेके बाद फिर शीतल पट्टी का प्रयोग करना चाहिये। पहली अवस्थामें शीतलजल पट्टी को बार बार बदलते रहना जरूरी है। इसके बाद जब दर्द कम हो जाये तब २० से ३० मि० के बाद पट्टी बदलते रहने से सर्वाधिक लाभ होता है।



जल पट्टी (Cold compress)

[२]

गरम सेंक (Fomentation)

शरीर के किसी भी खास स्थान पर गरमी पहुंचाने की क्रिया को सेक कहते है। प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली में यह सबसे अधिक जनप्रिय और सर्वाधिक प्रचलित व्यवस्था है। साधारणतया कम्बलके टुकड़े, तह किये हुए

फ़्लानेल, अभाव में रूई या तौलिये आदि द्वारा सेक दिया जाता है। फ़्लानेल को खौलते हुए पानी में डुबोकर एक तौलिये के भीतर रखना होता है। फिर तौलियेको दोनों तरफ पकड़ कर बिना कष्ट के निचोड़ कर रोगी के सेकने के स्थान पर प्रयोग किया जाता है। जल ठंडा न होने पावे इसलिये उसे ढके रखना चाहिये।

सेंक देते समय चमड़े पर ही न सेंक देकर शरीर के जिस स्थान विशेषपर सेंक देना हो उस स्थान पर एक सूखे फलानेल के कपड़े या तौलिये को रख कर उसके ऊपर सेक देना चाहिये। ऐसा करने से आक्रान्त स्थान पर काफ़ी देर तक उत्ताप पहुंचता रहता है। सेंक का उत्ताप जिसमें बाहर न होने पावे इसलिये गरम फलानेल को शरीर पर रखने के साथ ही साथ उसे कम्बल या ऊनी अलवान से दबा देना चाहिये। ऐसा करने से सेंक का उत्ताप प्रायः पाँच मिन्ट तक रहता है और सेंक के स्थान के चारों ओर से ढके रहने के कारण यह आंशिक ष्टीमबाथ का भी काम करता है। यदि काफी देर तक सेकके उत्ताप को बनाये रखना आवश्यक हो तो सेंकने वाले फलानेलके अन्दर एक गरम पानी की बोतल या गरम जल की थैली (hot water bag) रखकर उसे कम्बल से दबा दें। कुछ समय तक सेंक देने के बाद जब बर्तनमें रखे पानी का उत्ताप कुछ कम हो जाये तब फलानेल के अन्दर कुछ अधिक पानी रहने देकर सेंकना चाहिये। ऐसा करने से यह कुछ अधिक समय तक गरम रहेगा। सेंकने का उत्ताप जब कम हो जाये, तो फलानेल को हटाकर तुरत एक दूसरे गरम जल में भीगे फलानेल को उस स्थान पर रखना चाहिये। इन प्रकार एक सेंकके फलानेल को हटाने के दूसरे से उस स्थान को क्रमशः ढकते जाना चाहिये।

तेज दर्द को जल्दी से दूर करने के लिये सेंक से बढ़कर और भी कोई चीज है, इसमें सन्देह है। साधारणतया दर्द का स्थान जितना हो उसके

इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि चमड़ा गरम है या नहीं। यदि गर्म न हो तो पांच से आठ मिन्ट तक एक गरम पानी की बोतल या गरम पानीका थैली द्वारा रोगी की पीठ और छाती को गरम कर लेना चाहिये। फिर शरीर के गरम रहते ही इसे पट्टी का प्रयोग करना चाहिये। सभी ताप जनक (heating compress) के प्रयोग का साधारणतया यही नियम है।



छाती की लपेट (Check pack)

कपड़े को यथा सम्भव पतला होना चाहिये। इसे एकसे लेकर छः तह तक लपेटा जा सक्ता है। ऊपर के अलावन या गरम कपड़े का इस प्रकार प्रयोग करना चाहिये कि, जिससे भीगे कपड़े के साथ हवाका किसी प्रकार का संयोग न रहे और भीतर गरमी इकट्ठी हो सके। किन्तु इसके लिये बहुत अधिक फ्लानेल दे कर इस प्रकार ढकना ही नहीं चाहिये जिससे रोगी को बेचैनी मालूम हो और उसका शरीर अत्यन्त गरम हो उठे अथवा रक्त का दौरान बन्द हो जये। फ्लानेल लपेटने पर गला, हाथ और नाभी के पास सेफ्टीपिन से लगाकर अच्छी तरह से उसे कस दिया जा सकता है।

इच्छा होने से यह लपेट बहुत आसानी से लिया जा सकता है। एक गीला कपड़ा कांख से कमर तक छाती और पीठ को लपेट कर एक लम्बा फ्लानेल या किसी गरम कपड़े से उपरोक्त प्रणाली से अच्छी तरह ढक देने से ही छातीका सहज लपेट हो जाता है। इस तरह लपेट देनेसे छाती का पूरा लपेट का फल अधिकांश में मिल जा सकता है। शिशु, वृद्ध और बहुत दुर्बल आदमी को ऐसा ही लपेट देना सुविधाजनक है।

छाती का लपेट लेनेके बाद जाड़े का दिन होने से किसी साधारण कम्बल आदि से गले तक सारे शरीर को ढक रखना चाहिये। पर गरमी के दिनोंमें एक साधारण चादर ढक लेनाही काफी होगा। लपेट खोल लेना पर अन्यान्य पैकों की ही तरह पैक के स्थान को भींगी तौलिये से तेज हाथ पोंछ लेना चाहिये, फिर रगड़ कर तथा इसके बाद कपड़े पहन कर फिर से चमड़े के ताप को वापिस ला लेना नितान्त प्रयोजनीय है।



छातीका सहज लपेट

इस पैक का प्रयोग करीब डेढ़ घन्टे तक लेना काफी है। यदि कपड़ा इसके पहले ही सूख जाये तो पैक पहले भी खोला जा सकता है। जब तक भीतर का कपड़ा भींगा रहता है तभी तक लाभ होता है।

इससे फुसफुसके सभी प्रकारकी बीमारियोंमें आश्चर्य जनक लाभ होता है। सर्दी और सर्दी के ज्वर में भी यह पैक जादू का सा काम करता है। खूब नाक बहने के साथ साथ यदि ज्वर भी हो तो एक पैक से ही ज्वर और सर्दी छू मंतर हो जायगे। ज्वर न रहने पर भी डेढ़ घंटे का यह पैक सर्दी का समूल नाश कर देता है।

इन्फ्लुएंजे की तो यह कभी न चूकने वाला इलाज है। अधिकांश इन्फ्लुआ के रोगी केवल मात्र एक पैक लेने से ही चंगे हो जाते हैं। महात्मा गांधी जिस समय नोआखाली में थे उस समय उन्होंने एक बार मुझे बुलवा भेजा था। कैम्प में पहुँच कर मैंने सुना कि उनके कैम्प के दो आदमियों को बुखार के साथ जोरों का नजला हुआ है। महात्मा जी ने मुझसे पूछा कि इस हालत में मैं कुछ कर सकता हूँ या नहीं। मैंने कहा कि सिर्फ एक घन्टे की चिकित्सा से यह ज्वर अच्छा हो जाता है। तब उन्होंने मुझसे उन रोगियों के लिये तुरन्त कुछ करने के लिये कहा। मैंने कैम्प के आदमियों से सीने की पट्टी के लिये पुराना कपड़ा, अलवान आदि संग्रह करने के लिये कहा। लेकिन वह गांव इससे पहले इस तरह लूटा जा चुका था कि हजार चेष्टा करने पर भी मैं एक टुकड़ा पुराना कपड़ा जुटा न पाया। तब रोगियों को दो गञ्जीयां भींगोकर मैंने उन लोगों को पहिना दिया। उसके बाद उनमें से एक को एक गरम स्वेटर और दूसरे को एक अलवान द्वारा उनकी भींगी गंजीयों को ढांक दिया। उसके बाद दो सूखी धोतियों को तह करके उन दोनों का सीना और पीठ दोनों लपेट कर उन्हें बिस्तर पर लिटा दिया। इस अद्भुत ढङ्ग से पैक का प्रयोग किया गया। किन्तु इसीसे ही काफी फायदा हुआ। दूसरे रोज देखा गया कि उनको बुखार नहीं है, नजला नहीं है, जलन नहीं है और वे सम्पूर्ण स्वस्थ हो चुके थे। इससे पहले बापूजी ने मेरी पुस्तक पढ़ा था। आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा का यह फल देखकर वे मुग्ध हो गये और मेरी चिकित्सा पद्धति पर उनको असीम विश्वास हो गया था।

ब्रोंकाइटीज़, ब्रोंकोन्यूमोनिया और न्यूमोनियामें रोग आरंभ होने के पहले यदि इसका प्रयोग हो तो अधिकांश अवस्था में रोग का आक्रमण व्यर्थ होगा। रोगकी हालत में भी कई एक पैक द्वारा रोगसे छुटकारा मिल जायगा।

दमा की बीमारी दुनियाँ की किसी भी दवासे अच्छी नहीं होती। किन्तु ऐसे एक भी दमा और ब्रौंकाइटीज के रोगीको मैंने नहीं देखा कि, पूरे समय तक सारे शरीर की चिकित्सा के साथ साथ इस पट्टी के व्यवहार करने से उसे आरोग्य लाभ न हुआ हो। मेरा तो यह पक्का विश्वास है कि अत्यन्त पुराना दमा और ब्रौन्काइटीज का रोगी भी इसके व्यवहार से आरोग्य लाभ कर सकता है। खिदिरपुर के श्री धीरेन्द्र नाथ मजुमदार बहुत साल से दमा की बीमारी से कष्ट भोग रहे थे। खिदिरपुर में उनका तीन मंजील मकान था। पर वह नीचे के तल्ले पर ही रहते। क्योंकि सीढ़ी से ऊपर चढ़ते ही उनका स्वांस चढ़ने लगता। उनकी छाती हमेशा कफ से भरी रहती और वे सदा कफ फेंकते रहते। हांफने के कारण प्रायः बीच बीच में वे अकर्मण्य से हो जाते। मैंने उन्हें कईदिनों तक नियमित रूपसे मालिश, डूस, ष्टीमवाथ, पीठ एवं छाती पर गरम ठंडी पट्टी और भीगी चादर का पैक आदि का प्रयोग करा के लम्बी अवधि के लिये छाती की पट्टी की व्यवस्था करा दी। पहले दिन छाती दिखाने के बाद उन्होंने मुझ से पूछा था, "छाती की कैसी हालत है?" मैंने कहा, "घरमें जब डाकू प्रवेश करें और संदूक बक्स आदि को तोड़ना शुरु करें तो जैसा शब्द होता है ठीक वैसा ही शब्द आपकी छाती में होता है।" तीन सप्ताह चिकित्सा कराने के बाद उन्होंने फिर वही प्रश्न दुहराया, "अब छाती की हालत कैसी है?" उस समय छाती काफी साफ हो चुकी थी। मैंने कहा, "तीन दिन वर्षा में भीगने के बाद बिल्ली का कोई बच्चा जैसे मरने के पहले म्याऊँ २ करता है, ठीक वही अवस्था आपके छाती के रोग की है।" वास्तवमें और कई एक दिन के भीतर ही उनका स्वास कष्ट, कफ और खांसी आदि दमा के सारे लक्षण गायब ही हो गये। धीरेन बाबू एक जहाजी कंपनी में काम करते थे और एक समय के अच्छे

खिलाड़ी भी थे। एक दिन वे गंगा किनारे गये थे, उनके बड़े साहब ने जहाज पर से ही उन्हें पुकारा। जहाज की छत पर चढ़ने के लिये, छत से एक मोटा रस्सा लटकता रहता है। नौजवान जहाजी कर्मचारी, सीढ़ी का इस्तेमाल न कर बहुधा इसी रस्से के सहारे ही ऊपर चढ़ जाते हैं। धीरेन बाबू पन्द्रह वर्ष के भीतर इस प्रकार कभी भी ऊपर नहीं चढ़े थे। उस दिन, जब कि महीने भर से चिकित्सा नहीं चल रही थी, उन्होंने अपने में इतनी ताकत महसूस की कि आज बहुत वर्षों के बाद इसी रस्से से टपाटप वे ऊपर चढ़ गये। जब कि एक महीने पूर्व वे अपने मकान के एक तल्ले पर भी नहीं चढ़ पाते थे।

पुरानी प्लुरिसी में भी यह पैक बहुत ही लाभ दायक है। किन्तु पुरानी प्लूरिसी, दमा और पुराने ब्रौन्काइटीज में हमेशा ही छाती पर १८ मिन्ट तक ताप-बहुल गरम ठंडा पट्टी देनेके बाद पैक को देना चाहिये। इन सभी बिमारियोंमें ज्वर न रहने पर दो से चार घंटे तक पैकका प्रयोग करना आवश्यक होता है और ज्वर रहने पर हर घंटे बदल बदल कर तीन चार घंटे के लिये पैक लेना चाहिये।

यक्ष्मा रोग में छाती के पैंक के समान लाभदायक दूसरी चिकित्सा शायद कम ही है। कुछ एक दिनों के व्यवहार मात्र से ही रोगी की खांसी ज्वर व रातका पसीना कम हो जाता है और छाती के भीतर का घाव भी जल्दी ही आराम होने लगता है। इस पट्टी के प्रयोग से आक्रान्त स्थान पर रक्त का दौरान और श्वेत कणिका की बढ़ती होने लगती है। इसी कारण इसके प्रयोग से यक्ष्मा की बीमारी दूर हो जाती है (J. H. Kellogg, M. D.—Rational Hydrotherapy, P. 862)। मदारीपुर के श्रीयुक्त भूपेशचन्द्र राय चौधरी बहुत दिनों से एक आफिस में नौकरी करते थे। वे व्यापार करने के उद्देश्य से कलकत्ते आये। वहां

आकर उन्होंने इतनी दौड़ धूप की, जितनी कि उन्हों ने जीवन में पहले कभी नहीं की थी। अधिक परिश्रम के कारण उनका शरीर क्रमशः सूखने लगा तथा रोज थोड़ा थोड़ा ज्वर होने लगा। इसके एक साल पहले से वे खांसी के शिकार बन चुके थे। अब एक दिन वर्षा में भीग जाने के कारण ज्वर और खांसी में वृद्धि हो गयी, जो लगातार चलने लगी। भूपेशबाबू ने पहले कुछ दिनों तक एलोपैथी चिकित्सा कराई थी। फिर एक अच्छे वैद्य को दिखलाया किन्तु वैद्यराज ने महीने भर से अधिक चिकित्सा करने के बाद एक दिन कहा कि यह साधारण ज्वर नहीं है। अतः इसके शीघ्र आराम होने की संभावना नहीं। तब कलकत्ते के एक सुविख्यात टी० बी० विशेषज्ञ को बुलाया गया। वे रोज दस बारह रोगियों को ए० पी० देते। खूब अच्छी तरह छाती की परीक्षा करके उन्होंने कहा कि दोनों ही फुसफुसों में कैविटी हो गया है। इस लिये शीघ्रातिशीघ्र उन्हें किसी टी० बी० अस्पताल में भरती कराने की उन्होंने सलाह दी। किन्तु टी० बी० अस्पताल में भर्ती कराना जल्दी का काम नहीं। इसी बीच उन्होंने मुझे बुला भेजा। मैंने दिनमें दो बार उन्हें दो घंटे के लिये छाती की पट्टी देने की व्यवस्था की। ज्वर अधिक रहने पर एक घंटे के बाद पट्टी बदल दी जाती। साथ ही साथ दिनमें दो बार ठंडा-रगड़, प्रतिदिन दो घंटे तक पांवोंकी लपेट (foot pack) और हफ्तेमें दो बार डूस भी दिया जाने लगा। इस चिकित्सा के कई दिनों तक चलाने के बाद ही उनका ज्वर क्रमशः कम होने लगा। फिर केवल शाम को थोड़ा थोड़ा ज्वर आता। इसके बाद वह भी कम हो गया। रोज काफी मात्रा में उनको कफ वगैरह विकार निकलता। पर ज्वर के साथ ही साथ यह भी कम होने लगा। अन्त में जिस खांसी से वे बहुत दिनों से भुगत रहे थे उससे भी उनको पूर्ण रूपसे छुटकारा मिल गया। इसी प्रकार कई एक और

युवक तथा एक यादवपुर टी० बी० अस्पताल से लौटे हुए वृद्ध के रोग को दूर कर के छाती की पट्टी की उपकारिता के बारे में मैं बिल्कुल सन्देह रहित हूं ।

असलियत में सर्दी, ब्रोंकाइटीज, न्यूमोनिया, प्लूरिसी और यक्ष्मा रोग की यही सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा है (F. M. Rossiter, M. D.—The Practical Guide to Health, P. 212) ।

छाती का पैक यदि पेडू के निचले हिस्से तक फैला कर दिया जाये तो उसे मध्य शरीर की लपेट (truuk pack) कहते हैं । इस लपेट को नितम्ब से घुसा कर कंचुकि आदि के ऊपर से लाना आवश्यक होता है । जिन रोगियों कोभीगी चादर का पैक (wet-sheet pack) का प्रयोग करना असुविधा जनक हो, उन्हें इस पैक के प्रयोग से प्रायः वही सब लाभ होता हैं ।इसी कारण बच्चे, अत्यन्त वृद्ध और स्नायविक रोगग्रस्त व्यक्तियों के लिये यह पैक बहुत ही लाभदायक है ।

[५]

आंशिक स्टीम बाथ (Local steam bath)

बहुधा सारे शरीरमें भाप देनेकी आवश्यकता नहीं होती । और कभी कभी सारे शरीरमें भापका प्रयोग करने पर भी किसी खास अंगके रोगमें उस अंग विशेष पर बार बार आंशिक वाष्प स्नान की आवश्यकता पड़ती है ।

यह एक प्रकारसे सेंकका ही उत्तम संस्करण मात्र है । जहां जहां सेंक-देनेकी आवश्यकता पड़ती है—वहां ही आंशिक स्टीम बाथ का प्रयोग किया जा सकता है । किन्तु सेंकसे यह इस मामले में बढ़कर है कि इससे आक्रान्त भागपर किसी प्रकारका दबाव डाले बिना ही उक्त स्थानके अणु-परमाणु तकमें भी उत्ताप खींच आता है तथा मुंह आदि भीतरी भागमें जहां सेंककी गरमी प्रत्यक्ष रूपसे नहीं पहुंच सकती—भाप वहां भी आसानीसे पहुंचकर अपना

काम कर लेता है। हाथ, पांव, मुंह, गला, सिर आँख और कान आदि सभी अंगोपर ही तापका प्रयोग किया जासकता है।

आंशिक ष्टीम बाथ में प्रायः नल द्वारा भाप लेनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। किसी बर्तनमें खौलता पानी लेकर, उसके ऊपर आक्रान्त अंगको रखकर बर्तन समेत उक्त अंगको कंबलसे ढक देनेसे ही काम चल जायेगा। मुँह और आँख आदि स्थानोंमें ७ से १० मि० तक भाप लिया जा सकता है किन्तु अन्यान्य नीचेके स्थानोंपर थोड़े अधिक काल तक भाप लेना चाहिये। वहां १५ से २५ मि० तक वाष्प का प्रयोग होना आवश्यक है। जिस अंग विशेष पर भापका प्रयोग करना होता है, उस अंगसे अच्छी तरह पसीना निकलने तक इसके प्रयोग करने की जरूरत है।

किसी अंगमें आंशिक वाष्प स्नानके प्रयोग के बाद ही उस अंग विशेषको ठंडे पानीसे भीगी तौलियेसे पोंछ डालना चाहिये। मुँह या गरदन पर भाप देनेके बाद सम शीतोष्ण जलसे कुल्लाकर लेना चाहिये। सारे शरीरसे पसीना आनेपर सारे शरीर को ही भीगी तौलियेसे पोंछ लेना कर्तव्य है। जिस अंगपर भापका प्रयोग किया जाये, उसे भीगी तौलिये से पोंछनेके बाद तुरत फिर कपड़े-लत्तेसे उसे ढककर चमड़ेकी गरमी को वापिस कर लेनी चाहिये। शीतल करनेके बाद इन सभी प्रकारके बाथों (स्नानों) में, चमड़ेके तापको फिर वापिसकर लेना अत्यन्त आवश्यक है। यदि देरतक आंशिक ष्टीम बाथ लिया जाये, खासकर जब सिर और मुँहमें ष्टीम बाथ ग्रहण किया होतो, इसके बाद पूरा स्नान किया जासकता है। इसके बाद थोड़े नीबूके रसके साथ बार-बार काफी मात्रामें पानी पीना चाहिये।

आंशिक ष्टीम बाथ बहुत रोगोंमें लाभ पहुंचाता है। जहरीले कीड़ेके काटने, अंगोंमें मरोड़ आने (in cramps), खाज-खुजली, बवासीर, गुह्यद्वारका घाव और भगन्दरमें यह बहुत ही लाभ पहुंचाता है।

जङ्घा, घुटना, पैरोंका जोड़ (ankles), केहुनी आदिमें अकड़ आने (कड़ा होने) से आंशिक वाष्प स्नान बहुत ही लाभ पहुँचाता है। जंघेकी भीतरी हड्डीकी सूजन में यह बहुत ही लाभदायक है। इनमें प्रायः २० मि० के लिये वाष्प का प्रयोग करके फिर १० मि० तक उस स्थानपर मालिश करनी चाहिये (British Encyclopedia of Medical Practice, vol. 6, P. 585)।

सभी प्रकारके दर्द या स्फीति में यह किसी भी दवाईसे अधिक कारगर है। क्योंकि पसीना होने ही से सभी प्रकार के दर्द आपसे आप निकल जाते हैं।

दाँत दर्द प्रायः दवासे अच्छा नहीं होता, पर दांत शूल कितना ही पुराना क्यों न हो और चाहे कितना ही भयंकर क्यों न हो, आंशिक ष्टीम बाथसे जादूकी तरह अच्छा होता है। चौबीस परगना जिलेके श्रीयुक्त हृषीकेश मुखोपाध्याय, एम-ए०, बी-एल० महाशयको दांतके रोगसे अचानक सारा मुंह सूज गया और सेप्टिक हो गया। उनका मुंह सूजकर इस प्रकारका हो गया था कि उन्हें देखकर उन्हें पहचानना असम्भव हो उठा था। उनके सारे मुंहमें इस प्रकार मवाद भर गया था कि आंखों के नीचे दबानेसे दांतोंके मसूड़ोंसे बज बजकर मवाद (पीव) निकलने लगता। शरीरका ताप था १०२° और दिनरातमें क्षण भरके लिये भी उनकी आंख नहीं लगती। पहले उन्होंने एक एलोपैथ डाक्टरको दिखलाया। डाक्टर साहबने मुँह की हालत देखकर कहा कि यदि फौरनसे पेस्तर आपरेशन नहीं किया जायेगा तो रोगी बच नहीं सकता। किन्तु हृषिकेश बाबूने कहा कि सारे मुँहपर आपरेशन करानेकी अपेक्षा मृत्युका आलिङ्गन करना उन्हें प्रिय है। तब उन्होंने एक अच्छे होमियोपैथ डाक्टर को दिखलाया। किन्तु दो दिनों तक कुछ भी लाभ नहीं पहुंचा। तब मैं बुलाया गया। उनके मुँहकी भयानकता को देखकर मैंने उनसे सलाह

मशविदा करनेमें देर नहीं किया। फौरन एक स्पीरीटके स्टोवपर एक पानी का वर्तन रख भाप उत्पन्न किया। फिर उनका सिर धुलवाकर उसपर मुँह खोलकर भाप लेनेका प्रवन्ध किया। पांच छः मि० वाद ही मुँहसे पसीना निकलने लगा। और पसीना निकलनेके साथ साथ दाँतकी भीषण पीड़ा वन्द हो गयी। इसके वाद मुँहसे पीव, रक्त, और बहुत अधिक दूषित खंखार आदि निकलने लगा। उनके सामने एक पिकदानी रख दी गयी थी। यह पिकदानी इस मवाद आदि विकारोंसे भर गयी। दस मि० वाद भाप हटा दिया। इसके वाद समशीतोष्ण जलसे उन्हें खूव कुल्ला करा दिया और एक भीगी तौलियेसे सारे शरीर को अच्छी तरह पुंछवाकर उन्हें सुला दिया। फिर मैं अपने घर चला गया। जाते समय यह कहता गया कि एक घंटेवाद इनकी कैसी हालत है—मुझे जनायी जाये। पर डेढ़ घंटे वाद तक मेरे पास कोई नहीं आया। उनके सम्वन्धमें मैं बहुत ही उद्विग्न था। अतः मैं अपने आप उन्हें देखने गया। वहां जाकर देखा कि रोगी गंभीर निद्रामें पड़ा है। मैंने घरमें सभीको सावधान कर दिया कि किसी भी अवस्थामें रोगीको जगाया न जाये, पर नींद टूटनेपर मुझे तुरत खवर मिलनी चाहिये। करीव १२ वजे दिनको वाष्प का प्रयोग किया था और उनकी नींद हटी ५ वजे। नींद टूटते ही उन्होंने मुझे वुलवाया। मेरे जानेपर उन्होंने मुझसे कहा—कि उन्हें जरा भी कहीं दर्द नहीं है और खूव गहरी नींद आयी थी। तव मैंने दिनमें दो वार स्पंजवाथ और केवल नींवूके रसके साथ जलपान करने की व्यवस्था करके मुंहपर भीगे कपड़े की पट्टी फ्लानेलसे ढककर वांध दी। पट्टी सारी रात रही। दूसरे दिन सवेरे जाकर देखा, मुँह स्वाभाविक अवस्थामें आ गया है। मुँहकी सूजन नहीं, दर्द नहीं, ज्वर नहीं—यहां तक कि आंख तक जो अनेकों नालियां हो गयी—वह भी नहीं थी। केवल आंखोंके नीचे जरासी सूजन थी। मैंनें फिर मुंहपर पट्टी वांध दी और दूसरे ही दिन वे

चंगे हो गये। वे मिंटमें काम करते थे। उस समय उनकी छुट्टी थी। तीन दिनों बाद छुट्टी समाप्त हुई। मैंने उनसे तब कहा कि आप अब चंगे हो गये है सही, पर फिर भी आपको सात दिनोंतक आराम करना चाहिये। उन्होंने कहा कि मैं आफिससे छुट्टी लेकर घर लौट आऊंगा। किन्तु छुट्टीलेने में उन्हें मेडिकल सर्टिफिकेट लेनेकी आवश्यकता पड़ती। वे मिन्टके डाक्टर साहबसे छुट्टी लेनेके लिये सर्टिफिकेट लाने गये। डाक्टरने अच्छी तरह उनके मुंहकी परीक्षा करने के बाद कहा—"तुम्हें ऐसी कोई बीमारी नहीं कि जिसके लिये तुम छुट्टी पासको।"

सभी प्रकार के दांत दर्द, और दांतकी बीमारियोंमें भी इससे फायदा पहुंचता है। किन्तु चोट लगनेसे यदि दांत दर्द कर रहा हो तो उसमें इसका हर्गिज प्रयोग नहीं करना चाहिये। ऐसा करनेसे दांत भी नष्ट हो सकते हैं। इस अवस्थामें ठंडा पानी बार बार मुंहमें रखनेसे दर्द शीघ्र अच्छा हो जाता है।

ग्लूकोमा असाध्य रोग है। बिना आपरेशनके यह प्रायः अच्छा नहीं होता। किन्तु आंख बन्द करके कई दिनों तक वाष्प लेने से आश्चर्यजनक रीति से वह अच्छा हो जाता है। बरीसाल जिले के श्री अनन्त कुमार सरकार, बी० ए० को बेरीबेरी होने के बाद ग्लूकोमा हो गया। उन्होंने मेडिकल कालेज में आंखकी परीक्षा करवाई। वहां डाक्टरों ने कहा कि आंख में पानी जमा हो गया है। इसलिये यथा शीघ्र इसका ओपरेशन होना चाहिये। इसी बीच मैंने उन्हें भीगी चादर की लपेट (wet-sheet pack) देकर कई दिन तक आंख पर भाप लेने की सलाह दी। सात दिनों तक इसका प्रयोग कर वे फिर मेडिकल कालेज गये। तब डाक्टरों ने उसकी आंख की परीक्षा करके कहा कि उनकी आंखमें अब और जल नहीं है। वे अच्छे हो गये हैं।

ठीक इसी प्रकार काली घाट रोड को एक महिलाका ग्लूकोमा आरोग्य किया था।

[६]

भीगी चादर का शीतल पैक

(The cooling wet-sheet pack)

भीगी चादर के पैक से शरीर उत्तप्त करके जिस प्रकार शरीर का ताप चढ़ाया जाता है ठीक उसी प्रकार इसके खास ढङ्ग के इस्तेमाल से तेज बुखार के समय इच्छानुसार शरीर के ताप को कम भी कर सकते हैं। इस पैक को भीगी चादर का शीतल पैक (the cooling wet-sheet pack) कहते हैं। रोगी के शरीर में ताप की बहुत अधिक वृद्धि होने पर केवल एक भीगी चादर बिछाकर उससे रोगी के गले तक सारे शरीर को ढक देना चाहिये। इस चादर को पानी से खूब तर रखना चाहिये। आवश्यक होने पर दो चादर का भी व्यवहार किया जा सकता है। इसके बाद एक कम्बल से रोगी को ढककर कम्बल के ऊपर से रोगी के सारे शरीर को धीरे धीरे रगड़ना चाहिये। थोड़ी ही देर बाद चादर गरम हो जायेगी। तब जरा देर के लिये कम्बल को हटा देना चाहिये और चादर तथा शरीर पर ठंडा पानी छिड़क कर चादर तथा शरीर को शीतल करके फिर तुरन्त ही फिर से रोगी को कम्बल से पूर्ववत् ढक देना चाहिये। रोगी का ज्वर जितना ही तेज हो उतना ही बार अधिक इसका प्रयोग होना चाहिये। एक साथ तीन से लेकर पांच बार तक इसका प्रयोग किया जा सकता है। पहली बार रोगी को पांच-छः मिनट तक इस पैक में रखकर दूसरी बार पांच मिनट और अधिक तक इस पैक में उसे रखना चाहिये। इसी प्रकार हर बार का पैक उसके पहले के पैक से पांच पांच मिनट तक अधिक समय के लिये होना चाहिये और अन्तिम पैक आधे घण्टे तक के लिये होना आवश्यक है।

पहली वार के पैंक में ठण्डा पानी (६० ° से ६५° ताप का) प्रयोग करके रोगी का ताप जितना ही कम हुआ हो उतना ही कम ठंडे पानी का व्यवहार करना आवश्यक है।

इसके द्वारा रोगी के शरीर का ताप इच्छानुसार कम करके जितनी डिग्री पर लाना चाहें, ला सकते हैं। किन्तु बुखार को किसी भी हाल्त में जवर्दस्ती वन्द नहीं करना चाहिये। यदि रोगी का ताप १०४° हो तो उसे घटाकर १०२° तक लाया जाना चाहिये। १०२° रहने पर वह और भी दो डिग्री घटाया जा सकता है (Lindlahr, M. D.—Practice of Natural Therapeutics, P. 52, 80, 84 and 148)।

ठंडे पानी के स्नान से जो लाभ होता है, भीगी चादर के शीतल पैंक (cooling wet-sheet pack) से भी वही लाभ होता है। इसलिये रोगी को हौज में स्नान कराने के वदले हमेशा ही इस पैंक का प्रयोग किया जा सकता है। टाइफाइड, मलेरिया, डेंगू, इन्फ्लुएञ्जा और तेज ब्रौंकाइटिज आदि ज्वर, इरीसिप्लस और प्लेग आदि में विशेष करके प्रयोग होता है। नौजवानों के स्वप्नदोष को दूर करने में २० मिनट का यह लपेट रामवाण का काम करता है।

[७]

मृदु वाष्प स्नान

किसी किसी समय रोगी को प्रति दिन वाष्प स्नान के प्रयोग की आवश्यकता पड़ती है। उस समय रोगी को केवल तीन से छः मिनट तक के लिये वाष्पस्नान का प्रयोग कराया जाना चाहिये। इस प्रकार से थोड़े समय तक के लिये प्रयोग किये जानेके कारण इसे मृदु वाष्पस्नान (mild steam bath) कहते हैं। पुराने रोगों में हररोज मालिश, पेटपर गरम-ठंढा प्रयोग, डूस और ठंढी मालिश आदि के साथ इसका रोगी पर प्रयोग करना

उचित है। ठण्डी मालिश आदिके पहले अथवा अन्य किसी भी शीतल वाथ देनेके पहले इस प्रकार रोगी के शरीर को गरम कर के लेने से उसे वहुत लाभ होता है। पुराने रोगोंमें प्रायः पाकस्थली, अँतड़ियों, लिवर और विभिन्न स्नायविक केन्द्रों आदि में काफी अर्से से रक्ताधिक्य चलता होता है। इसके फलस्वरूप शरीर में विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं। पाकस्थली और अंतडियों में रक्तबद्धता रहने पर इन अंशोंसे एक तरह की श्लेष्मायुक्त अवस्था की सृष्टि होती और यह तरह तरह के कीटाणुओं की बाढ़के लिये उपयुक्त स्थान बन जाता है। तब इनसे पैदा होने वाले विष से सारा शरीर विषाक्त हो उठता है। जिसके कारण विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं। लिवर में रक्त बद्धता रहने पर यह उचित रीति से अपना काम नहीं कर सकता और इसके फल-स्वरूप लिवर खून साफ करने तथा अपने और आवश्यक कामों को सुचारु रूप से सम्पादित करने में अक्षम हो जाता है। दूसरे यन्त्रों में रक्ताधिक्य रहने से भी शरीर की भारी हानि होती है।

किन्तु मृदु वाष्पस्नान ग्रहण करने से खून चमड़े में चला हैआता। चमड़े में ऐसी व्यवस्था है कि शरीर के इस खून को आधे से लेकर दो तिहाई भाग तक चमड़े में आकर स्थान प्राप्त कर सकता है। वाष्पस्नान के फल-स्वरूप जब रक्त चमड़े की रक्तवहा नालियों के भीतर चला आता है, तब वह अपने साथ ही भीतर की आँतो के रक्ताधिक्य को नष्ट कर देता है। जब इस प्रकार रोज वाष्प-प्रयोग किया जाता है, तब खून स्थायी रूपसे चमड़े में आकर प्रतिष्ठित हो जाता है। किन्तु रोगीको काफी देर तक के लिये कभी भी ष्टीम वाथ का प्रयोग नहीं करना चाहिये। प्रति दिन रोगी को गर्म स्नान कराये जाने पर, इसकी अवधि ३ से ६ मि० मात्र तक की होनी चाहिये। इसके ग्रहण किये जाने के वाद ही तुरत तौलिये का स्नान या ठण्डी मालिश आदि जिस किसी भी शीतल बाथ से शरीर को शीतल कर लेना

आवश्यक है। तभी ही ठीक तरह से लाभ हो सकता है J. H. Kellogg, M. D. Light Therapeutics P.44-53)। मृदु ष्टीम बाथ लेते समय भी सिर और हृदय पर भीगी गमछी राखनी चाहिये और इसके पहले डूस ले लेना चाहिये। ष्टीम बाथ के बदले में शरीर को अच्छी तरह गरम या थोड़ा पसीना होने तक रोज प्रायः नंगी अवस्था में शरीर पर धूप लेकर स्नान करने से भी एक समान ही फल होता है।

[८]

पैरों की पट्टी (Foot pack)

एक भीगे पर खूब अच्छी तरह निचोड़कर जल रहित किये कपड़े के टुकड़े को पैरों की एड़ी (ankle) से लेकर जंघे के अंतिम भागतक अच्छी तरह एक से दो बार तक लपेट कर फिर किसी एक गरम कपड़े से उसे अच्छी तरह लपेट लेने को ही पैरों की पट्टी कहते हैं। इस समय शरीर का गरम रहना जरूरी है। गरम न रहने की हालत में गरम पानी की थैली या बोतल आदि से पैरों को गरम कर लेनेके बाद पट्टी लपेटनी चाहिये और आवश्यक होने पर गरम थैली को पैरोंपर रखकर इसे गरम करते रहना चाहिये। अथवा पैरों के ठण्डा रहने पर जानुसन्धि के ऊपर से कुंचुकी (groin) तक इसका प्रयोग किया जा सकता है। इसके प्रयोग करने के पहले रोगी के सिर को धो लेना चाहिये। और प्रयोग के समय सिर को ठंडा रखना आवश्यक होता है। जब रोगी के सिरपर पानी चालू रहे तब भी साथ साथ यह चालू रह सकता है। साधारणतया इसका प्रयोग एक घण्टे के लिये होता है। किन्तु रोगी को आराम मालूम पड़ने पर यह अधिक समय तक के लिये रखा जा सकता है और दिनमें वारवार इसका प्रयोग किया जा सकता है। किन्तु रोगीको जब पसीना आने लगे तो इसे खोल डालना चाहिये। हर वार पैक खोलकर सारे शरीर को स्पंज कर देना उचित है।

सिर, गला, मेरुदण्ड, छाती, पेट, वस्ति और ऊपरी शरीर के जिस किसी भी रोगमें इस पट्टी से बहुत लाभ होता है। इसके द्वारा सारे अँगोंके दूषित खूनको नीचे खींच लाया जाता है। फलस्वरूप इन सभी अंगोंका रक्ताधिक्य अनायास ही नष्ट हो जाता है। असल में इसके द्वारा रोगका आक्रमण शरीर के ऊपरी भाग से पैरोंकी ओर पलट जाता है। फलस्वरूप रोग आसानीसे दूर हो जाता है। किसी का कहना है कि मनेनजाइटिज, न्यूमोनिया, ब्रोनकाइटिज, लिवर की सूजन, मूत्रग्रन्थियों की सूजन और जरायु के रोग आदिमें यह गरम पट्टी सर्व-प्रधान चिकित्सा है। युरोप के विभिन्न अस्पतालों के विवरणों से देखा गया है कि इस पट्टीके प्रयोग से रोग की तेजी यथेष्ट रूपमें शान्त हो जाती है, रोग अपेक्षाकृत कम स्थायी होता है, और रोग की प्रबलता के कारण कभी कभी जो पक्षाघात, अन्धापन, बहिरापन और मानसिक रोग आदि उत्पन्न हो जाते हैं, वे इस प्रयोग से कभी भी नहीं हो सकते (Otto Juettner, M. D. Ph. D.—Physical Therapeutic Methods, P. 508)।

असलियत यह है कि इसके द्वारा मृतप्राय रोगी को भी मृत्यु-मुखसे अनेकों बार बचाया जा सकता है। श्रीयुत देवेन्द्रनाथ धर वकालत से विश्राम लेकर कर्नवालिस स्ट्रीट में अपने पुत्र के निवास स्थानपर रहते थे। हठात् एक दिन देखा गया कि वे बीच बीचमें भूल बोलने लगे और उनकी स्मरण शक्ति जाती रही। इसके बाद एक दिन वे बेहोश होगये और उनका दाहिना हाथ सुन्न होगया। उस समय समझा गया कि उनके मस्तिष्कके भीतर रक्तके चक्का बन्ध जाने के कारण (Cerebral thrombosis) यह अवस्था हुई है। रोगी धीरे धीरे अचेत होने लगा और पन्द्रह दिनों के बाद बेहोशी की नींद सी उन्हें आगई। अन्तमें वे बिल्कुल बेहोश हो गये और छाती में पानी इकट्ठा ... ry edema) हो गया। इस अवस्थामें डाक्टरोंने यह कह

कर अपना हाथ खींच लिया कि रोगीके बचनेकी कोई आशा नहीं और अन्तिम चिकित्सा के लिये मुझे बुलाया गया। रोगी की अवस्था देखकर पहले तो मैंने चिकित्सा करना अस्वीकार कर दिया। किन्तु सारे परिवार के लोगों ने मुझे इस प्रकार पकड़ा कि चिकित्सा करने के लिये मैं बाध्य हुआ। मैंने पहले ही रोगी को एक घंटे के लिये छाती की पट्टी बांधी। मात्र इसी व्यवस्था से आश्चर्य जनक रूपसे छाती की गड़बड़ी गायब होगयी। इसके बाद दिनमें चार बार पाँवकी पट्टी देने की व्यवस्था की। साथ ही साथ पेट पर गरम-ठंडा, पेट की पट्टी, ठंडी मालिस और छाती की पट्टी चलती रही। इस चिकित्सा से अपने आप कय होकर रोगी का पेट साफ हो गया। इसके बाद अपने आप पेशाब और पाखाना हुआ और जिस रोगी की मृत्यु अवश्यम्भावी थी, उसे रात बीतते बीतते होश भी आ गया। रोगीके बड़े पुत्र एक विख्यात एम०बी० डाक्टर थे। किन्तु कैम्पबेल अस्पताल के विलायत से लौटे हुए एक अनुभवी एम० डी० डाक्टर उनका चिकित्सा कर रहे थे। इस असाध्य रोगीके अच्छे हो जानेकी खबर पा आश्चर्य चकित होकर वे उसे देखने आये और अनेकों प्रकार से रोगी की परीक्षा करके जाते समय बोले कि कैम्पबेल अस्पताल में उनके आधीन जो पचास बेड हैं, उनमें अब वे प्राकृतिक चिकित्साका (Physio-therapy) प्रचलन करेंगे।

[६]

बर्फ का व्यवहार

तेज उत्ताप और अत्यधिक ठंढक दोनो ही समान रूपसे वर्जित हैं। तौ भी कभी कभी जब साधारण ठंडे पानी से काम नहीं चलता, तब मजबूरन बर्फ का सहारा लेना पड़ता है। किन्तु हर हालत में विशेष सावधानी के साथ पद्धति के अनुसार बरफ का प्रयोग होना चाहिये। नहीं तो लाभ पहुँचाने के बदले इससे हानि होने की ही सम्भावना रहती है।

खाली चमड़े पर कभी भी वर्फ या वर्फ की थैली (ice bag) का प्रयोग नहीं करना चाहिये। शरीर के किसी भी भाग पर प्रयोग करते समय हमेशा उस स्थान विशेष कर एक जल पट्टी (cold compress) देकर उसके ऊपर वर्फ या वर्फ की थैली का प्रयोग होना चाहिये। अथवा एक फ़्लानेल के टुकड़े को फैलाकर उस पर वरफ की थैली रखी जा सकती है। यदि वर्फ के पानी में डुवोकर शीतल पट्टी का प्रयोग किया जाय तो यह नंगे चमड़े पर भी रखी जा सकती है। इससे वरफ की थैली रखने के समान ही काम होता है। इस अवस्था में कुछ मिन्ट के वाद ही वार-बार पट्टी बदलते जाना चाहिये। यदि पट्टी बदलने की इच्छा न हो तो रुई तह में वरफ के चूरे को विछाकर पट्टी का व्यवहार करने पर भी वह काफी समय तक ठंढी रहती है। वरफ या वरफ की थैली की अपेक्षा, वरफ के पानी में भीगी शीतल पट्टी से ही अधिक लाभ होता है।

सन्यास (apoplexy) रोग में जब मस्तिष्क के भीतर की कोई धमनी फट जाये तो वरफ की थैली का सिर पर प्रयोग करने से वहुधा रोगी के प्राण वच जाते हैं। पाक-स्थली से खून का क्य होने पर वरफ के छोटे छोटे टुकड़े यदि निगले जांय तो विशेष लाभ होता है। गुर्दा (kidney) से रक्तश्राव होने से पीछे की तरफ कमर पर वरफ की पट्टी का प्रयोग करना चाहिये। अंतड़ियों से रक्त निकलने पर पेड़ू पर वरफ की थैली रखने से विशेष लाभ होता है। जरायु से यदि वहुत अधिक रक्त निकल रहा हो तो मूत्र द्वार और मूत्र द्वार एवं गुह्य द्वार के बीचके भाग (perineum) तथा कटि प्रदेशों में वरफ के पानी में भीगी पट्टी देने से जरायु संकुचित होती है और रक्त श्राव वंद हो जाता है।

मस्तिष्क के रक्ताधिक्य को यह बड़ी आसानी से दूर कर देता है। तेज वुखार में रोगी के सिर, गरदन और मुँह पर वरफ की पट्टी का प्रयोग

करने से रोगी को बहुत ही आराम पहुंचता है। थोड़े समय के लिये सिर पर बरफ की पट्टी का प्रयोग करने पर पागलों की खूब तीव्र उत्तेजना भी कम हो जाती है। किन्तु हमेशा ही बड़ी सावधानी के साथ सिर पर बरफ का प्रयोग होना चाहिये। सिर पर अधिक ठंडक पहुँचाने से सिर की तरफ रक्त का दौरान बन्द हो जाता है और हृदय को काम करने में बाधा पहुँचने लगती है। इस कारण हृद्‌पिण्ड की पेशियां बहुधा क्षतिग्रस्त हो जाती हैं।

साधारण प्रदाह रोग में इस पट्टी का प्रयोग करने से बहुत ही फायदा होता है। मस्तिष्क की सूजन में बरफ की पट्टी बहुत लाभ पहुँचाती है। सूजन के साथ घाव में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। अर्श (बवासीर) की बीमारी में गुह्य द्वार पर घाव एवं सूजन होने पर बर्फ की पट्टी बड़ी काम करती है।

हिष्टिरिया और अंगनृत्य रोग (chorea) में जब अंगों की ऐंठन किसी भी प्रकार से कम नहीं होती, तब मेरुदण्ड पर बरफ की पट्टी का प्रयोग करने से वह दूर हो जाती है।

पाकस्थली अथवा ठीक उसकी विपरीत दिशा में मेरुदण्ड पर बरफ की थैली रखने से निश्चय ही कै बन्द होती है। पाकस्थली के कैन्सर की असम्भव पीड़ा को भी यह आराम पहुँचाती है।

मेरुदण्ड पर बरफ की थैली रखने से धनुपटङ्कार (tetanus), समुद्र पीड़ा (sea sickness) और मस्तिष्क तथा मेरुदण्ट झिल्लियों की सूजन (cerebro-spinal meningitis) में इससे विशेष लाभ पहुंचता है।

इरिसिप्लस (erysipelas) की वृद्धि को रोकने में बरफ की थैलो से बढ़कर और कुछसाधन नहीं है।

अफीम या अन्य किसी विष के खा लेने से जब नाड़ी का स्पन्दन बन्द सा होने लगता है, तो नाक की श्लेष्मिक झिल्ली और होठ के ऊपर बरफ का प्रयोग करने से रोगी की अवस्था बहुधा बिल्कुल सुधर जाती है। क्योंकि उक्त स्थान पर ठण्डक पहुँचाने से श्वास प्रश्वास के केन्द्र (respiratory center) को उत्तेजना मिलती है।

स्नायुशूल में बरफ की थैली के प्रयोग से बहुत बार काफी लाभ पहुँचता है।

दिहातों में जहां बरफ नहीं मिलती, वहां खूब ठण्डी कांदो मिट्टी या खूब ठंडे पानी में भिगा कपड़ा चमड़े के ऊपर इस्तेमाल किया जा सकता है।

———

दशम अध्याय

मिट्टी का जादू

[१]

रागों की चिकित्सा में पानी से जो लाभ होता है, बहुत अवसरों पर कांदो मिट्टी से भी वही लाभ पहुंचता है। कभी कभी जब पानी की पट्टी से पूरा लाभ नहीं होता तब कांदों मिट्टी का प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है। बीमारी की हालत में शरीर में जो विशेष ताप की सृष्टी होती है, उसे खींच लेने में तथा रोग के विष को सोखने की जितनी क्षमता मिट्टी में है, उतनी और किसी भी चीजमें नहीं। इसी कारण भिन्न भिन्न तप से मिट्टी को शरीर के सम्पर्क में लाकर बहुत रोगों से छुटकारा मिल सकता है।

नंगे पाँव टहलना

शरीर को मिट्टी के संस्पर्श लाने का सब से आसान तरीका नंगे पाँव टहलना है।

जिनके शरीर में अत्यधिक मात्रा में जलन रहती हो, वे यदि कुछ समय के लिये हर रोज नंगे पाँव टहले, तो उन्हें बहुत ही फायदा पहुँचेगा।

बहुतों को रातमें गहरी नींद नहीं आती। बड़ी परेशानी के बाद यदि कहीं नींद आ भी गयी, तो वह भी सपनों से भरी तंन्द्रा मात्र होती है। इस प्रकार के सभी रोगी यदि नियम से थोड़ी देर के लिये खाली पाँव टहलने का अभ्यास करें, तो धीरे धीरे गाढ़ी नींद के अधिकारी बन सकते हैं।

इससे सिरदर्द, गलेका दर्द, पुरानी सर्दी, सिर और पाँव की ठंडक आदि रोग भी आसानी से आराम होते हैं (Sabastian Kneipp-My Water-oure P, 20-21)। एक सम्मानीय अध्यापक ने मुझसे कहा था, कि लड़कपन से ही उन्हें सर्दी थी। यह रोग उनकी वंश परम्परा से चला आ रहा था। किन्तु नंगे पाँव मैदान में टहलने का अभ्यास करके इस असाध्य रोग से उन्हें छुटकारा मिल गया था।

नंगे पाँव टहलने से तभी लाभ होता है जब कि पाँव के गरम रहते ही टलहना शुरू किया जाये। इसी लिये गरम मोज पहनने से जब पाँव गरमा गया हो, तभी उसे उतार कर टहलना आरम्भ करना चाहिये। यदि पाँव ठंडे हों तो, सूखे रगड़कर उन्हें गरमा करके टहलना लाज़िम है। टहलना समाप्त करने के बाद भी पैरों को सुखो मालिश करके फिर तुरन्त गरम मोजे पहन कर पैरों को गरम कर लेना चाहिये। साधारणतया ४५ मि० से लेकर एक घंटे तक इस प्रकार टहलना काफी है। शुरू शुरूमें तो और भी कम टहलना चाहिये। टहलने का अभ्यास हो जाने के बाद यह समय और भी बढ़ाया जा सकता है। जब घास पर ओस की बूंद पड़ी हों, उसी समय उस पर यदि टहलना संभव हो, तो इससे बहुत ही अधिक लाभ होता है। जाड़े को छोड़ कर और ऋतुओं में जब कि ओस की बूंद घास पर नहीं पड़ी होती, तब वर्षा से भीगी घास पर भी टहला जा सकता है।

हमारे यहाँ छोटे छोटे बच्चों को हमेशा गोदी में या बिछौने पर सुलाये या बैठाये रखा जाता है। इससे लाभ के बदले उनकी हानि ही होती है। यदि उन्हें साफ सुथरा एवं सूखी टनटनी मिट्टी पर खेलने को छोड़ दिया जायें, तो बहुत ही बच्चों कि बीमारियों से उन्हें छुट्टी मिल जाये। धूल मिट्टी लगे खुली हवामें खेलने से थोड़े ही दिनों में बच्चों का स्वास्थ्य विशेष रूप से उन्नत हो सकता है।

वहुतेरे बच्चे वहुत रोया करते हैं। यदि उन्हे कई दिन जमीन पर खेलने दिया जाये, तो देखते ही देखते में स्वयं शान्त प्रकृति के बन जाते है। किन्तु ६ महिने से कम उम्र के बच्चा को कभी जमीन पर नहीं रखना चाहिये। इस बात का भी विशेष ध्यान रहना चाहिये कि जमीन से अगड़म् बगड़म् कुछ भी उठा कर मुँह में डालने न पावे।

जितनी ही अधिक दिनों की सूखी मिट्टी पर रहकर मुक्त प्रकृति से सानिध्य किया जाये, उतनी ही यह स्वास्थ के लिये मंगलयुक्त है। परन्तु इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिये कि ये लाभ केवल साफ सुथरी जमीन पर रहने से ही हो सकते हैं। पर जहाँ मलमुत्र, कूड़ा कचरा हो, उस स्थान का तो हर अवस्था में परित्याग ही अच्छा है। इस प्रकार के गंदे स्थान में रहने या टहलने से हुकवर्म, आदि दुःसाध्य रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

[२]

मिट्टी की पोल्टिश (Earth compress)

प्राकृतिक चिकित्सा में, पोल्टिश या कम्प्रेस के रूप में मिट्टी का सबसे अधिक व्यवहार होता है। पैक आदि में, पानी का जो व्यवहार होता है, मिट्टी को भी ठीक वही उपयोग होता है। किन्तु इन सब व्यवस्थाओं में पानी की अपेक्षा मिट्टी कई गुना अधिक लाभ पहुंचाती है।

एडल्फ जुष्ट साहब का कथन है, (Many a local trouble will flee from an earth compress as if by magic— मिट्टी के कम्पेस प्रयोग से बहुत ही बीमारिया जादू मंतर की तरह गायब हो जायेंगी (Rteurn to Nature, P. I23)।

विभिन्न अंगों की बीमारियों में विभिन्न स्थानों पर मिट्टी का पोल्टिश का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार की चिकित्सा के लिये जिस मिट्टी का

प्रयोग किया जावे उसे जरा विशेष स्थल से इकट्ठा करना चाहिये। यह मिट्टी उस स्थान से लाना चाहिये जहां किसी प्रकार की मल-मूत्र आदि की गंदगी न हो। मिट्टी निखालिस धुसरी या निखालिस चिकनी भी नहीं होनी चाहिये। तीन हिस्सा धुसरी और एक हिस्सा चिकनी हो तो अच्छा है। मिट्टी हमेशा नयी व्यवहार में लाना चाहिये। यदि मिट्टी लाकर घर में एक ही बार जमा की जाये, तो उसे धूप में खूब सूखा लेनी चाहिये। अन्यथा एक दिन की लायी मिट्टी, सात दिन से अधिक काम में नहीं आ सकती। पुल्टिश बांधने समय मिट्टी को अच्छी तरह पीस कर छान करके मक्खन की तरह कर लेना चाहिये। मिट्टी को छान कर पहले उसे एक भीगे कपड़े पर आधी इंच से कुछ ज्यादा ऊंचा करके समतल कर लेना चाहिये। फिर धीरे धीरे उस कपड़े को एक हाथ पर उठा लेना चाहिये और इसे रोगी के निर्दिष्ट स्थान पर इस तरह रखना चाहिये कि शरीर के चमड़े पर मिट्टी पड़े और मिट्टी के ऊपर कपड़ा रहे। मिट्टी को पहले ही कपड़े पर इस तरह सजाना चाहिये कि वह कपड़े से बाहर निकलने न पावे और शरीर पर मिट्टी रखने पर मिट्टी सभी जगह समान भाव से आधी इंच ऊंची रहे।

पानी की पट्टी की ही तरह मिट्टी की पुल्टिश को इच्छानुसार ठण्डा या तापजनक पट्टी के काम में लाया जा सकता है।

मिट्टी की शीतल पुल्टिश

(Cold earth compress)

जब मिट्टी की ठंडी पुल्टिश बांध कर बार बार इसे बदलते जाते हैं तो यह ठण्डे पानी की पट्टी का काम करती है। ठंडी पट्टी की तरह इसे खुला रखना होता है या आवश्यकता होने पर एक भीगे कपड़े से इसे बान्धा जा सकता है। जब ठंडी पट्टी से लाभ नहीं होता है, तो मिट्टी को

पुल्टिश का प्रयोग करना चाहिये। किसी किसी समय पहले ही मिट्टी की पुल्टिश व्यवहार किया जा सकता है। यदि यह पट्टी काफी देर तक बांधनी हो, तो बीच बीच में कुछ मिन्ट के लिये उस स्थान को सेंक लेना चाहिये।

आगसे जलते ही गीली मिट्टी की पोल्टिश बान्ध देने से उस स्थान पर फफोला नहीं उठ सकता। यदि कभी फफोला पड़े भी तो, मिट्टी की पुल्टिश बांधने से रातभर में ही वह बैठ जाता है। एक समय कालीघाट में शान्ति घोषाल नाम के एक युवक का ठाकुरजी के सामने आरती करते समय धुनी की आग में पैर पड़ गया। आरती की धुन में पहले तो उसे जलने के दर्दका उतना कुछ मालूम नहीं हुआ। आरती समाप्त होने पर उसने देखा कि, उसके पैर में कुछ जगह फफोले पड़ गये हैं। मैंने उसके पैरमें काफी गीली मिट्टी बान्ध दी। उसे उसी प्रकार बान्धे ही वह सो गया। दूसरे दिन सवेरे देखा गया कि, उसके पैर में फफोले का चिन्ह भी नहीं है। आग से जला हुआ स्थान पानी की पट्टी से प्रायः जल्दी अच्छा नहीं होता, पर वहां गीली मिट्टी की पुल्टिश रामवाण का काम करती है।

दस्त की बीमारी तथा हैजे में यदि पेट गरम रहे तो, मिट्टी की पुल्टिश जादू का काम करती है। हवड़ा जिले के बासन्ती कुमार चक्रवर्ती नामक एक आदमी को हैजा हो गया। उसे पांच छः बार कै तथा दस बारह बार दस्त हुईं। अन्त में दांत्स के साथ खाली पानी आने लगा तथा हाथ पांव में ऐंठन आने लगी। रात एक बजे से लेकर सुबह तक उसकी यही अवस्था रही। जब उसकी हालत अत्यन्त खतरनाक हो गयी, तो मुझे खबर मिली। मैंने जाने के साथ ही और कुछ न कर, पहले गीली मिट्टी लाकर उसके पेड़ू पर पुल्टिश बान्ध दी। उसका पेट उस समय उतना गरम था कि, बर्फ के समान ठंडी मिट्टी करीब तीन मिन्ट में आग के समान गरम हो

गयी। मैंने वार वार मिट्टी वदलनी शुरू की। पहली वार मिट्टी देने के वाद एक वार और दस्त लाया, पर कै तो छूमंत्र की तरह उसी समय वन्द हो गयी। किन्तु इसके पहले ही हाथ पैर में ऐंठन शुरू हो गयी थी। इससे उसे वहुत ही कष्ट हो रहा था। उसके हाथ वार वार ऐंठ जाते थे। साधारण दवा दारू होने पर यह प्रायः दो-तीन दिन तक चलती है। किन्तु धूप निकलते ही उसके विस्तर को वाहर लाकर उसे धूप में इस प्रकार सुलाया कि जिससे धूप केवल उसके पैर और हाथ पर पड़े। इसके वाद कपड़े से हाथ पैर ढक दिये। वह जाड़े का दिन था। करीव घंटे भर तक हाथ पैर उसी प्रकार धूप में रहे। इसी से उसकी मरोड़ जाती रही। उस दिन उसे केवल नीम्बू का रस और पानी पिलाकर रक्खा। दो दिन वाद ही वह चंगा हो गया।

प्रायः सभी प्रकार के दर्द में यह अत्यन्त गुणकारी है। पेड़ूपर मिट्टी की पुल्टिश वांधने से करीव आध घंटे के भीतर कठिन-से कठिन शूलन्दर्द अच्छा हो जाता है।

पेड़ू पर मिट्टी की पुल्टिश नाभि के चार-पांच अंगुल ऊपर से लेकर सारे पेड़ू तक देनी चाहिये। तभी इससे लाभ होता है।

मिट्टी की ढकी हुई पुल्टिश

(Heating earth compress)

मिट्टी की ठंडी पुल्टिश को ऊपर फ्लालेन से कसकर वांध देने ही को ढकी पुल्टिश कहते हैं। एक फलानैन को कई तह करके पुल्टिश के ऊपर उसे इस प्रकार ढक देना होता है, जिससे कि मिट्टी की सभी ओर फलानैन करीव एक इंच वाहर रहे। इसके वाद एक कपड़े से उसे इस प्रकार कसकर वांध दें, जिससे कि हवा का आना जाना वन्द हो जाये। पर इतना नहीं कस देना चाहिये कि जिससे रक्त का प्रवाह ही उस यंत्र में वन्द हो जाये। जब

तक मिट्टी भींगी रहती है तभी तक उससे लाभ होता है। सूख जाने से कम्प्रेस की उपयोगिता समाप्त हो जाती है। मिट्टी की पुल्टिश को हटाने के बाद प्रत्येक बार न बहुत गरम और न अधिक ठंडे पानी से वह स्थान को धो देना चाहिये। इस प्रकार धो चुकने के बाद उस स्थान को कुछ देर के लिये गरम कपड़े आदि से ढक कर उसे जरा गरम कर लेना आवश्यक है।

मिट्टी की पुल्टिश काफी देर तक रक्खी जा सकती है और आवश्यकतानुसार दिन में कई बार बदली भी जा सकती है। कठिन और नये (acute) रोगों के उठान के समय पहले इसे बार बार बदलना चाहिये। रात में इसे सारी रात रक्खा जा सकता है।

हाथ, पाँव, गर्दन, कान, गला, छाती, जननेन्द्रिय, मुत्राशय, जिगर, प्लीहा और पेड़ू आदि के ऊपर निडर से इसका प्रयोग किया जा सकता है।

पेड़ू के दोषों को दूर करने के लिये और निर्दोष उपाय से कब्जियत दूर करने के लिये पेड़ू पर मिट्टी की ढकी पुल्टिश आश्चर्यजनक काम करती है। चूंकि पेड़ू की दूषित अवस्था ही अधिकांश रोगों की सृष्टि का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कारण होती है, इस कारण अधिकांश रोगोंमें इसका प्रयोग बहुत लाभकारी सिद्ध होता है। इसके प्रयोग से साधारण स्वास्थ्य भी बहुत कुछ सुधरता है। किन्तु पेड़ू गरम रहने ही पर केवल इस पुल्टिश का व्यवहार करना चाहिये।

ज्वर के समय इस पट्टी के प्रयोग से, कोष्ट साफ होता है, ज्वर कम हो जाता है और अन्यान्य जटिलता भी शान्त हो जाती हैं। किन्तु ज्वर की प्रारम्भिक अवस्था में जब शीत और कम्प का जोर हो, उस अवस्था में इसका कभी इस्तेमाल नहीं करना चाहिये।

टायफायड (मोती झरा) आदि ज्वरों में इससे थोड़े ही दिनों में

पेट का दोष नष्ट हो जाता है। फलस्वरूप ज्वर भी शिघ्र दूर हो जाता है। मेरे भतीजे श्री सव्यसाची मुखोपाध्याय को एक वार मियादी बुखार हुआ। उसके ज्वर आरम्भ के समय मैं कलकत्ते था। स्थानीय सभी अच्छे-अच्छे डाक्टरों से मां ने रोगी का इलाज कराया। पर उन सबके उपचार और भरपूर यत्न पर भी कुछ लाभ नहीं हुआ। इतने में मैं घर गया। उस समय रोगी के पेट की अवस्था अत्यन्त खराब थी। बार-बार पाखाना होता था और मलसे बड़ी ही भयानक दुर्गन्धि निकलती थी। ज्वर उस समय १०५ डिग्री था। अपने दो प्राकृतिक चिकित्सक मित्रों की साथ सलाहकर मैंने पहले ही उसका पेड़ूपर भीगीं मिट्टी छाप दी। पेड़ू इतना गर्म था कि भीगीं मिट्टीकी पट्टी पन्द्रह-बीस मिन्टमें ही बिल्कुल गर्म हो उठी। इससे ज्वर बहुत कम हो गया। इसके बाद रात भर उसके पेट पर मिट्टी की पट्टी बांधने लगा। इससे बहुत ही थोड़े समय में पेट के निचले भाग का सारा बिकार बाहर हो गया। और पाखाना स्वभाविक ढंग से होने लगा। इस मिट्टी की पट्टी के प्रयोग से रोगी का इस प्रकार दोनों समय स्वास्थकर पाखाना होने लगा, जिसको देखकर यह कोई नहीं कह सकता था कि यह टायफायड के रोगी का मल है। इसके पहले उसका पेट फूला हुआ था। मिट्टीकी पुल्टिशसे पेट का फूलना भी जादू की तरह गायब हो गया। अब बाकी रह गया ज्वर। जब बुखार खूब तेज रहता, उस समय भीगे कपड़े की पट्टी पेड़ू पर देता और उसे तीन-तीन चार-चार मिन्ट के बाद बदलता जाता। पेड़ू पर आधे घन्टे तक जल पट्टी देने से ही बुखार करीब दो डिग्री नीचे आ जाता। इसके सिवा रोगी का सिर धुला दिया जाता और हर रोज कई बार ठंडे पानी से शरीर रगड़ कर पोंछ दिया जाता। रोगी कुछ खाना नहीं चाहता था। जल में नींबू का रस मिलाकर एक-एक घन्टे बाद उसे आधा गिलास करके काफी पानी पिलाया जाता। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में

रोगी अचेतन नींद (coma) अवस्था में रहता। उसकी दोनों आँखें सदा अर्ध सुप्त सी रहतीं। बहुत पुकारने पर जरा सा सिर हिला भर दे देता था। परन्तु उपरोक्त चिकित्सा से केवल पांच-छः दिन बाद ही इस प्रकार की निद्रा जाती रही और तीन-चार दिन के भीतर ही वही बिस्तरे पर उठकर बैठने लगा। तब उसे कटि-स्नान कराना शुरू किया। रोगी को जल में बैठा कर उसके पेड़ू को बहुत हल्के हाथ से धीरे-धीरे सहला दिया जाता। कभी भूलकर भी जोर से रगड़ा नहीं जाता। तीन दिन कटि-स्नान कराने के बाद उसे क्रमनिम्नताप में स्नान कराया जाने लगा। इस प्रकार कुछ दिनों की चिकित्सा के बाद ही उसका ज्वर उतर गया और थोड़े ही दिनों में वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया।

विभिन्न प्रकार के घावों (ulcer) मिट्टी की ढकी हुई पुल्टिश से ही आराम हो सकते हैं। नये घावों में जिस प्रकार जल की पट्टी लाभदायक है, उसी प्रकार पुराने घावों में मिट्टी की पुल्टिश सर्वश्रेष्ट है। साधारण घाव इससे दो-तीन दिन में ही अच्छा हो जाता है। किन्तु घाव पर और घाव की चारों ओर कुछ दूर तक आधी इंच मोटी मिट्टी की पुल्टिश होनी चाहिये। मिट्टी हमेशा घाव पर इस प्रकार रखनी चाहिये कि घाव और मिट्टी के बीच में और कुछ कपड़ा वगैरह न होवे। यानी मिट्टी को सीधे घाव पर छाप देनी चाहिये। घाव पर मिट्टी के प्रयोग करने के पहले उसे एक मिट्टी के कोरे बर्तन में एक घण्टा उबाल के लेना अधिक अच्छा होगा। घाव पर एक बार चढ़ाई हुई मिट्टी घन्टों से अधिक नहीं रहने देना चाहिये।

फुन्सी, फोड़ा, जहरबात (carbuncle) आदि बिना नश्तर से केवल मिट्टी छाप कर ही अच्छे किये जा सकते हैं। मिट्टी की पुल्टिश के बीच-बीच के समय में दिन में दो बार दस मिन्ट के लिये घाव पर गरम सेंक देनी चाहिये।

कानका सूजन और कर्णमूल भी इससे आराम होने सकता है। एक कपड़े के टुकड़े से कान का छेद बन्द करके कान की चारों ओर काफी गीली मिट्टी छाप कर फिर उसे फ्लानेल से अच्छी तरह बांध देना चाहिये। प्रत्येक बार दो-तीन घंटेके बाद पुल्टिश बदल देना उचित है और फिर दस मिन्ट तक उसे सेंकना चाहिये।

जल चिकित्सा की अन्यान्य विधियों के साथ साथ मिट्टी की ढकी पट्टी का व्यवहार करने से बाघी, उपदंश, हड़फोड़ (gangrene), वात विसर्प (erysipelas) और कैंसर आदि भी अच्छे हो सकते हैं।

विभिन्न प्रकार के चर्मरोग, बिच्छू आदि के काटने, स्फीति या हड्डी टूटने पर भी मिट्टी की पुल्टिश बहुत लाभ पहुंचाती है।

किसी भी प्रकार की सूजन में यह राम-बाण का काम करती है। एक बार हमारी आंगन में एक टूटी चौकी खड़ी की हुई रक्खी थी। इसमें एक पुरानी पिरेक निकली हुई थी। उन दिनों एक नया नौकर आया हुआ था। उसका पैर उस पिरेक पर पड़ा और वह करीब एक इञ्च पैर में घुस गया। पिरेक को तो लोगों ने जोर से खींच कर बाहर निकाल दिया। पर उससे उसके दर्द की इन्तिहा नहीं। उस दिन मुझे इस घटना की कोई खबर नहीं मिली। दूसरे दिन जब मैं बाहर जाने लगा, तब देखा कि वह पैर बांधे बारान्दे में बैठा है। पास जाकर मैंने उसका पांव देखा। घाव के चारों ओर जरा सा दबाने से घाव के मुँह से बज बज करके पीब बाहर निकल आया। उसका पैर भी काफी सूज गया था। एक महाशय वहीं बैठे थे। उन्होंने कहा, 'इसे तुरन्त अस्पताल भेज दिया जाये'। मैंने उसे अस्पताल नहीं जाने दिया। तुरत गीलीमिट्टी लाकर उसके पैर के ऊपर नीचे चारों ओर एक कपड़े के सहारे पट्टी बांध दी। दर्द के मारे बिचारा सरी रात सो नहीं सकता था। आध घंटे बाद जब मैं उधर आया, तो

देखा कि मिट्टी की शीतलता से आराम पाकर इसी बीच वह बिचारा गहरी नींद में सो गया है। करीब बारह बजे उसकी नींद खुली। तब एक बार फिर मैंने मिट्टी बदल दी। दूसरे दिन बिस्तरा से उठने में मुझे देर हो गयी थी। जब मेरी नींद खुली, तो मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि, बैठक में वही नौकर झाड़ू दे रहा है। मैंने आश्चर्य के साथ पूछा 'तुम्हारे घाव का क्या हुआ?" वह अपने जख्मी पैर को उठा कर घाव को जोर जोर से दबाते हुए बोला, "अब तो कुछ भी नहीं है—अच्छा हो गया।"

घाव के स्थान में जो कुछ विकार पैदा होता है, मिट्टी की पुल्टिश उसे खींच लेती है। इसी कारण जब मिट्टी की पुल्टिश खोल ली जाती है, तब उसमें से एक प्रकार की दुर्गन्धि निकलती है। मिट्टी की पुल्टिश जिस विकार को खींच लेती है, यह उसी की दुर्गन्धि होती है। यह घाव के स्थान से विष और कीटाणु आदि को खींच लेती है, इसी कारण घाव अच्छा हो जाता है।

यदि ठीक समय पर मिट्टी की पुल्टिश का प्रयोग किया जाये, तो चीरफाड़ करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। बहुत बार तो मिट्टी की पुल्टिश ही नश्तर का काम कर देती है। मैंमनसिंह जिलेका विधुभूषण नाथ नामक एक १७ वर्ष का लकड़ा एक बार कलकत्ते आया। देशमें बाँस चीरते समय एक बाँस की खोंक उसके पैर में गड़ गयी थी। उसे उसी समय उसने निकाल फेंका, पर इससे घाव सूखा नहीं। वह बार बार दवाई लगाकर घाव को सुखाता था, पर घाव फिर हो जाता था। उसके पैर में दर्द भी खूब रहता था और चलने में उसे कष्ट होता था। एक आदमी ने उसके पैर की हालत देखकर उसे बतलाया था कि उसके पैर में बाँस का टुकड़ा रह गया है। उसे चीर कर निकलवाना होगा। कलकत्ते आकर वह घाव चिरनेको तैयार हुआ। किन्तु पैर में किस जगह बाँस का टुकड़ा है, उसे निकाल

के लिये डाक्टर लोग कितना काटेंगे, और इस कारण परदेश में उसे कितने दिन कष्ट भोगना और विस्तरपर पड़े रहना होगा आदि सोचकर वह डर गया। मैंने उसे आश्वासन दिया और कुछ मिट्टी लाकर उसके पैरपर एक पुल्टिश देकर फ्लालेन से उसे अच्छी तरह बांध दिया। दो-तीन रात मिट्टी को उसने इसी प्रकार रक्खा। रोज सुवह उस घाव को दिखाने के लिये वह मेरे पास आता था। एक दिन मैंने देखा कि एक बाँस के टुकड़े का सिरा घाव में झलकता है। मानो वह टुकड़ा मुँह ऊंचा करके कह रहा हो, "मुझे बाहर खींच लो।" उस लड़के ने ही अपने नाखून से उस टुकड़े को बाहर खींच लिया। मैंने देखा कि वह टुकड़ा त्रि-चतुर्थ इञ्च से भी बड़ा था। दूसरे दिन भी रात के समय उसका पैर फिर पहले की तरह मिट्टी से बांध दिया। इसके दुसरे दिन यह देखकर आश्चर्य हुआ कि एक और बाँस का टुकड़ा उसी प्रकार मुँह किये घाव में चमक रहा है। इसे भी निकाल फेंका गया। यह भी पहले टुकड़े के बरावर ही बड़ा था। इसके बाद तीन चार दिन मिट्टी की पुल्टिश लगाने से घाव बिल्कुल सूख गया। इसके बाद फिर उसे घाव नहीं हुआ।

बिजली मारने या सांपके काटने से यदि कोई वेहोश हो गया हो तो उसके सिरके भाग को छोड़ गर्दन तक सारे शरीर में मिट्टी छाप देने से बहुत आराम हो जाता है। इस प्रकार के उपचार से सचमुच ही कितनों को आरोग्य लाभ हुआ है (Adolph Just—Return to Nature, P. 120-29।

[३]

अन्यान्य स्थानों में मिट्टी का व्यवहार

अपने शरीर के चमड़े को सदा साफ सुथरा रखना अत्यावश्यक है। किन्तु चमड़े को साफ रखने के लिये हम जिन साबुनों का व्यवहार करते हैं। वे केवल चमड़े को साफ ही नहीं करते, वल्कि साबुन के विभिन्न उपदान

विभिन्न रूपसे चमड़े की ग्रन्थियों को उत्तेजित कर फलस्वरूप उनके स्वास्थ्य को नष्ट कर देते हैं। इसी कारण जो लोग अधिक साबुन का व्यवहार करते हैं, उनका चमड़ा कड़ा और कमजोर हो जाता है। साबुन के लगाने से जो लाभ होता है शरीर में कांदो मिट्टी लगाने से भी वही गुण हो सकता है। बीच बीच में कांदो मलकर स्नान करने से लोमकूपों का बाहिरी भाग साफ हो जाता है। परन्तु जो लोग कांदो मिट्टी का व्यवाहर नहीं करें उन्हें तो साबुन लगाना चाहिये क्यों कि हर अवस्था में लोमकूपों को तो साफ रखना ही होगा।

शौच से आकर हम लोग केवल आधे मिन्ट में ही मिट्टी और जलसे हाथ साफ कर लेते हैं। इसी थोड़े समय में जल और मिट्टी हाथ की सारी दुर्गन्धि और मल को बाहर ले जाती है। कांदो मिट्टी से सभी प्रकार की गन्दगी से छुटकारा मिल सकता है।

जिनके सिर में रूसी बैठती हो, वे यदि बीच बीच में कांदो मिट्टी से सिर धोया करें तो सिर काफी साफ रहेगा। साफ सिर में रूसी किसी भी हाल्त में अधिक दिनों तक टिक नहीं सकती। पर मिट्टी लोनी (नमकीन) नहीं होनी चाहिये। लोनी मिट्टी के व्यवहार से बाल झड़ सकते हैं।

दांत के रोगों की चिकित्सा करने लिये घुसरी मिट्टी से बढ़कर लाभदायक और कोई औषधि नहीं। दांत की ऐसी कोई भी बीमारी है नहीं जो रोज घुसुरी मिट्टी से दांत साफ साफ कर धोने से, अच्छी न हो जाये। दांत का हिलना, मसूड़ों का सूजना, दांत का दर्द आदि सभी रोग मिट्टी से दांत धोने से अच्छे हो जाते हैं। पहले पहले दोनों समय मिट्टी से दांत मल्ना चाहिये जिसमें कमसे कम एक बार रात को सोने से पहले होना आवश्यक है। कुछ दिनों बाद एक बार मल्ने से ही काम चलेगा। दांत मलने की मिट्टी यथा सम्भव ताजी होनी चाहिये।

एकादश अध्याय

चिकित्सा में सावधानी

[१]

जिस प्रकार घरमें आग लगने पर,आग कैसा रूप धारण करने जा रहा है यह देखने के लिये ठहरने की आवश्यकता नहीं होती, ठीक उसी प्रकार शरीर में रोग उत्पन्न होने पर, रोग क्या रूप लेगा वह देखने के लिये ठहरना उचित नहीं। खासकर ज्वर और पेट के रोगों में कभी भी इन्तजारी करना ठीक नहीं। ज्वर की अवस्था में जबतक यह देखने के ठहरा जायेगा कि यह क्या रूप धारण करने जा रहा है, तबतक रोग का विष सिर, फुसफुस, हृदय आदि अंगों पर आक्रमण कर सकता है।

रोग के जरा भी मुश्किल होनेपर डाक्टर लोग पहले ही तुरन्त दवाई नहीं देते। हो सकता है कि वे पहले खून की जाँच करें। इसके बाद मल और मूत्र की परीक्षा होती है। कभी कभी थूक की परीक्षा भी आवस्यक हो जाती है। पर किसी रोगी के खून आदि की परीक्षा करके भी विभिन्न डाक्टर अलग अलग राय देते हैं। इसके फलस्वरूप तीन-चार बार परीक्षा कराये बिना ठीक-ठीक रोग भी पहचाना नहीं जा पाता। कभी कभी तो दो-तीन बार एक्सरे से फोटो लेने की आवश्यकता पड़ती है। इस सब विशाल व्यापार के बाद यदि रोगी के पैसा और परमायु कुछ बची रहे, तभी दवा मिलती है।

यह बात नहीं की इन सब परीक्षाओं की आवस्यता ही नहीं है। किन्तु प्राकृतिक चिकित्सा में रोग का निर्णय करने के लिये ठहरने की अधिक आव-

श्यकता नहीं। शरीरमें जमा हुए विष या रोगके कीटाणुओंसे उत्पन्न विष अथवा दोनों ही शरीर में एकट्ठा होने के कारण शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिये रोग शुरू होते ही, बिना जरा भी देर के शरीर से उस विकार को दूर करने की चेष्टा करनी चाहिये। शरीर में दूषित पदार्थ का रहना ही रोग है। इस लिये शरीर से इस विकार को निकाल फेंकने की चेष्टा ही एक मात्र रोग का सच्चा इलाज है। इसे दूर करने मात्र से ही अधिकांश रोग आपसे आप अच्छे हो जाते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा में सदा रोगी के शरीर की चिकित्सा की जाती है, रोग की नहीं। किसी के दर्द होने पर हमलोग दवाईयों का प्रयोग करके उसे दबा सकते हैं। इससे दर्द मिटता है सही, पर रोगी अच्छा नहीं होता। रोगी शीघ्र ही और भी कड़े दर्द या किसी दूसरे रोग का शिकार होता है। परन्तु वाष्प स्नान, कटि-स्नान आदि से यदि शरीर निर्दोष कर लिया जाये, तो अधिकांश रोग आपसे आप अच्छे हो जायेंगे।

यदि संभव हो तो सभी रोगों में रोगी के समूचे शरीर की साधारण चिकित्सा (general treatment) कराना उचित है। क्योंकि रोग होने से ही मान लेना चाहिये, कि शरीर में विकार इकट्ठा हुआ है। रोग नया या पुराना हो और जिस किसी भी प्रकार से रोग का प्रकाश हुआ हो, रोग के होने के साथ ही, पेट साफ कराकर, पेशाब और पसीना उत्पन्न कराकर एवं विभिन्न स्नानों द्वारा शरीर को साधारण चिकित्सा कराने के बाद रोग के विशेष प्रकाश पर ध्यान देना चाहिये। इस प्रकार रोग के शुरू में ही शरीर को साफ कर लेने से रोग किसी भी अवस्था में बढ़ने नहीं पायेगा, रोग आसानी से आराम होगा और एक बार अच्छा हो चुकने पर फिर जल्दी नये रोग होने की सम्भावना नहीं रहेगी। प्राकृतिक चिकित्सामें जब कि एक पैसे का भी खर्च नहीं, तब रोग होते ही इस प्रकार से सारे शरीर की

साधारण चिकित्सा आसानी से चल सकती है। साधारणतया सार्वदैहिक चिकित्सा का अर्थ मालिस, पेट का गरम ठण्डा, डूस, मृदु ष्टीमवाथ और ठण्डी मालिश है।

तौ भी सभी रोगों में सारे शरीर को चिकित्सा करने की आवश्यकता नहीं होती। वहुतेरे रोगों में केवल आक्रान्त अंग विशेष की चिकित्सा करने से ही काम चल सकता है।

प्रकृति शरीर के विभिन्न भागों में संचित विकार को विभिन्न उपायों से वाहर निकाल देती है। इसी कारण सभी चिकित्सा का उद्देश्य यद्यपि केवल विकार को देह से निकालना है, तौ भी प्रकृति जिस प्रकार से रोग प्रकाश करती है, उस पर भी नजर रख कर विभिन्न पद्धति से विकार को दूर करने की चेष्टा करनी उचित है।

रोगी के शरीर की अवस्था पर भी विशेष रूप से विचार करना आवश्यक होता है। किसी भी प्रक्रिया के शुरू करने के पहले यह जान लेना चाहिये कि रोगी की मौजूदा सूरत में यह प्रक्रिया चल सकती है या नहीं और रोगी उसे बर्दास्त कर सकता है या नहीं। जिस प्रकार यदि ज्वर एक सौ तीन चार या पाँच डिग्री हो, तो कभी भी ष्टीमवाथ देना उचित नहीं। उसी प्रकार यदि शरीर को गर्मी ९५ डिग्री से कम हो तो हिपवाथ देना ठीक नहीं।

इसी कारण रोग के विभिन्न प्रकाश तथा विभिन्न अवस्था में लपेट, वैंडेज, जलपट्टी आदि रोग के विष खींच लेने की विभिन्न पद्धतियों का अनुसरण करना चाहिये।

[२]

किन्तु वाथ (स्नान) आदि हमेशा ठीक पद्धति से लेना आवश्यक होता है। ऐसा नहीं करने से लाभ के वदले हानि होने की सम्भावना रहती है।

कटिस्नान या पूर्ण-स्नान आदि सभी प्रकार के ठण्डे स्नान (cold bath) करते समय ही इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि शरीर का चमड़ा गर्म है या नहीं। यदि शरीर गर्म न हो, तब किसी भी हालत में शीतल स्नान नहीं करना चाहिये। इस अवस्था में स्नान कर के बहुतों ने जिन्दगी भर के लिये अपने शरीर को नष्ट कर दिया है। इसी कारण शरीर जब गरम रहे, शरीर का प्रत्येक रक्त बिन्दु ठण्डे पानी के स्पर्श को चाह रहा हो, उस समय शीतल जल में स्नान करने से बहुत ही लाभ होता है। शरीर गर्म हो, तब यदि ठण्डे पानी से स्नान किया जाये तो किसी भी प्रकार का अनिष्ट नहीं होता। यहां तक कि शरीर से तर-तर पसीना चू रहा हो, तो भी नुकसान नहीं होता। फिनलैंड के रहने वाले अपने पसीना गृहों (sweat houses) से निकल कर बर्फपर लोट जाते हैं; पर इससे उनका कुछ भी अनिष्ट नहीं होता (J. H. Kellogg, M.D.—The Home-book of Modern Medicine, P. 634)।

यदि स्नान या हिपबाथ आदि शीतल स्नान करते समय शरीर गर्म न रहे, तब शरीर को अच्छी तरह गरम कर लेने के बाद स्नान करना चाहिये। इसीलिये स्वस्थ शरीरमें थोड़ी देरतक हल्की कसरत कर शरीर गरम करनेके बाद स्नान किया जा सकता है। कमजोर रोगी तीन से छः मिनट तक बाष्प स्नान के बाद यदि ठण्डे स्नान ले तो बहुत ही लाभ होता है। या रोगी के सिर को छाया में रख कर अथवा सिर पर भींगी तौलिया रख कर ५ से १५ मिनट तक धूप खिलाकर शरीर में गर्मी पहुंचाने के बाद स्नान कराया जा सकता है। पर जिस समय धूप न हो, तो सारे शरीर को अच्छी तरह मालिश कर के गर्मी पहुंचाने के बाद बाथ लेना चाहिये। यदि रोगी बिस्तर पर पड़ा रहनेलायक हो गया हो, तो मेरुदण्ड या पेडू में १५ मिनट तक सेंक देनेके बाद बाथ देना जरूरी है। स्वस्थ अवस्था में सबेरे टहल कर आते ही शरीर

को गरम रहते ही सवेरे का स्नान करना सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था है (J. P. Muller—My System, p. 18 । शरीर को एक बार गरम कर के इसके ठण्डा होने के पहले ही रोगी को हमेशा बाथ देना चाहिये। जब शरीर स्वभावतः ही उत्तप्त हो तब किसी प्रकार से इसे गरम करने की आवश्यकता नहीं और स्वस्थ व्यक्ति तो शरीर के ठण्डा न रहने मात्र से ही किसी प्रकार का स्नान कर सकता है। बुखार की हालत में भी रोगी के शरीर को गर्मी पहुंचाने की आवश्यकता नहीं रहती। क्योंकि उसके शरीर में उस समय काफी गर्मी रहती है। किन्तु ज्वर की शान्त अवस्था में यानी जब की रोगी को कँप कंपी और जड़ैया आयी हो, उस समय उसे हिपबाथ या पूर्ण-स्नान आदि ठण्डे स्नान की व्यवस्था हरगिज नहीं करनी चाहिये।

स्नान के पहले जिस प्रकार शरीर को गरम कर लेना आवश्यक होता है, ठीक उसी प्रकार स्नान करने के बाद तुरत ही फिर ठण्डे चमड़े में गरमी वापिस कर लेनी आवश्यक है। स्नान के बाद कभी भी शरीर को ठण्डी अवस्था में रहने देना उचित नहीं। अनेकों बार स्नान के बाद रोगी पर स्नान के बुरे फल होनेका मात्र यही कारण है। इसी कारण स्नान के बाद तुरत ही सूखी तौलिया या साफ कपड़े से रोगी के शरीर को खूब अच्छी तरह पोंछ डालना चाहिये। इसके बाद ही उसके सारे शरीर को रगड़ रगड़ कर गर्म कर लेना विशेष आवश्यक है। फिर रोगी को बिस्तरे पर खुला गर्दन तक कम्बल से ढक कर गर्मी वापिस कर लेनी चाहिये। यदि स्नान के बाद रोगी को कंपन या शीत पैदा हो, तो रोगी को एक ग्लास गर्म पानी पिलाना चाहिये। किन्तु रोगी को कभी इतना स्नान कराना ही नहीं चाहिये जिससे उसे कंपन आ जावे। इससे लाभ के बदले हानि ही हो सकती है।

किन्तु रोगी का शरीर बहुत ज्यादा या काफी देर तक गर्म करना भी उचित नहीं । ऐसा करने से स्नान का सारा फल जाता रहता है । मोटे तौर पर हिपबाथ, पूर्ण स्नान आदि सभी प्रकार के ठंडस्नानों (cold bath) के बाद ही चमड़े की गर्मी वापस कर लेनी चाहिये। अतः आवश्यकता से न तो अधिक और न कम गर्मी पहुंचानी चाहिये ।

स्नान के पहले और पीछे इस प्रकार शरीर को गर्म कर लेने से शरीर का रक्त बार बार चमड़े में आता और बार बार भीतर चला जाता है। शरीर का रक्त इस प्रकार शरीर में चक्कर लगा सारे शरीर में देह गठन की सामग्री और पुष्टि पहुंचा देता है। और भीतर से वापिस आते समय वहां के दूपित पदार्थ को लाकर शरीर के नालों की राह बाहर निकाल देता है। खून के इस प्रकार आने जाने से भीतर के यंत्रोंके भीतर भी एक प्रकारसे पम्पका सा काम होता है । इसी प्रकार उचित विधि से स्नान करने से सभी यन्त्रों में काफी उत्तेजना प्राप्त होती है।

फिर गर्म स्नान के बाद कभी भी पसीने की हालत में रोगी को नहीं छोड़ना चाहिये। इस अवस्था में गर्मी की प्रतिक्रिया के फल स्वरूप रोगी को ठंड लग जाने का भय रहता है। इसी कारण स्टीमबाथ आदि के बाद शीतल घर्षण आदि से हमेशा रोगी को शीतल कर लेना चाहिये।

सभी प्रकार के गर्म स्नानों में गर्मी को धीरे धीरे बढ़ा कर अन्तमें क्रमशः कम करना आवश्यक होता है। ऐसा करने से सर्दी लगने का डर नहीं रहता।

जब कभी भी कोई बाथ देना हो, तो इस बात का ख्याल रहना चाहिये कि उसकी गर्मी उतनी ही हो कि रोगी को प्रिय लगे। हर चिकित्सा

ही रोगी को इस प्रकार की होनी चाहिये कि उसे वह कष्टकर न मालूम होने पावे। हर प्रक्रिया से उसे आराम मिले और वह कब चंगा हो जायेगा इसे वह स्वयं निश्चय न कर सके। यदि ऐसा हो तभी समझना चाहिये कि चिकित्सा ठीक ठीक हुई है।

इस बात को कभी भी नहीं भूलना चाहिये कि, काफी गर्म स्नान केवल भोजन के तीन घंटे पहले या पांच घंटे बाद ही लेना होता है। इस नियम की कभी भी अवहेलना नहीं होनी चाहिये। किन्तु आंशिकबाथ जैसे, सेंक, ढकी पट्टी (heating compress) आदि भोजन से घंटों भर पहले या पीछे ली जा सकती है। हल्का सेंक या पेड़ू को छोड़कर अन्य स्थानों का सेंक हल्के भोजन के कुछ समय ही बाद लेने से भी कोई नुकसान नहीं होता। ठंडा स्नान भी भोजन के बाद तीन घंटे के अन्दर नहीं करना चाहिये तथा ऐसे स्नान में चमड़े में गर्मी आ जाने के पहले भोजन भी नहीं करना उचित है।

ये सब बाथ ऐसे स्थान में बैठकर लेने चाहिये कि, जहां हवा का झोंका नहीं आता हो। रोगी के शरीर में कभी भी हवा का झोंका लगना ठीक नहीं। पर दरवाजे या खिड़कियों को भी एक दम बन्द करके स्नान नहीं करना चाहिये। घर के एक दो जंगले स्नान करते समय खुले रहने चाहिये।

अत्यन्त बच्चा, वृद्ध, या कमजोर रोगी को कभी भी अधिक गर्म या अधिक शीतल चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। ऐसे रोगी को वाष्प स्नान के बदले उष्णपाद स्नान, तथा हिपबाथ के स्थान पर भींगी कमरपट्टी देनी उचित है।

चाहे किसी भी प्रकार का बाथ क्यों न लिया जाये, पानी जितना सम्भव हो स्वच्छ होना चाहिये। एक बार काम में लाये हुए पानी को फिर हरगिज काम में नहीं लाना चाहिये।

कपड़े लत्ते साबुन से खूब धोकर या गरम पानी में खौलाकर फिर दुबारा काम में लाना चाहिये। इसी कारण रोगी के लिये कपड़ों के दो तीन जोड़े रखने चाहिये। फलालैन को कभी भी गरम पानी में खौलाना नहीं होता। एक आदमी का व्यवहार किया हुआ फलालैन यदि दूसरे के काम में लाना हो, तो उसे पहले २४ घंटे पानी में भिगोकर रीठा आदि से खूब धोकर फिर काम में लाया जा सकता है।

ठीक पद्धति से यदि चिकित्सा की जाये, तो प्राकृतिक चिकित्सा से रोगी को कभी अनिष्ट नहीं होता। यदि पैक या बाथ आदि कभी रोगी को असुविधाजनक मालूम हों, तो तुरत उसे फिलहाल के लिये बन्द रखना उचित है (F. E. Bilz—The Natural method of Healing., P. 97)।

एक ही साथ अनेकों प्रक्रिया शुरू करके रोगी को चंचल करना भी ठीक नहीं। एक प्रक्रिया का प्रभाव समाप्त होने के बाद रोगी को कुछ मौका देने के पीछे दूसरा कुछ करना उचित है। साधारण तौर पर दिन में दो-तीन प्रयोग ही काफी होते हैं। मनमें यह सदा याद रखना चाहिये कि प्रकृति की क्षमता से अधिक काम नहीं कराया जा सकता।

परन्तु पुराने रोगियोंको सारे दिन परेशान न करके शाम या सवेरे केवल एक समय रोगी को मालिश, पेट का गरम ठंडा और ड्रूस वगैरह का प्रयोग एक साथ ही बारी बारी से करके देह की साधारण चिकित्सा करनी चाहिये। साधारणतया इनमें करीब दो घंटे समय लगते हैं।

पहले छोटे-छोटे उपायों से रोग दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि सहज उपाय से रोग न छूटे तभी बड़े उपायों का अवलम्बन करना उचित है।

[३]

बहुधा रोगी की कितनी ही छिपी-सी बीमारियाँ प्राकृतिक चिकित्सा के समय प्रकट होने लगती हैं। पर, इससे डरना नहीं चाहिये और नियमानुसार प्राकृतिक चिकित्सा जारी रखनी चाहिये। इससे शीघ्रही सभी रोग अपने अपने लक्षण दिखा बाहर हो जायेंगे। इस चिकित्सासे जब रोगी की जीवनी शक्ति काफी बढ़ जाती है तब शरीर के अन्दर छिपी व्याधियों को प्रकृति धीरे धीरे ढाहकर शरीर से बाहर बहा देती है। इस अवस्था विशेष को आरोग्य मूलक व्याधि (curative crisis) कहते हैं। ये सभी रोग अपना अपना रूप प्रकट मात्र करके धीरे से चलते बनते हैं। इसके बाद रोगी सम्पूर्ण रूप से स्वस्थ होता है।

बालीगंज में एक लड़के को निकसारी हुई। इसके बन्द हो जाने के बाद उसे आंव पड़ गया। उसके आंव की चिकित्सा करते समय, एक दिन देखा कि उसे फिर निकसारी उभड़ आई। निकसारी दो दिन तक रही, इसके बाद आमाशय भी गायब हो गया और निकसारी भी। और एक समय एक भद्र पुरुष दमे का इलाज कराने आये। इन्हें पहले सुजाक हुआ था। विभिन्न दवाइयां से सुजाक का श्राव बन्द हो गया पर तुरत ही दम्मे का प्रकोप हुआ। करीब एक महीना चिकित्सा कराने के बाद फिर उनका सुजाक उभड़ आया। करीब सात दिनों तक इसका श्राव जारी रहा। इसके बाद गनोरिया भी चली गयी और दमा भी अन्तर्हित हो गया।

किसी किसी का कहना है कि प्राकृतिक चिकित्सा करते समय रोगी की हालत कभी कभी खूब खराब हो उठती है। चिकित्सा के समय रोगी को ज्वर, दस्त और कै आदि के बढ़ने अथवा रोगी के जीवन पर संकट उपस्थित होने पर, वे लोग कहते हैं यह भले के लिये ही हुआ है। यह आरोग्य मूलक संकट काल (curative crisis) मात्र है। इस संकट काल के पार हो जाने पर रोगी चंगा हो जायेगा। किन्तु बहुत दिनों के अनुभव के

आधार पर मेरी यह धारणा दृढ़ होगयी है कि ठीक प्रकार से चिकित्सा करने पर यह संकटकाल किसी भी अवस्थामें उपस्थित ही नहीं हो सकता। चिकित्सा के फलस्वरूप शरीर में जमा हुआ दूषित पदार्थ जिस प्रकार बाहर होता जायेगा, रोग के विभिन्न उपसर्ग उसी अंशमें घटते जायेंगे तथा रोगी की अवस्था दिन पर दिन उसी क्रमसे सुधरने लगेगी। असल में जब क्रमशः रोगी अच्छा होने लगे तभी समझना चाहिये कि रोगी की चिकित्सा उचित ढंगसे हो रही है।

पर प्राकृतिक चिकित्सा कराते समय कभी कभी थोड़ी सी कमजोरी आ जाती है। शरीर में जमा हुआ दूषित पदार्थ शरीर से बाहर निकलने के पहले रक्त प्रवाह में उतर आता है और इसके बाद मल मूत्र के साथ बाहर हो जाता है। रक्त श्रोत में इस विष के आजाने के कारण यह कमजोरी आती है। इसके बाद शरीर जितना ही शुद्ध होता जाता है इसमें शक्ति भी उसी अंश में बढ़ती जाती है। किन्तु रोगियों की कमजोरी आने पर भी कभी इतनी कमजोरी नहीं आती कि रोगी के साधारण काम काज में किसी प्रकार की बाधा पड़े। तौभी जिन्हें कमजोरी आ रही हो, उन्हें समझना चाहिये कि चिकित्सा की उन्हें ही अधिक आवश्यकता है।

दवा खाने को ही अधिकांश लोग चिकित्सा समझते हैं। पर सुश्रुषा ही रोगकी प्रधान चिकित्सा है। रोग की सुश्रुषा अच्छी होने पर रोग सहज ही में अच्छा हो जाता है।

हां,यह भी देखना चाहिये, रोगी भी फांकी देकर रोगसे आराम होना तो नहीं चाहता। प्रकृति के नियमों की अवहेलना करने ही से रोग होते हैं। उपवास वगैरह से उस पाप का प्रायश्चित करने पर ही रोग से छुटकारा मिलता है। दवा खाकर, ओझा गुणी को बुला कर और तंत्र मंत्र आदिसे प्रकृति के शासन को कभी धोखा-धड़ी नहीं दी जा सकती।

———

द्वादश अध्याय

भोजन और स्वास्थ्य

हमारा शरीर भोजन का रुपान्तरित रुप मात्र है। हमलोग जो कुछ भोजन करते हैं, वही नाना रूपों में बदलकर हमारे शरीर का गठन करता है।

हमारे शरीर का गठन विभिन्न उपादानों से हुआ है। जिन रासायनिक उपादानों से हमारा शरीर निर्मित है, उन सभी उपादानों को संग्रह करके हम शरीर के गठन में सहायता पहुँचाते हैं और शरीर के क्षय को रोक सकते है। इन उपादानों में आमिष proteiu), शर्करा (carbohydrate), तैलीय पदार्थ (fat), खनिज लवण (mineral salts), खाद्य प्राण (विटामिन) और जल प्रधान हैं। इन्हीं सब खाद्य पदार्थों को घुमा फिरा कर खानेसे ही शरीर गठन के उपयुक्त और सर्व गुण संयुक्त भोजन (balanced food) होता है।

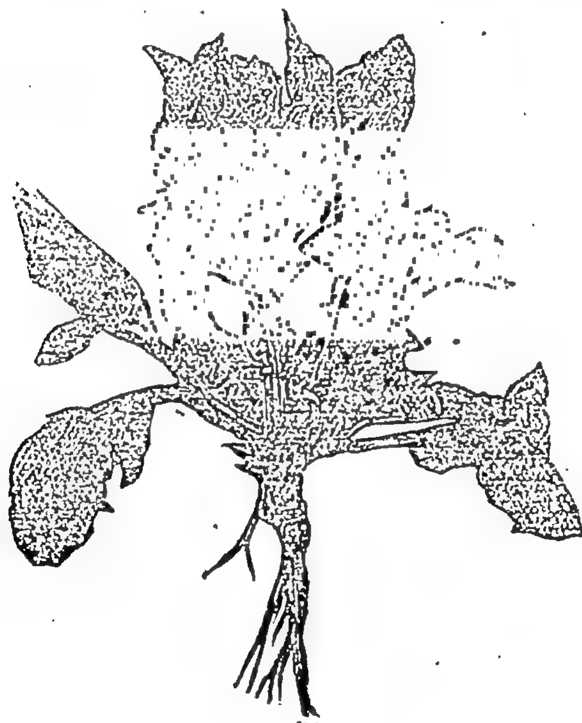
खाद्यमें प्रोटीन या आमिष जातीय खाद्य ही प्रधान है। क्योंकि मांस जाति के उपादानों से शरीरका प्रायः आधा भाग गठित हुआ है। दूध, छेना, पनीर (cheese', मछली, मांस, सोमाबीन, चीना बादाम, दाल, मटर आदि मांस जातीय के प्रधान खाद्य हैं। रोज जो प्रोटीन की आवश्यकता होती है, उसमें एक तिहाई प्राणियों से उत्पन्न और दो तिहाई उद्भिज होना चाहिये। प्रोटीन जाति के भोजन में मछली और मांसका सबसे अधिक प्रचार है। मांस और मछली खूब पुष्टि कर भोजन है किन्तु यह आंतो में जाकर जल्दी सड़ने लगते हैं और मांस से बहुत अधिक कोष्टबद्धता आती है। इसी कारण रोगी के लिये

प्रोटीन का चुनाव करते समय दूध, छेना और दही पर ही जोर देना चाहिये। इनका प्रोटीन मांस मछली के प्रोटीन से किसी भी अंशमें खराब नहीं। मांस मछली खाना होतो उसके साथ हमेशा काफी मात्रा में सलाद या हरी साग सब्जी जरूर खाना चाहिये। ऐसा करने से मांस-मछली की खराबियां काफी मात्रामें कम हो जाती हैं। हमलोगों को रोजाना कमसे कम एक छटाक प्रोटीन जातीय भोजन करना चाहिये। पर प्रोटीन जातिके खाद्य को एक ही दिन खूब अधिक मात्रा में कभी नहीं खाना चाहिये। इससे लाभके बदले हानि ही अधिक होती है।

शर्करा जातीय खाद्य कहनेसे चीनी, गुड़ और मधुआदि शर्करा sugar) और भात-रोटी, मूढ़ी चूड़ा और जव आदि स्वेतसार (starch) जातिके खाद्य समझे जाते हैं। इनका प्रधान धर्म है शरीर में गर्मी और शक्ति उत्पन्न करना। शर्करा जातीय खाद्य ही मानव जाति का प्रधान भोजन है। रोज कमसे कम छः छटाक सर्करा हमें ग्रहण करना चाहिये। किन्तु अत्यधिक मात्रा में या बार बार सर्करा जातीय भोजन कभी भी नहीं करना चाहिये। इससे मधुमेह आदि रोग उत्पन्न हो सकते हैं। चीनी का व्यवहार भी काफी कम मात्रा में होना चाहिये। खूब साफ चीनी में विटामिन आदि उपयोगी तत्त्व बिल्कुल नहीं रहता। इसी कारण चीनी के बदले में हमेशा गुड़का उपयोग अच्छा है। किन्तु अत्यधिक मात्रा में चीनी या गुड़ खाने से ही अम्ल, मधुमेह और पाकस्थली के घाव आदि तरह तरहकी बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं। इसी कारण चीनी और गुड़ के बदले काफी मात्रामें खजूर, शहद और किसमिस का व्यवहार करना चाहिये। ये पदार्थ तरह तरह के विटामिन और खनिज नमक से विशेष परिपूर्ण हैं।

तैलीय या चर्बी जाति के खाद्य में घी, मक्खन, तेल, चर्बी नारियल, बादाम पनीर (ceese) मलाई और अण्डे का पीला अंश आदि की गिनती होती

है। चर्बी जाति के खाद्य से गर्मी और शक्ति उत्पन्न होती है। यदि यथेष्ट परिमाण में यह रोज खाया जाये तो शरीर के अन्दर चर्बी की वृद्धि होती है और स्नायु पेशियां सुगठित होती है। तैलीय खाद्यमें मक्खन ही सर्वश्रेष्ट है। हालांकि घी का प्रचार सबसे अधिक है। पर घी से अत्यन्त कोष्टबद्धता आती है। इसी कारण जिन लोगों को



पालक

कब्जियत को शिकायत रहती हो उन्हें यथा सम्भव घी बन्द करके उसके स्थान पर मक्खन का व्यवहार करना चाहिये। तेल का भी प्रधान दोष यही है कि किसी भी उद्भिज तेलमें विटामिन नहीं रहता। किन्तु विभिन्न

प्रकारसे तेल खाकर उसके साथ, पालक, धनियाँको पत्ती, ओलगोभी आदि विटामिन से परिपूर्ण खाद्य ग्रहण करने से किसी भी कीमती चर्बी जातीय भोजन की बराबरी की जा सकती है (J. H. Kellogg, M. D.—The New Dietetics, p. 142)। किन्तु चर्बी जाति के खाद्य को अधिक मात्रामें खाने के लिये लिवर (जगर) का ठीक रहना आवश्यक है। लीवर के ठीक न रहने की हालत में यदि यथेष्ठ तैलीय पदार्थ खाये जायं तो उनसे फायदा तो



ओलगोभी

होगा ही नहीं उल्टे अधिक हानि ही होगी। पर चर्बी जाति के खाद्य का खाना कोई बाध्य नहीं। यदि लिवर खराब हो तो आलू और मीठे फल आदि निर्दोष शर्करा प्रधान खाद्य यथेष्ठ मात्रा में खाकर इस प्रकार के भोजन की कमी पूर्ण रूपसे पूरी की जा सकती है।

हमारे शरीरमें केल्शियम, फासफोरस, लोहा और आयोडिन आदि तरह तरह के लवण हैं। रसायनिक विज्ञान की भाषामें इन्हें घातक लवण (mineral salts) कहते हैं। हमारे शरीर में इस घातक लवण का वजन शरीर के वजन का चतुर्थांश है। शरीर में नये रक्त के निर्माण और नये तंतुके गठन तथा हृदय और स्नायुओं से परिचालन में इस घातक लवणका होना नितांत आवश्यक है। यह हमारे शरीरके लिये इस प्रकार आवश्यक है कि केवल यदि उसे वाद देकर अन्य सभी कुछ खाया जाये तो भी तीस दिनसे अधिक जीना दूभर हो जाये (William Edward Fitch, M.D.—Diatotherapy, Voll, p.255)। अथवा विना खाये आदमी जितने दिनोंमें उपवास से मरेगा उससे कहीं जल्दी उसकी मृत्यु हो जायेगी यदि उसे विल्कुल घातक लवण रहित भोजन दिया जाये (R. N. Chopra, M. D.—M. R. C. P, A Hand Book of Tropical Therapeutics, P. 156)। कुछ कुत्तों को इस घातक लवणसे रहित भोजन खिला कर देखा गया है कि २६ से लेकर ३६ दिनके भीतर वे मर गये है) Julius Frieden wald,. M. D.—Diet in Health and Disease, P. 160)। साधारणतया दूध, दूध से वने अन्यान्य पदार्थ वादाम, अंजीर (fig), अखरोट, किसमिस, गीमाका साग, पोय का साग, पालक, विभिन्न प्रकार के सीम जाति के वीज, पपीता, फूल गोभी, भिंडी, करैला, कोंपल, वैगन, कुम्हड़ा, तरोई, आलू, मुर्गी के अंडे का पीले भाग और वकरे तथा मछली की यकृत से प्रायः सभी आवश्यक धातव लवण पाया जा सकता है। खाद्य पदार्थों के चुनाव में हमेशा इन चीजों पर ध्यान रखना चाहिये।

किन्तु केवल आमिष, सर्करा और लवण जाति के पदार्थों से ही जीवन धारण नहीं रह सकता। इनके साथ यदि विटामिन रहे तभी ये शरीर के काम आ सकते हैं। अन्यथा नहीं। खाद्य पदार्थों में विटामिन का

ठीक वही काम है जो इंजन के चलाने में तेल (पेट्रोल) का है। लाख रुपया खर्च करके हम भले ही एक इंजन खरीद लें किन्तु उसमें यदि तेल न दिया जाये, तो वह चल नहीं सकती। खाद्य पदार्थों में विटामिन ठीक वैसा ही है। हो सकता है कि विटामिन की मुल्य बहुत ही कम होती रहे पर भोजन में वही प्राण है। इसी कारण विटामिन को खाद्य प्राण कहते हैं। बिना विटामिन के कोई भी भोजन मुर्दा है।

बारी बारी से बहुत से चुहों को विटामिन रहित मांस आदि सभी प्रकार के भोजन खिलाकर देखा गया है कि खूब अच्छी तरह खाना खाकर भी क्रमशः सूखते गये और कुछ दिनों बाद मरते गये। शहर के लोगों के शरीर जो शीघ्र अच्छा नहीं होता उसका एक प्रधान कारण यही है।

विटामिन के ए, बी, सी, डी, ई, एफ् आदि नाना भेद हैं। ये विभिन्न प्रकार से शरीर के लिये उपयोगी हैं। शरीर की पुष्टि के लिये, हड्डियों के निर्माण, बच्चोंके दांत गठन, भूख बढ़ाने, पाकस्थली को सतेज बनाने तथा निरोग दीर्घ जीवन प्राप्ति के लिये ये निहायत जरूरी हैं। रोग निवारण करने की क्षमतामें वृद्धि कर ये विभिन्न रोगों के आक्रमण से शरीर की रक्षा करते हैं।

इसी कारण जब खाद्य पदार्थ में आवश्यक विटामिन नहीं रहता, तब शरीर में एक प्रकार की विशृंखलता आ जाती है, शरीर में तरह तरह के दूषित पदार्थ इकट्ठे होने लगते हैं और इसके परिणाम स्वरूप विभिन्न प्रकार के रोगों की सृष्टि होने लगती है।

इसी प्रकार आवश्यक विटामिन की कमी के कारण, आंख की बीमारियां (Xerophthalmia) स्वास नली और फुस फुस की पीड़ा, बेरी बेरी, विकार युक्त सूजन (scurvy), रिकेट (ricket), स्त्रियों का बंध्यापन, मंदाग्नि, अजीर्ण, मुच मंच आदि की पीड़ा, रतौन्धी, रक्ताम्लता, मोतिया बिन्दु आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

अनेकों वार यह देखा गया है, कि जिन विटामिन के अभाव में जो सब रोग होते हैं, उसे खिलाने से उस रोग से मुक्ति मिल जाती है और जिन लोगों को ये रोग होते है, वे इन रोगों से छुटकारा पाते हैं।

बेरी बेरी को पुरवी रोग भी कहते हैं। जिन देशों के लोग कल का छांटा हुआ चावल खाते हैं, उन्हीं को यह रोग होता है। सुदूर पूर्व जापान में बेरी बेरी खूब होता था। किन्तु कल के छांटे हुए चावल को छोड़ कर वे इस रोग से छुट्टी पा गये हैं।

एक समय जापान का एक सरकारी जहाज पृथ्वी की प्रदक्षिण को निकला। इस जहाज में ३७६ नाविक थे। पृथ्वी प्रदक्षिण करके लौटते समय उन में से १६० आदमियों को वेरी वेरी रोग हुआ और उनमें २५ मर गये। यदि नाविकों की इसी प्रकार मृत्यु होती रहेगी, तो जापान की सामरिक शक्ति कितनी क्षीण हो जायगी, यह सोचकर जापान चिन्तित हो उठा और अनुसंधान के लिये अनेकों डाक्टर नियुक्त किये गये। इनमेंसे एक डाक्टर ने देखा कि, उसकी नौसेना के सभी सैनिकोंकी सारी व्यवस्था यूरोप की नौसेना जैसी ही है, केवल अन्तर इतना ही है कि जापानी नौसैनिक कलका छांटा हुआ चावल खाते हैं। तब उन्होंने जिस मार्ग मे पहला सरकारी जहाज गया था, उतने ही आदमियोंको भूसीके नीचे के लाल अंश वाले कण सहित चावल देकर पृथ्वी की परिक्रमा को दुवारा भेजा। जब वे इस वार वापिस लौटे, तो देखा गया कि एक भी नाविक की मृत्यु नहीं हुई और न वेरी वेरी की वीमारी ही किसी को हुई।

इसके बाद जापान के जेलखानों में कम छांटा चावल चालू करके देखा गया कि, जहां पहले साल मृत्यु सख्या ७३ थी, वहां इस व्यवस्था के बाद वह शून्य हो गयी।

अमेरिकन सरकारने भी फिलीपाईन में इसी व्यवस्था का अवलम्बन करके वहां की सेनासे बेरी बेरी की बीमारी को मार भगाया है (Leslie J. Harris, D. Sc.—Vitamines, P. 49-51) ।

जिससे विभिन्न विटामिनोंके अभाव में शरीरमें तरह तरह के रोग न होने पावें, हरेक आदमी को चाहिये कि वह काफी मात्रामें धनियेकी पत्ती, पान, चौराई, पालकी, लेटुस, तरह तरह की दाल, सोयाबीन, मटर की छेमी, गेहूँ, बैंगन, केला, टमाटर, कमला नीम्बू, आंवला, खजूर, दूध, मछली और जानवरों का लिवर तथा कम छांटे चावल का मांड़ सहित भात खाना आवश्यक है। किन्तु जिस प्रकार हम लोग भोजन बनाते हैं, इससे बहुधा विटामिन का अधिकांश नष्ट हो जाता है। भात बनाकर मांड़ फेंक देना एक बहुत बड़ा अपराध है। इससे न केवल आवश्यक विटामिन बल्कि साग के साथ बहुत कीमती धातक लवण बाहर चला जाता है। आज भी हमेशा चोकर समेत ही खाना उचित है। यह विभिन्न प्रकारके धातक लवण और खाद्य प्राण से समृद्ध रहता है। किन्तु सफेद मैदे में चोकर का लाभकारी अंश ही बाद दे दिया जाता है। इसी कारण चक्की का पीसा आटा ही काममें लाना चाहिये। ठीक इन्हीं कारणोंसे बहुत साफ की हुई चीनी आदि सभी प्रकार के खाद्य (refined food) जहां तक संभव हो त्याग करना उचित है।

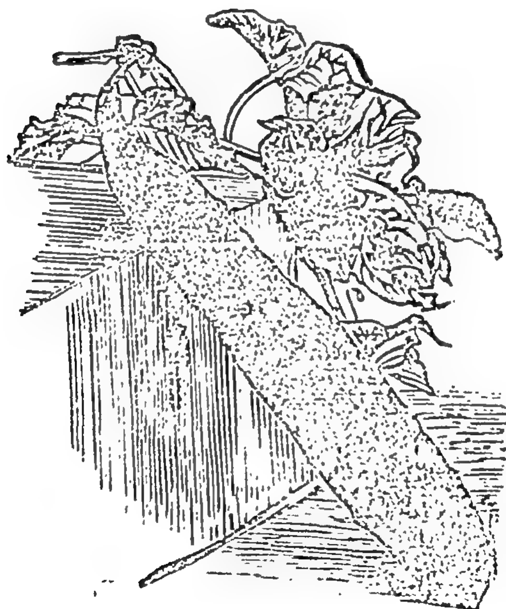
[२]

खाद्य के चुनाव में और भी कई बातों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। इनमें छिल्के वाले पदार्थ (cellulese) विशेष उपयोगी हैं। खाद्यमें यदि काफी मात्रामें छिल्केदार पदार्थ रहें तो कोष्ट बड़ी आसानीसे साफ होता है। इसी कारण यद्यपि खाद्य की दृष्टि से इनका कुछ मूल्य नहीं होने पर भी स्वास्थ्य रक्षा के लिये ये परमावश्यक हैं। छिल्केदार

पदार्थ हमें फलों एवं शाक सब्जी में प्राप्त होते हैं। किन्तु प्रायः फल और शाक सब्जी से इनका रस चूसकर हम सीठी बाहर फेंक देते हैं। जिससे हम इनके लाभ से वंचित रह जाते हैं। पर अच्छा है खूब चबाते चबाते जब जीभ इन्हें जाने को आज्ञा दे तब निगल जाना चाहिये। इससे यह पचने में जिस प्रकार हल्का हो जाता है उसी प्रकार अन्य दृष्टियों से भी यह लाभदायक बन जाता है। सेव, अंगूर या अमरुद के छिलके को तो कभी भी नहीं फेंकना चाहिये। बल्कि इन्हें चबाते चबाते भीतर के मीठे भाग के साथ ही निगल जाना चाहिये। इसी प्रकार आलू, कुम्हड़ा, परोर, बैंगन आदि के छिलके को भी ग्रहण किया जा सकता है। दाल भी जब पकायी जाये तो साबित छिलके समेत पकाना अच्छा होता है। इन छिलकों को खूब चबाकर साफ करके खानेसे पाखाने का परिमाण ज्यादा होता है। रोज काफी मात्रामें फल खानेसे छिलका जातीय पदार्थ के अभाव की पूर्ति हो जाती है। क्योंकि प्रायः सभी फल इस पदार्थ से परिपूर्ण रहते हैं।

प्रति दिन कुछ कच्चा खाद्य भी खाना आवश्यक है। इस प्रकार के भोजन को जीवित-खाद्य (live food) कहते हैं जीवित-खाद्य प्राण-शक्ति से भरे पूरे होते हैं। फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के खाद्योंको कच्ची अवस्था में खाकर हम उनके भीतर की इस जीवनी-शक्ति को ही पाते हैं (William Howard Hay, M. D.-Weight control, P. 28। कच्ची अवस्था में खाद्यों के खाने से उनका सारे का सारा विटामिन हमें प्राप्त होता है। इसके अलावे प्रकृतिने प्रत्येक वस्तुमें जिन उपादानों को जिस अनुपात और जिस भाव से मिलाकर रक्खा है, कच्चा ही उसे खाकर हम प्रकृति के हाथ से ही, उसे बिल्कुल अविकृत भावसे, प्राप्त करते हैं। इसी कारण आये दिन सारे सभ्य संसार में कच्ची शाक सब्जीका व्यंजन (Salad)

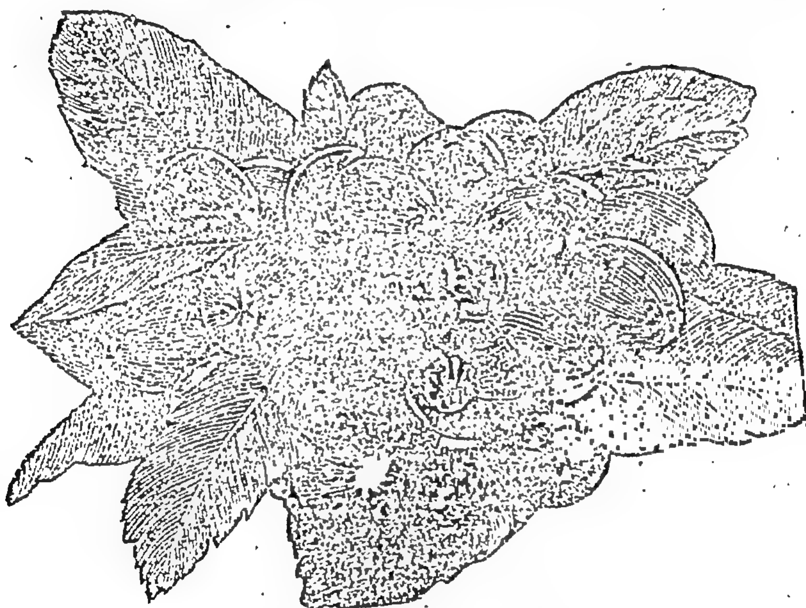
अत्यन्त जन प्रिय हो चला है। टमाटर, चुकन्दर, गाजर खीरा, पालकी, धनियें की पत्ती, पुदीना, अंकुरित मूंग, मूली, लेट्स की पत्ती और प्याज आदि छोटे छोटे टुकड़ों में काटकर और उनके साथ कुछ किशमिस, खजूर के टुकड़े, शहद और ओलिभ का तेल मिलाकर बहुत ही सुन्दर सलाद बनाया जा सकता है। थनतलेका कच्चा दूध भी यदि गरम अवस्था में ही पीया जाये, तो सबसे अधिक लाभदायक है (E. W. H. Cruichsbank,



खीरा

M.D., D.Sc, M.R.C.P.—Food and Physical Fitness, P. 54)। आर्य ऋषि लोग इसे धारोष्णदुग्ध कहा करते थे। यदि दूध ठंडा हो जाये तो एक गरम पानी के बर्तनमें दूधके ग्लासको रखकर गरम कर लिया जा सकता है।

इसके साथ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि खाद्यका ५२ प्रतिशत क्षार धर्मी (alcaline ash residue) होना चाहिये। खूनमें जब इस क्षारका हिस्सा अधिक नहीं रहता तो तरह तरह के रोगोंकी सृष्टि होती है। रक्त के इस क्षार सम्पत्ति (alcaline reserve) के बढ़ाने का सबसे सुगम उपाय काफी मात्रामें क्षार धर्मी खाद्य ग्रहण करना ही है। यह याद रखना परमावश्यक है कि विभिन्न सूखे एवं ताजे फल, शाक सब्जी,



प्रकृति का सब से बड़ा दान

दाल और सेम जाति के बीज और दूध ये ही प्रधान क्षारधर्मी खाद्य हैं। इनके अलावे भात, रोटी, मांस, मछली, अण्डे आदि सभी अम्लधर्मी (acid ash residue) खाद्य हैं। किन्तु यदि कोशिश की जाये तो रोज के भोजन को क्षार प्रधान बनाना मुश्किल नहीं है। भात रोटी की मात्रा कम करके यदि काफी आलू खाया जाये तो यह भोजन को क्षार

प्राधन बनाने का बड़ा सुगम साधन है। चावल के साथ काफी मात्रा में शाक सब्जी और दूध खाया जाये तो खाद्य आसानी से क्षार बहुल होजाता है। इसके अलावे सुबह शाम जलपान के समय केवल फल ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि फल ही प्रकृति का सब से बड़ा दान है। इसी समय सलाद भी काफी मात्रा में ग्रहण किया जा सकता है। फल खाते समय भी खट्टे जातिके फलों (citrus fruits) की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। नीबू, कमलानीम्बू और बतापी नीम्बू आदि इस श्रेणी में आते हैं। शरीर के अम्ल विष के नाश करने और शरीर में क्षार सम्पद को बढ़ाने में इनसे बढ़कर दूसरी कोई सामग्री नहीं। खट्टी जाति के फल मुँह में थोड़ी मात्रा में भी होने पर परिपाक में क्षार जातिय पदार्थ के रूप में बदल जाते हैं और खून के अम्ल विष को नष्ट कर देते हैं। लेकिन इमली आदि से ऐसा काम नहीं होता। उसे एकदम छोड़ देना चाहिये।

[३]

किन्तु खाद्य और पथ्य उसी अवस्था में लाभदायक होते हैं, जब प्रकृति के दावे की रक्षा करते हुए उन्हें ग्रहण किया जाय। जिस विधि से भोजन ग्रहण करने से यह प्राकृतिक ढंग से ग्रहण करने योग्य होगा, ठीक उसी प्रकार खाद्य ग्रहण करने से ही यह हमारे काम आसकता है।

भगवान ने हमारे मुँह में दाँत इसी लिये बना रखे हैं, कि हम चबाकर भोजन किया करें। बिना चबाये भोजन करने से किसी भी प्रकार का भोजन हमारे काम नहीं आता। हमारी सारी परिपाक क्रिया मात्र ही इस चबाने पर निर्भर है।

अपने दांतों को हम बाहरी यन्त्र कह सकते हैं। तौभी शरीरके भीतर की पाकस्थली और यकृत आदि यन्त्र के साथ मशीन की तरह उनका सम्बन्ध है।

जिस प्रकार विभिन्न वाद्य यन्त्र अलग अलग होने पर भी ताल में

मिलकर एक स्वर में वजते हैं, हमारे शरीर के विभिन्न यन्त्र भी उसी प्रकार परस्पर अलग अलग होकर भी आपस में एक संगीत रखकर जीवन का गान गाते है।

किसी खाद्य पदार्थ के चवाने से मुख की लार-ग्रन्थियोंसे काफी मात्रा में लार आकर भोजन के साथ मिल जाती है। मुँह में लारके निकलते ही पाकस्थलीसे एक प्रकारका पाचक रस निकलकर खाये हुए पदार्थके साथ मिल जाता है। यही वारम्वार यकृत, क्लोम और छोटी अंतड़ी से रस खींच कर लाता है। इसी कारण हमारे मुँहसे ही परिपाक-क्रिया आरम्भ होती है।

इन्हीं पांच प्रकार के पाचक रसोंसे मिलकर खाद्य पदार्थ लेई की तरह वन जाता है और ये सभी इस खाद्य पदार्थ पर एक रसायनिक क्रिया उत्पन्न करते हैं। इसी से यह शरीर के ग्रहण योग्य वनता है। इस रसायनिक क्रिया के न होने से भोजन कितना ही कीमती क्यों न हो, वह शरीर के किसी भी काम नहीं आता। इसी कारण सभी खाद्य पदार्थ को चवाकर ही खाना चाहिये।

भोजन के सम्वन्ध में हमेशा यह व्यवस्था रहनी चाहिये कि प्रत्येक समय के भोजन का एक निश्चित समय रहे। रोज नियत समय पर खाने से पाचन रस काफी मात्रा में निकलता है। क्योंकि पाकस्थाली भी इस सम्वन्ध में एक प्रकार से अभ्यस्त हो जाती है। समय विता कर भोजन करने से भीतरी यन्त्रों से काफी मात्रा में पाचक रस नहीं निकलता और खाया हुआ पदार्थ अधिक समय तक पेटमें भार वना रहता है। फिर नियंत्रित समय पर भोजन न करने से ठीक समय पर पाखाना का वेग भी नहीं होता। इसी कारण भोजन के समय के वारे में वहुत ही सावधान रहने की आवश्यकता है। यदि हाथ में काफी काम भी पड़ा हो तौभी ठीक समय पर सभी को छोड़कर नियमित समय पर भोजन कर लेना कर्तव्य है।

प्रोटिन, तैलीय और शर्करा आदि विभिन्न जाति के खाद्य यथेष्ट परिमाण

में खाना उचित होने पर भी बहुत तरह के व्यंजन एक ही साथ कभी नहीं खाना चाहिये। इससे विरुद्ध भोजन के कारण स्वास्थ्य की हानि होती है। किन्तु दो-तीन तरह के कम व्यंजन होने पर भी उन्हें खूब तृप्त कर होना चाहिये।

एक ही प्रकार का भोजन भी रोज काफी दिनों तक नहीं खाना चाहिये। इससे भोजन के प्रति अरुचि आ जाती है। दाल और तरकारी तो रोज बदलनी चाहिये। नित्य नये नये व्यंजन खाने से भोजन के प्रति नित नई रुचि उत्पन्न होती है। इससे काफी पाचक रस निकलता है जिसके फलस्वरूप खाया हुआ भोजन आसानी से पच जाता है।

खाद्य पदार्थ के साथ यथा संभव जहां तक हो सके कम मसाले का प्रयोग करना चाहिये। मसाले के अन्दर शरीर के लिये पुष्टिकारक कुछ भी नहीं है। बहुधा अधिक मसाला डाल कर हम लोग भोजन को अत्यन्त दुष्पाच्य बना डालते हैं। इलायची, लौंग आदि गर्म मसाले शरीर के लिये अत्यन्त हानि कर हैं। विधवाओं के लिये यदि मछली खाना अपराध है, तो इलायची आदि गरम मसालों का सेवन, उससे कहीं गुरुतर अपराध है। मिर्चा आदि मसाले पाकस्थली में जलन पैदा करते हैं, और अधिक दिनों तक मसाला खाने से यकृत में जलन शुरू हो सकती है। पर भोजन को हर हालत में स्वादिष्ट बनाना ही चाहिये। अतः जो जितने ही कम मसाले के व्यवहार के साथ खाद्य को स्वादिष्ट कर सके वह पाकशास्त्र का उतना ही बड़ा पारदर्शी है।

कभी भी पेट भर कर नहीं खाना चाहिये। अधिक भोजन करने से खाया हुआ पदार्थ पेट में हिल डुल नहीं सकता और काफी देर तक पाकस्थली में रहने पर यह गर्म हो जाता है। अधिक दिनों तक ज्यादा भोजन करने से, पाकस्थली का संकुचित तथा प्रसारित होने की क्षमता जाती

रहती है, पाकस्थली से काफी रस नहीं निकलता, मंदाग्नि रोग उत्पन्न हो जाता है और पाकस्थली स्थायी रूप से बढ़ जाती है। जो जितना पचा सके, उसकी अपेक्षा उसे कम खाना चाहिये। किन्तु अधिक तो कभी भी नहीं खाना चाहिये। जितना हजम किया जा सके, उससे एक मुट्ठी भी अधिक भात खाने से शरीर के लिये वह विष के समान हो जाता है। इसी कारण कहा जाता है, "कम भात से दूना बल, अधिक भात से रसातल।"

यूरोप में भी कहा जाता है कि, हमारे भोजन का तिहाई हिस्सा हमे बचाता है और दो तिहाई डाक्टरों को बचा रखता है।

हमारे देश के ऋषि-मुनि लोग सारे दिन उपवास करके शाम को कन्द मूल आदि का आहार किया करते थे। उन्ही ने उपनिषदो की रचना की है। ग्रीस और रोम जब अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचा था, उस समय उस के सैनिक दिन रात में केवल एक बार शाम को भोजन किया करते थे। वे इतने भारी कवच और शस्त्रों का व्यवहार करके युद्ध किया करते थे कि आधुनिक युग के सैनिक उन्हें धारण करने की कल्पना भी नहीं कर सकते (Sir. William Howard Hay, M. D.- Health via food, P. 229)।

दिन की अपेक्षा रात में अपेक्षाकृत अधिक हल्का भोजन करना चाहिये। शाम के बाद ही भोजन करने से बहुत अच्छा होता है। ऐसा करने से सोने के पहले ही भोजन बिल्कुल हजम हो जाता है। नींद के समय यथासंभव पाकस्थली को खाली रखना चाहिये।

भोजन करने से ठीक पहले या पीछे सोना या कठिन शारीरिक मानसिक परिश्रम नहीं करना चाहिये। इससे पाचन शक्ति अत्यन्त क्षीण होती है।

भोजन के समय हमेशा मन प्रसन्न रखना चाहिये। एक्सरे की परिक्षा द्वारा देखा गया है कि प्रसन्न चित हो कर भोजन करने से खाद्य पदार्थ आसानी से पच जाता है ; पर उद्वेग या क्रोध पाचन क्रिया में प्रबल बाधा पहुंचाते हैं (H. C. Menkel, M. D-Eating for Health, P. 70)।

भोजन के सम्बन्ध में सुश्रुत ने कितनी ही महत्वपूर्ण बातें लिखी हैं। इतने वर्षों बाद वैज्ञानिकों की दृष्टि में भी ये बातें सर्व सम्मानित हैं। सुश्रुत ने कहा है, सुख कर आसन पर बैठ कर और शरीर को समान भाव से रख कर भोजन करना चाहिये। भूख न रहने पर कभी भी नहीं खाना चाहिये। जब भूख लगे तब नियमित समय पर हलका, स्निग्ध और ताजा भोजन मात्रानुसार करना चाहिये। कभी भी बहुत जल्दी-जल्दी भोजन नहीं करना चाहिये या घंटों बैठ कर भी खाना उचित नहीं। असमय में वेला बिता कर और कम या अधिक मात्रा में भोजन करना ठीक नहीं। मौके बे मौके शरीर भारी रहने पर भोजन करने से नाना प्रकार की बीमारियां आक्रमण करती हैं अथवा इससे मृत्यु तक हो सकती है। उच्छिष्ट, बासी, बेस्वाद ठंडा या फिर से गरम किया हुआ अन्न, खुब गर्म भोजन मत खाओ। भुक्त्वा राजवदासीत यावदन्न क्रमोगतः—आहार के बाद जब तक भोजन जनित क्लान्ति दूर न हो, तब तक राजा की तरह आसन पर बैठे रहो। सुत्र स्थानम्, ४६।५११—५२७)।

चरक ने भी भोजन के सम्बन्ध में बहुत ही काम की बातें बताई हैं। गीचरक में लिखा है—मात्राशीस्यात,—परिमित भोती बनो (सूत्र स्थानम्, ५।१)। बिना नहाये, बिना कपड़ा निकाले; हाथ पांव मुंह बिना धोये कभी भी भोजन मत करो। सूखा या बासी अन्न मत खाओ (पृ०, ८।१८)।

सुश्रुत और चरक के ये नियम भोजन के सम्बन्ध में पथ प्रदर्शक स्वरुप माने जा सकते हैं।

———

त्रयोदश अध्याय

हवा और आरोग्य

(१)

रक्त शुद्धि के लिये हम लोग बाजार से औषधियां लाकर खाते हैं। उनसे जितना उपकार होता है, अनेकों वार उससे कहीं अधिक नुकसान ही होता है।

किन्तु रक्त शुद्धि के लिये दवाइयों के शरण लेने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। भगवान ने शरीर के भीतर ऐसी व्यवस्था कर रक्खी है, कि उसके द्वारा हमारे शरीरमें लगातार रक्त शुद्ध होता रहता है। फुसफुस और हृदय, रक्तशुद्धि के प्रधान यन्त्र है।

हमारे फुसफुस दोनो छाती के भीतर विना द्वार की थैली की तरह स्थित हैं। इनका स्वास नली व गले को राह मुँह और नाक से होकर वाहर पृथ्वी के साथ सम्बन्ध है। हमारी श्वास नली छाती के ठीक बीच में से दो भागों में विभक्त हो जाती है। इसकी एक शाखा दाहिने फुसफुस को और दूसरी वायें फुसफुस को जाती है। ये दोनो अलग अलग फुसफुसों में जाकर फिर अत्यन्त छोटे-छोटे वायु की सृष्टि करती हैं। क्रमशः छोटा होते होते ये इतने क्षुद्र वायु कोषों के रूप में परिणित हो जाती हैं कि, हर एक पूर्ण वयस्क मनुष्य के फुसफुस में प्रायः ६ करोड़ वायुकोष होवें हैं।

फुसफुस जब भीतर हवा खींच लेता है, उस समय इसके करोड़ों वायु कोषों की एक ओर हवा होतो है और दूसरी ओर होता है खून। हवा के साथ फुसफुस जो आक्सिजन को खींचता है, इन्हीं सूक्ष्म पर्दा के

भीतर से खून उसे ग्रहण करता है और खून शरीर के विभिन्न यन्त्रों से जो जिस जहरीले कार्बोनिक एसिड को लाया होता है, उसे निश्वास के साथ बाहर कर देता है। फुसफुस के इस कार्य को शरीर में कार्बोनिक एसिड और आक्सिजन के अदला बदली का केन्द्र कहा जा सकता है।

हवा से लिया हुआ आक्सिजन फुसफुस से होकर हृदय में जाता है। हृदय उसे पम्प करके शरीर की धमनियों के भीतर से शरीर के सारे भाग में पहुंचाता है। जिस प्रकार बड़े बड़े शहरों में पम्प की सहायता से नल द्वारा पानी चारों तरफ पहुँचाया जाता है, हमारे शरीर में हृदय भी ठीक पम्प की ही तरह काम करता है। हृद्‌पिण्ड एक पेशीनुमा थैली की तरह यन्त्र विशेष है। दो फुसफुसों के बीचोंबीच छाती की हड्डियों के भीतर फैला हुआ अवस्थित है। हृदय से जिन नलों द्वारा रक्त शरीरमें सभी जगह आक्सिजन पहुँचाता है उसे धमनी (artery) कहते हैं और जिनके द्वारा शरीर का दुषित रक्त विशुद्ध होने के लिये हृदय से होकर फुसफुस में जाता है, उन्हें शिरा (veins) कहते हैं। हमारी धमनियाँ क्रमशः सूक्ष्म से सूक्ष्मतर बाल की तरह होती हुई सूक्ष्म कौशिक नली (capillary) में विभक्त हुई हैं, और फिर सूक्ष्म नलियाँ क्रमशः बड़ी होती हुई शिरा के रूप में परिणत हो जाती हैं। ये ही दुषित-रक्त चारों ओर से लाती हैं। हृदय के पम्प कर देने से रक्त छोटी से अधिक छोटी धमनियों के भीतर से चलकर इन कौशिक नलियों के भीतर होकर फिर शिराओं के मार्ग से हृदय में फिर आ जाता है। जब इन कौशिक नलियों से होकर धमनियों का रक्त शिराओं में जाता होता है, तब शरीर के तन्तु खून से आक्सिजन ग्रहण करते हैं, एवं आक्सिजन रहित रक्त के भीतर उत्पन्न कार्बोनिक एसिड गैस छोड़ देते हैं। इसी कारण शिराओं का रंग नीला होता है और धमनियाँ विशुद्ध रक्त धारण

करने के कारण लाल रंग की होती है। शिराओं का दूषित रक्त हृदय से होकर फुसफुस में जाता है। वहाँ वह हवा में कार्बोनिक एसिड गैस को छोड़कर विष रहित हो फिर आक्सिजन लेकर लौट पड़ता है। दिन रात हमारे शरीर के ये कभी न थकने वाले नौकर कार्बोनिक तथा आक्सि-जन के ग्रहण और परित्याग का काम करते रहते हैं। इसी लगातार के ग्रहण और त्याग पर हमारा जीवन निर्भर रहता है। इसी ग्रहण और परित्याग पर हमार दूषित खून लगातार शुद्ध होता रहता है।

विशुद्ध हवा से लिये हुए आक्सिजन द्वारा ही हमारे शरीर में ताप और शक्ति उत्पन्न होती है। जिस प्रकार हवा में आक्सिजन के बिना ईंधन नहीं जल सकता, उसी प्रकार शरीर की अग्नि को भी प्रज्वलित रखने के लिये हमेशा आक्सिजन की आवश्यकता होती है। भोजन द्वारा लाये हुए कार्बोन के साथ मिलकर आक्सिजन हमारे शरीर में ताप और शक्ति उत्पन्न करती है। काठ या कोयला यदि हवा की सहायता से जलाया जाता है, तो इसी प्रकार ताप उत्पन्न होता है। बिना इस ताप के हम लोग जी नहीं सकते। जब आदमी मर जाता है, तब उसके शरीर में यह ताप नहीं रहता। खाद्य पदार्थ भी शरीर के भीतर आक्सिजन की आग से जलने पर ही शरीर के काम आता है—before food can be assimilated it must undergo oxidation (Charles A. Tyrrell, M. D.—Royal Road, P. 83)। इसी कारण विटामिन आदि की तरह हवा भी एक प्रकार का भोजन है और इसी कारण हमारे शरीर में आक्सिजन की उपयोगिता सबसे अधिक मूल्यवान हैं।

[२]

किन्तु यदि हवा निर्मल हो तभी बाहर से ली हुई हवा से हमारा

कल्याण होता है। यदि हवा दूषित होगी, तो फुसफुस के रक्त ेप केवल आक्सिजन ही नहीं ग्रहण करते, बल्कि जिस पथ से रक्त आक्सिजन ग्रहण करता है, हवा के दूषित होने पर हवा के दूषित अंश भी उसी मार्ग से रक्त में संक्रामित होते हैं। हम लोगों को यह याद रखना चाहिये, कि जितनी ही बार हम लोग साँस लेते हैं, उतनी ही बार बाहरी हवा से रक्त का सम्पर्क होता है। यदि हवा दूषित होगी, तो इससे खून खराब होगा ही। कुछ दिनों तक दूषित हवा में सांस लेने से पीलिया, क्लान्ति, मंदाग्नि या कोई भी फुसफुस सम्बन्धी रोग हो सकता है (C. W. Kimmins-The Chemistry of Life and Death, P, 81)।

हमारे शरीर रूपी दुर्ग में प्रवेश करने के लिये दो राजमार्ग हैं। एक मुँह और दूसरा नासिका। खराब भोजन से जिस प्रकार शरीर में रोग उत्पन्न होता है, खराब हवा लेने से भी उसी प्रकार रोग उत्पन्न हो सकता है। इसी कारण स्वास्थ्य रक्षा के लिये शुद्ध वायु ग्रहण करना तथा दूषित हवा से दूर रहना अत्यन्त आवश्यक है।

खून शरीरमें चारो ओर चक्कर लगाकर इसे पुष्ट करता है। किन्तु दुपित हवाके संस्पर्श में आकर यदि यह खून ही दूषित हो जाये, तो यह शरीर को समुचित रूप से पुष्ट नहीं कर सकता। शरीर उस अवस्था में दुर्बल हो जाता है और सारे शरीर में रोगों की उत्पति के अनुकूल स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसी कारण यथा सम्भव काफी समय तक बाहर खुली हवा में रहना आवश्यक है।

बाहर खुली हवा में रहना शरीर को स्वस्थ रखने का एक प्रधान उपाय है। यदि सम्भव हो, तो रात्रि में भी खुले बरामदे में सोना चाहिये। गर्मी के दिनों में तो खुले आकाश के नीचे सोया जा सकता है। पश्चिमी भाग के लोग ऐसा ही करते हैं। पहले पहल खुली हवा में सोने से

जराजरा सर्दी हो सकती हैं, किन्तु क्रमशः बाहर सोने के अभ्यास से जिन्दगी भर सर्दी का होना दुष्वार हो जायेगा। अत्यन्त पुरानी और असाध्य सर्दी भी केवल मात्र बाहर सोने के अभ्यास से अच्छी हो सकती है।

पर सभी को बाहर बरामदे में सोने की सुविधा नहीं होती। जिन्हें यह सुविधा न हो, उन्हे घर के जंगलों को खोल कर तो अवश्य ही सोना चाहिये।

बहुत लोग जाड़े की रात में रजाई से मुह ढंक कर सोते हैं। यह शरीर के लिये बहुत ही हानिकर है। फी घण्टे हर एक आदमी प्रायः आठ गैलन विषैला कार्बोनिक एसिड निश्वास के द्वारा बाहर करता है। रजाई में यह गैस रुक जाती है और बार-बार साँस के साथ वह फिर भीतर जाती है। कई बार तो एक ही रजाई में एक से अधिक व्यक्ति सोते हैं। उस हालत में वे परस्पर आपस में एक दूसरे का विष ग्रहण करते हैं। इससे रक्त दूषित हुए बिना नहीं रहता।

निश्वास से जो यान्त्रिक विष निकलता है, वह इतना जहरीला होता है कि एक साथ ही काफी दूरी तक के स्थान को विषाक्त कर देता है। अनेकों बार तो इस विषाक्त हवा को ग्रहण करने से आदमी की मृत्यु तक हो सकती है। फ्रांस के प्रसिद्ध चिकित्सक डा० ब्राउन सेकार्ड (Dr. Brown Sequard) ने परिक्षा कर के देखा है कि यह विष अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में छोटे छोटे जन्तुओं के शरीर में प्रवेश करा देने से उनकी मृत्यु उसी समय हो जाती है (J.H.Kellogg, M.D. —Second Book of Physiology and Hygiene, P. 136)।

किसी प्राणी के श्वांस प्रश्वांस बन्द कर देने से उसकी मृत्यु हो जाती है। इसका प्रधान कारण यही है कि शरीर से यह भीषण विष बाहर नहीं

निकल पाता। जिस विष के शरीर से न निकलने से प्राणी की मृत्यु होती है, उसी विष के फिर शरीर में प्रवेश करने से भी मृत्यु हो सकती है।

सोने पर भी इस बात की व्यवस्था होनी चाहिये कि प्रत्येक निश्वास के साथ विशुद्ध वायु ग्रहण की जा सके। इसी कारण घर के भीतर ऐसे स्थान पर बिस्तर लगाना चाहिये, जहाँ हवा सदा बहती हो। जिस स्थान पर जीवन का आधा भाग कटे, वह जगह यथा सम्भव खुली और स्वच्छ होनी चाहिये। किन्तु दुःख का विषय है कि शयनागार को ही अधिकांश लोग माल गुदाम बनाये रहते है। कितने घरों में तो साजसामान लाकर गोंज दिये जाते हैं कि उनसे निकली गैस घर की हवा को भारी कर देती है।

हमारे आर्यऋषि लोग घरके भीतर अग्निकी रक्षा करते थे। अनेकों बार आग जलाकर यज्ञ भी किया जाता था। इससे उन्हे, केवल धर्म लाभ होता हो यही नहीं—इससे उनकी स्वास्थ्य रक्षा भी होती थी, घर में आग जलने से उस स्थान की हवा उस शून्य स्थान को पूरा करने के लिये आग के भीतर से जाने के लिये बाध्य होती है। इससे आग द्वारा शुद्ध होकर घर की हवा सम्पूर्ण रूप से दोषरहित हो जाती है और बाहर की नयी हवा भी घर में प्रवेश करती है।

खाट के नीचे अथवा कोने में, जहाँ हवा रूकी हो, वहाँ एक चुल्हे या हाँडी में आग जलाकर उन सब स्थानों में महीने में एक बार धीरे-धीरे अग्नि-पात्र को घुमा देने से वहाँ की हवा शुद्ध हो जाती है।

जिनका घर ऐसा हो जहाँ मुश्किल से हवा चलती हो, उन्हें चाहिये की घर में सप्ताह में एक बार आधे घन्टे के लिये यथा सम्भव काफी ज्यादा बिना धूंए की आग जलावें। चुल्हे को बाहर जलाकर घर में लाना चाहिये जिससे

की उस स्थान पर धुआं न होने पावे। घर में आग जलने पर उसमें थोड़ा घी दे देने से हवा बिल्कुल विशुद्ध हो जाती है। यदि इसके साथ दो-एक स्तोत्रादिका पाठ भी किया जाय तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि भी एक ही साथ होगी।

कोई सँन्ध्या समय घर के भीतर धूप-धूना आदि देकर मन में सोचते हैं कि घर की हवा शुद्ध कर रहे हैं। किन्तु यह भी एक प्रकार से औषधि प्रयोग करने के समान ही दुर्बुद्धि है। घर में दूषित हवा के रहने से किसी प्रकार धूप-धूना आदि से हवा शुद्ध नहीं होती। घर में बीच-बीच में आग जलाकर घर की हवा शुद्ध करके धूप-धूना देना लाभदायक हो सकता है।

[३]

वायु स्नान (Air bath)

घर की हवा को विशुद्ध रखना जितना आवश्यक है, रोज सारे अंग में बाहर की खुली हवा का स्पर्श-लाभ उतना ही जरूरी है। नियमानुसार सारे शरीर में शीतल हवा का ग्रहण करना भी एक प्रकार की चिकित्सा है। इसे वायु-स्नान (air bath) कहा जा सकता है। यथा सम्भव खुले बदन इस स्नान को ग्रहण करना आवश्यक है। ठंडे पानी की ही तरह ठंडी हवा भी क्रमशः अभ्यास की जरूरत है। साधारणतया प्रति दिन आधे घण्टे तक वायु स्नान करना पर्याप्त है। पर प्रकृति की तरफ से इसके लिये कोई खास निश्चित समय नहीं है। खुली हवा में जितना ही अधिक रहा जाये उतना ही अच्छा है। गर्म देशों में दिन रात हर समय खुले शरीर रह कर आंशिक रूप से वायु-स्नान किया जा सकता है। रोगियों को दिन में कम से कम तीन बार वायु-स्नान ग्रहण करना चाहिये।

किन्तु वायु-स्थान ग्रहण करते समय शरीर को हमेशा गर्म और इसमें रक्त प्रवाह तेज बनाये रखना चाहिये। यह विशेष रूप से ध्यान देने का विषय है। यदि इस समय कुछ जरा सा ठंडा लगे अथवा शरीर ठंडा हो जाये तो फ़ौरन तेज हाथों शरीर को रगड़ कर गरम करना चाहिये। इस प्रकार शरीर को खाली हाथ मालिश करने से ठंडी हवा में भी शीत नहीं लगेगा। या ठंडी हवा से शरीर की कुछ हानि नहीं होगी (J. P. Muller—My Sun-bathing and Fresh Air System, P.57)। इसे चर्म घर्षण युक्त व्यायाम (skin rubbing exercise) कहते हैं। वायु स्नान के साथ साथ इस प्रकार चर्म घर्षण युक्त व्यायाम (चमड़े को रगड़ कर गरम करने की कसरत) स्वास्थ्य-रक्षा का एक उत्तम उपचार है।

किन्तु वायु-स्नान से तभी फायदा पहुंचता है जब बाहर की हवा प्रवाहित, शुद्ध एवं शरीर की अपेक्षा अधिक शीतल हो (Francis Marion Pottenger, M. D.—Tuberculosis in the Child and the Adult, P. 393-4)। जब हवा में गति न हो, तो पंखे की सहायता से यह काम लिया जा सकता है।

वायु-स्नान से लाभ होने का प्रधान कारण यह है कि ठंडी हवा के स्पर्श से चमड़े की स्नायु मंडली उद्दीप्त होती है, और इन स्नायुओं के द्वारा यह उद्दीपना भीतर ले जाकर अन्दर के सारे यन्त्रों को उद्दीप्त कर देती है। इसके फलस्वरुप शरीर की क्षति पूर्ति (metabolism) तेजी से होती है, रोगी की भूख और पाचन शक्ति बढ़ती है, स्नायु मंडली स्वस्थ और बलवान होती है, अच्छी नींद आती है (Ibid, P. 293-4)। इसी कारण किसी किसी का कहना है कि वायु-स्नान से जो लाभ होता है, वह फुस फुस की सहायता से आक्सिजन ग्रहण करने के लिये उतना नहीं, जितना कि चमड़े के ऊपर शीतल वायु के प्रभाव को उत्पन्न करने के

लिये है (Frederick Tice, M. D.—Practice of Medicine, VI., P. 494)।

जो लोग स्नायुविक रोगों के मरीज हों, उनके लिये वायु-स्नान से बढ़ कर उपकारी और कुछ नहीं। स्नायविक दुर्वलता (neurasthenia) आदि—रोगों में एक मात्र लम्बी अवधि तक लिया हुआ वायु स्नान ही आश्चर्यजनक फल पहुंचाता है।

शीतल हवा से फुस फुस बलवान होता है और इसकी जितने प्रकार के रोग हैं, वे सभी इससे चंगे होते हैं।

जिन लोगों को खांसी की बीमारी हो, उनके लिये खुली शीतल हवा अत्यन्त लाभदायक है। नियमित रूप से चमड़े को रगड़ते हुए वायु-स्नान करने से सर्दी, खांसी, हंफनी, यक्ष्मा आदि रोग भी निर्दोष रूप से निरोग हो जाते हैं।

इंगलैण्ड में जब किसी युवक को यक्ष्मा होता है, तो उसके प्रथम लक्षण दिखाई देते ही वह किसी कृषि क्षेत्र में काम करने चला जाता है। यह उसके जीवन को परिश्रम के साथ हवा पाने का सुयोग प्रदान करता है। कुछ वर्ष तक कृषि क्षेत्र में काम करने मात्र से ही अनेकों रोगी प्रायः स्वस्थ हो जाते हैं।

दुनियां में प्रायः सर्वत्र ही यह देखा जाता है कि माली, कृषक, खतीवारी के मजदूर और जेल आदि में जो खुली हवा में काम करते हैं, वे अत्यन्त सवल और स्वस्थ होते हैं और अन्यान्य व्यवसाइयों की अपेक्षा वे फुस फुस के रोग से कम आक्रान्त होते है।

सभी प्रकार के फुस फुस के रोग में शीतल और निर्मल हवा विशेष लाभदायक है। खांसी के शुरू होते ही यदि नंगे बदन खुली हवा में टहला जाये, तो तुरत छाती ठण्डी होकर खांसी रुक जाती है। हंफनी

की बीमारी में जब दम बन्द हो जाता है, तो खुली हवा में खड़े होने मात्र से रोगी बहुत कुछ स्वस्थ हो जाता है। परन्तु हमेशा शीतल पर खुली हवा लेनी चाहिये। गर्म हवा फुसफुस को अत्यन्त दुर्बल बना देती है और यक्ष्मा रोग के आक्रमण करने लायक परिस्थिति उत्पन्न कर देती है।

बहुत लोग ठंडक लगने के भय से बुखार के रोगी को हमेशा ढककर रखते हैं। रोगी जिस समय गर्मी से छटपटा रहा हो, उस समय उसे ढक कर रखना अत्यन्त हानिकर हैं। इससे भीतर की गर्मी बाहर नहीं निकलने पाती और बहुधा यह ताप रोगी के शरीर में बन्द होकर उसकी मृत्यु का कारण बन जाता है।

रोगी प्रत्येक दिन कमरे के कुछ जंगलों को खुला रखकर उसके भीतर बाहर की खुली शीतल हवा में यदि यथा सम्भव पन्द्रह से बीस मिन्ट तक नंगे बदन रहे, तो रोगी को बहुत ही लाभ होता है। पर पहले पहल दो-चार मिन्ट करके धीरे धीरे अभ्यास बढ़ाना चाहिये। हवा जितनी शीतल होगी लाभ भी उतना ही अधिक होगा।

सभी प्रकार के रोगों में स्वच्छ हवा की नितान्त आवश्यकता है। सर्दी, बात रोग, टाइफाइड, हैजा, कैंसर आदि जितने रोग हैं, उन सबों में शुद्ध हवा पर्याप्त लाभ पहुंचाती है (Adolph Just—Return to Nature, P, 67)।

स्वास्थ्य रक्षा के लिये हवा परमावश्यक है। यदि केवल मात्र यथा सम्भव खुली हवा में रहा जाय और भोजन पर दृष्टि रखी जाय, तो दीर्घ जीवन के लिये और किसी चीज की आवश्यकता नहीं रहती।

हो सकता है कि हमेशा नंगे बदन रहना सम्भव न हो। स्त्रियों के लिये नंगे रहना नहीं चल सकता। परन्तु घर के भीतर रहते समय सभी को यथा सम्भव कम वस्त्र का व्यवहार करना चाहिये। पहन ने का वस्त्र भी हमेशा पतला और छिद्र युक्त होना आवश्यक है जिससे कि उसके भीतर से हवा का आना जाना चालू रहे।

चतुर्दश अध्याय

धूप-स्नान (Sun bath)

[१]

एक प्रसिद्ध डाक्टर (Dr. Aufrecht) ने एक बार नाना प्रकार के जीव-जन्तुओं पर डिप्थीरिया और यक्ष्मा के जीवाणुओं को इन्जेक्ट किया। इसके बाद उनमें से कुछ प्रकाश में और कुछ अंधकार में रखे गये। जिन जन्तुओं को अन्धकार में रखा गया था, वे दो तीन दिनों में मर गये। पर जिन्हें प्रकाश में रखा गया था, उनमें से देखा गया कि प्रायः सभी अच्छे हो गये (Otto Juettner, M. D., Ph. D.—Physical Therapeutic Methods, P. 190)।

सूर्य की किरणें इस प्रकार सभी जीवाणुओंका नाश करती हैं। सूर्य की किरणों के प्रभाव से खून की लाल और स्वेत कणिकाओं के काम करने की क्षमता में बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है। इसी कारण जीवाणुओं का नाश करने में सूर्य की किरणों के समान स्वाभाविक तरीका और कुछ भी नहीं है। आज कल पृथ्वी में सर्वत्र यक्ष्मा और (eczema) आदि चर्म रोग, सभी तरह की फुसफुसी बीमारियां तथा बच्चों का रिकेट आदि रोग सूर्य की किरणों की सहायता से अच्छे किये जाते हैं। अन्यान्य रोगों में भी सूर्य की किरणों का आश्चर्य जनक गुण देखकर डाक्टरगण विस्मित हो रहे हैं।

जिस कारण वाष्प स्नान से लाभ होता है, उसी कारण से सूर्य की किरणों के स्नान से भी लाभ पहुंचता है। सूर्यकी किरणों का स्नान ग्रहण करनेसे रोम कूप खुल जाते हैं और शरीर से काफी मात्रा में पसीना निकलता है। धूप

से शरीर के अन्दर का दूषित पदार्थ गल कर पसीने के साथ बाहर निकल जाने के कारण स्वास्थ्य अपने आप सुधर जाता है और रोग दूर हो जाता है। इसी कारण धूप-स्नान को वाष्प स्नान के एवजी कहा जा सकता है।

यह बात नहीं कि सूर्य की किरणें केवल चमड़े पर ही अपना प्रभाव डालती हों बल्कि ये चमड़े के भीतर से होकर शरीर के दूर के भीतरी भागों में प्रवेश कर सारे जीव कोष, तन्तु और हृदय आदि प्रत्येक यन्त्र को ही उद्दीप्त कर डालती हैं। इसके फलस्वरूप शरीर के प्रत्येक यन्त्र विशेष की काम करने की शक्ति और शरीर में क्षय और गठन करने के काम (metabolic activity) यथेष्ट मात्रा में बढ़ा देती हैं। इसी कारण नियम के अनुसार रोज धूप लेने से इसके द्वारा बहुत से रोग आरोग्य किये जा सकते हैं।

सूर्य की किरणों के समान बलकारक और आरोग्यकारी कम ही वस्तु संसार में हैं।

ऋगवेद में लिखा है, सूर्य ही स्थावर जंगम सब का प्रकृत जीवन है (१। ११५। १)।

चौथे वेद के अनेकों मंत्रमें सूर्यके रोग आरोग्य करने की क्षमता का वर्णन है। सूर्य नमस्कार (sun worship) पाखण्ड नहीं है। धूप में खड़ा होकर सूर्य के स्तोत्र के पाठ की व्यवस्था कर हमारे पूर्व पुरुषों ने धर्म के साथ साथ स्वास्थ्य को भी एक सूत्र में विजड़ित किया है।

'बिना सूर्य के जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। चेतन या जड़ जो कुछ भी पृथ्वी पर है, उन सबकी शक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सूर्य द्वारा ही प्राप्त होती है। जल स्त्रोत और हवा का वेग, जीव-जन्तु की वृद्धि,

कोयले और काठ के जानने को क्षमता आदि सभी पृथ्वी पर सूर्य की शक्ति के विभिन्न क्रिया मात्र हैं।'

जिस पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं, उस पर वे हितकारी प्रभाव पैदा करती हैं। देखा गया है कि, जो साक सब्जी धूप में पैदा होती है, वह अन्धकार में पैदा होने वाली सब्जी से अधिक गुणकारी होती है। पेड़ों के हरी पत्तियाँ जो सूर्य की किरणों से जो शक्ति ग्रहण करती हैं वहीं विभिन्न धान्यों में संचित होती है। मनुष्य आदि सभी जीव जन्तु इस धान्य से ही शक्ति ग्रहण कर शक्ति लाभ करते हैं। यहां तक कि मांसभक्षी प्राणी भी धान्य भोगी प्राणियों के मांस से ही यह शक्ति प्राप्त करते हैं। इसी कारण कहा जाता है कि food is simply sun light in cold storage—खाद्य पदार्थ शीतल आधार में सुरक्षित केवल सूर्यरश्मियां मात्र हैं (J. H. Kellogg, M. D.—The New Dietetics, P. 29)।

जिन गायों को बाहर घूमने नहीं दिया जाता और सारे दिन घर में ही रखकर उन्हें खिलाया-पिलाया जाता है, उनके दूध में पर्याप्त डी-विटामिन नहीं होता। इसी विटामिन के अभाव से बच्चों की वृद्धि रुकती है और रिकेट (मस्तक वृद्धि और मेरुदण्ड की वक्रता) आदि रोग होते हैं। गाय के दूध में काफी विटामिन पैदा करने के लिये धूप और मैदान में छोड़कर घास चरानी उचित है।

सूर्य की किरणों में सब से अधिक जरूरी चीज है—अल्ट्रा वाय लेट रेज (ultra violet rays)। सूर्य की किरणो में जो सात रङ्ग हैं, उन्हें यदि विभक्त करके परदे पर फेंका जाय, तो पहला रंग होगा लाल और अन्तिम रंग बैंगनी। ये सातों रंग तो आँखों से देखे जाते हैं। किन्तु इनके अलावे और भी दो रंग हैं जो आँखों से दिखाई नहीं देते। इनमें से एक तो लाल से भी पहले पड़ता है और दूसरा बैंगनी के भी पीछे पड़ता है।

Ultra violet यानी beyond violet अर्थात् बैंगनी रंग के भी पीछे का रंग। इस प्रकाश में कीटाणुओं को ध्वंस करने की विशेष क्षमता है। यही डी-विटामिन का स्वाभाविक उत्स है। खुले वदन चमड़े पर सूर्य की किरणों के लगने से खून में विटामिन-डी उत्पन्न होता है (Lucius Nicholls, M. D., B. C.—Tropical Nutrition and Dietetics, P. 30)।

सूर्यकी किरणों में अल्ट्रावायलेट रेज सब से अधिक सवेरे रहती है। इसी कारण सवेरेकी सूर्यकी किरणें जीवनदान करती हैं। सूर्योदय के समय भ्रमण करने से चमड़ा परिष्कृत होता है, शरीर में काफी मात्रा में लाल रक्त उत्पन्न होता है, सारा शरीर बलवान होता है, शरीर में रोग भगानेकी शक्ति बढ़ती है और सारे शरीर में नव जीवन का आविर्भाव होता है (Bhavanrav Shrinivasrav, Raja of Aundh—Surya Namaskars, P. 75-79)।

इसी कारण स्वास्थ्य प्राप्ति के लिये यथा सम्भव सूर्य-किरणोंको ग्रहण करना उचित है। किन्तु दोपहर के सूर्यकी किरणें हानिकर होती हैं। सूर्यकी किरणों में सबसे अधिक हानिकर भाग इसी समय ज्यादा रहता है।

घर भी इस प्रकार बनाना चाहिये कि सूर्य की किरणें सदा उसमें प्रवेश करती रहें। घरके पास वृक्षादि इस प्रकार रहें कि सूर्यकी किरणों के आने में बाधा न पड़ने पावे। खूब कीमती वृक्षको भी घरके पूर्वमें नहीं उगने देना चाहिये। किन्तु घरके पश्चिम वट वृक्ष लगाकर दो पहरके बाद की किरणों में बाधा उत्पन्न करना उत्तम है। इसी कारण गृह निर्माण के सम्बन्ध में कहा गया है,—पूर्व हंस, पश्चिम बाँस। अर्थात् घरके पूर्व तालाब आदि खुदवाकर खुला रखना चाहिये और पश्चिम में बाँस लगा कर धूप और छाया में साम्यस्थापित करना जरूरी है।

सूर्य की किरणो से बढ़ कर गंदगीको दूर करने वाली कम चीजें हैं। विना सूर्य के नदी के पानी के इस प्रकार स्वच्छ रहनेकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। जहां सूर्य की किरणें पड़ती हैं, वहां से दुर्गन्धिका नाश हो जाता है। इसी कारण घरमें जहां गंदगी के जमा होने की अधिक सम्भावना हो, वहां इसकी व्यवस्था करनी चाहिये कि सूर्यकी किरणें सदा पड़ा करें।

[२]

धूप-स्नान करने की विधि।

स्वास्थ्य लाभ के लिये जिस प्रकार सूर्य की किरणें परमावश्यक हैं, रोग चंगा करने में भी उनकी उपयोगिता उतनी ही अधिक है। विशेष पद्धति से यदि रोज सूर्य स्नान किया जा सके, तो उससे अनेकों रोग अच्छे किये जा सकते हैं। तरह तरह के वैज्ञानिक प्रकाश ग्रहण करने से जो लाभ होता है, केवल मात्र सूर्य की किरणों द्वारा स्नान से भी वही लाभ उठाया जा सकता है (J. H. Kellogg, M.D.—Light Therapeutics, P. 74)। किन्तु जैसे तैसे धूप में घूमने मात्र से लाभ नहीं होता। सूर्य-स्नान की एक विशेष पद्धति है। इसी विधि से सूर्य की किरणों के ग्रहण करने से ही लाभ होता है।

रोगीको पहले ही दिन अधिक देरतक धूपमें हर्गिज नहीं रखना चाहिये। दिन पर दिन क्रमशः धूप-स्नान के समयको बढ़ाते जाकर रोगीको इसका अभ्यास करा लेना उचित है। धूप ग्रहण करनेका समय मौसम पर निर्भर करता है। जाड़े के दिनों में शुरू में ही कुछ अधिक समय के लिये धूप में रहा जा सकता है। गर्मी के दिनों में खुब धीरे धीरे समय बढ़ाना चाहिये। यदि रोज धूप स्नान किया जाये और क्रमशः समय बढ़ाते बढ़ाते ३० मि० से ६० मि० तक धूप में रहा जाये तो उससे सबसे अधिक लाभ होता है। पर

इस वातको हमेशा याद रखना चाहिये, so long as the sun feels good it will do you good—जबतक धूप अच्छी लगे तभी तक यह लाभ दायक है (Macfadden's Encyclopedia of Physical culture, P. 1488)। धूप-स्नान में यह कोई आवश्यक नहीं कि हर अवस्था में रोगीको पसीना हो आ जाये। रोगीके शरीर के गरम होने मात्र से ही इससे लाभ होता है।

साधारणतया रोगी घरके वाहर खाट या अन्य किसी चीज पर बैठ कर धूप ले सकता है। सबल रोगी धूपमें टहल कर या खेलकर धूप स्नान ग्रहण करे तो इसमें कोई आपत्ति नहीं। चरबी बढ़ने या मधुमेह (diabetes) रोगी के लिये इस प्रकार का खेल विशेष लाभदायक है (Dr. Wilhelm Winternitz—A System of Physiologic Therapeutics, Vol. IX, P. 215-216)। परन्तु खूब कमजोर रोगी को घरके भीतर या वाहर बिस्तर पर लिटाकर धूप स्नान ग्रहण करना चाहिये।

धूप-स्नान ग्रहण करते समय यथा सम्भव रोगी का शरीर नंगा रहना चाहिये। जब सूर्य की किरणें सीधे चमड़े पर पड़ती हैं तभी इनसे लाभ होता है। असलियत यह है कि if the sun-beams are not falling upon the naked skin then it is no sun-bath—यदि धूप नंगे चमड़े पर न पड़े तो यह धूप-स्नान है ही नहीं (J. P. Muller—My Sun-bathing and Fresh Air System, P. 44)।

धूप-स्नान करते समय हमेशा सिरको धूप लगने से बचाना चाहिये। जब सारे शरीरको धूपमें रखना हो, तो धूप में आनेके पहले सिर, मुंह गर्दन अच्छी तरह धोके एक भीगी तौलिये से इन सभी स्थानोंको

अच्छी तरह ढक लेना चाहिये। इस तौलियेको और एक काले रंगके कपड़े से यदि ढक लिया जाये, तो बहुत अच्छा हो। भींगी तौलिया जब सूख जाय, तो उसे तुरत बदलते जाना चाहिये। इसके बाद यदि सिरकी ओर एक छाता लगाकर सिर मुँह आदि ढक लिये जायँ तो अच्छा है। मतलब यह कि ऐसी व्यवस्था रहनी परमावश्यक है जिससे कि सिर ठंडा रहे। क्योंकि सिरमें धूप लगने से धूप-स्नान के बाद अप्रिय परिणाम हो सकता है (Dr. Wilhelm Winternitz—A System of Physiologic Therapeutics, vol. IX, P. 213—215)।

धूप लेते समय हमेशा शरीर के ताप पर विशेष ध्यान देना चाहिये। सूर्य की गरमी से शरीर यदि खूब गर्म हो जाये तो रोगी को एक ग्लास ठंडा पानी पीनेको देना जरूरी है। इससे शरीर के कुछ अधिक गरम होने पर भी उतनी हानि नहीं होती। मधुमेह आदि के रोगो, जिन्हें साधारणतया पसीना नहीं होता, उन्हें तो बार बार पानी पीते जाना चाहिये। यदि धूप में रहते समय रोगीको अधिक पसीना आये, तब शरीरके अधिक गरम हो जाने पर भी विशेष हानि की संभावना नहीं रहती। खूब कमजोर रोगी के शरीरको अधिक गर्म हो जाते ही मात्र, उसे शीघ्र धूप से हटा लेना चाहिये। यदि हृदय कमजोर हो तो कुछ देरतक धूप-स्नान से शरीर के गरम हो जाने पर हृदय पर हमेशा एक भीगी तौलिया रख देना चाहिये।

हरबार धूप-स्नान ग्रहण करते समय और उसके तुरत बाद रोगीको काफी आराम मालूम पड़ता है। यदि धूप-स्नान के बाद रोगीको आलस्य, अनिद्रा आवे, सिर दर्द शुरू हो जाये, सिर में चक्कर आवे अथवा रोगी के शरीर में खूब उत्तेजना उत्पन्न हो तो समझना चाहिये कि रोगीको अधिक समय तक धूप दी गयी है या पद्धति अनुसार धूप-स्नान के नियम का पूर्णतया पालन नहीं हुआ है (A. Rollier, M. D.—Heliotherapy, P.6-21)।

ऐसा होने से कुछ भी लाभ नहीं होता। कारण जब कि सूर्य की किरणों का ठीक तौर से प्रयोग किया जाये, तभी उचित लाभ हो सकता है। इसी कारण आरम्भ में थोड़े-थोड़े समय के लिये धूप लेनी शुरू करनी चाहिये और क्रमशः इसका समय बढ़ाते जाना चाहिये।

निर्दिष्ट समय तक धूप-स्नान करने के बाद सारे शरीर को एक भीगी तौलिये से पोंछ डालना चाहिये। इसके बाद शरीर के गरम रहते ही स्नानकर लेना उचित है। खूब कमजोर रोगी को स्नान के बदले में गलेतक ढंके कम्बल से ढंक कर ठण्डी मालिश का प्रयोग करना चाहिये। धूप-स्नान करने के बाद इस प्रकार शरीर को शीतल न करने से बहुत बड़ी क्षति हो सकती है। स्नान के बाद सुखा मालिश, व्यायाम अथवा गले तक सारे शरीर को कम्बल से ढक कर फिर शरीर के ताप को वापिस कर लेना चाहिये।

[३]

विभिन्न रोगों में धूप-स्नान की व्यवस्था

पुराने रोगों में शरीर में जीवताप आवश्यकता से बहुत कम होता है। इसी कारण सारे तापों के मूल कारण सूर्य से ताप ग्रहण कर शरीर के उत्ताप को बढ़ाना चाहिये।

कमजोर रोगी अथवा जिन बच्चों का शरीर यथेष्ट परिमाण में वृद्धि नहीं पा रहा हो या जिन लोगों ने अपने मां बाप से ही दुर्बल शरीर पाया हो, उन लोगों के लिये यह स्नान विशेष लाभ प्रद है।

जिन रोगों में शरीर के क्षय-निर्माण तथा शरीर के दहन क्षमता में कमी आ जाती है, (in defective metabolism and deficient oxidation) इन सभी में धूप-स्नान विशेष लाभदायक

है। इसी कारण मधुमेह, स्थूलता, वातरोग और गठिया (gout) में यह अत्यन्त लाभदायक होता है।

बहुत दिनों से अजीर्ण रोग से आक्रान्त होने के कारण जिनका चमड़ा शुष्क, और मुर्दा हो गया हो, यदि वे नियमानुसार रोज धूप-स्नान ग्रहण करें, तो उनके शरीर का चमड़ा फिर सिक्त, कोमल और सतेज हो जायेगा। इसी कारण एक्जिमा रोग में धूप-स्नान से बहुत लाभ होता में। सभी प्रकार की स्नायविक कमजोरियां इससे बहुत ही कम समय में आराम होती है। जिनका खून साफ नहीं रहता, धूप स्नान से उनका रक्त विशुद्ध और अपेक्षाकृत उन्नत होता है (quality is improved)। इसके द्वारा शरीर के अन्दर की रक्त-उत्पादन करने वाली व्यवस्था ही उन्नत हो जाती है और शरीर का विष बाहर हो जाता है।

जिन रोगियों का यकृत कड़ा हो गया हो, अथवा जिनके शरीर का कोई प्रधान अंग कमजोर हो गया हो, धूप स्नान से उन्हें आश्चर्यजनक लाभ होता है। ग्रन्थि प्रदाह (गांठों की सूजन) या संधि स्थानों का यक्ष्मा रोग (tuberculous joint disease) भी इससे आराम हो सकता है। किन्तु शरीर के भिन्न आंशिक रोगों में, धूपका प्रयोग केवल मात्र उस निर्दिष्ट स्थान पर ही न कर सारे अंग पर करना चाहिये। सूर्य की किरणों के सारे शरीर पर पड़ने से शरीर के सारे यंत्रों की ही क्षमता बढ़ती है। इससे शरीर के किसी खास अंश का रोग भी आसानी से अच्छा हो जाता है। किन्तु मुश्किल से अच्छे होने वाले क्षत (घाव) आदि रोगों में जब कि शरीर का कोई अंग विशेष ही आक्रान्त होता है, तब सारे शरीर के लिये धूप-स्नान की व्यवस्था करने पर भी बीच बीच में केवल मात्र उस अंग विशेष पर ही धूप का प्रयोग होना चाहिये।

किन्तु सभी रोगों में धूप-स्नान नहीं ग्रहण करना होता। सभी प्रकार

के बुखार में धूप-स्नान बिल्कुल मना है। जिन्हे वात रोग हो, खास कर जो जोड़ो के दर्द के शिकार हों, उन्हें धूप से हटाने के बाद कभी भी खूब शीतल जल से स्नान नहीं करना चाहिये। धूप-स्नान लेनेके बाद उन लोगोंको गले तक कम्बल से ढक कर उसी अवस्था में ठंडी मालिश या तौलिये-स्नान का प्रयोग करना चाहिये। सन्धियों (जोड़ों) में दर्द रहने पर धूप से आने के साथ-साथ फौरन जोड़ों को खूब अच्छी तरह फ्लानेल से बान्ध लेने के बाद शरीर के अन्यान्य भाग पर ठण्डी मालिश का प्रयोग करना चाहिये।



पंचदश अध्याय

गर्म और शीतल जल की समस्या

प्राकृतिक चिकित्सा में कभी शरीर को गरम करना होता है और कभी शीतल करना पड़ता है। कभी शरीर पर गरम जल का प्रयोग करना आवश्यक होता है, और कभी शीतल जल का इस्तेमाल करना जरूरी होता है। कभी ठंडी मिट्टी की पुल्टिश दी जाती है, तो कभी गरम जल में फ्लालेन भिगोकर सेंक देना होता है। अतः कब गरम और कब शीतल प्रयोग करना होगा, यही प्राकृतिक चिकित्सा की एक बड़ी समस्या है।

किन्तु आश्चर्य का यही विषय है कि, गरम जल अथवा उष्ण प्रयोग से जो काम होता है, शीतल जल से भी वही लाभ होता है।

गरम पानी का प्रयोग करने से खून, प्रयोग करने के स्थान पर चला आता है। रक्त जहां जाता है, वहां शरीर गठन की सामग्री, और जीवाणु आदि के साथ युद्ध करने के लिये श्वेतकणिकाओं को ले जाता है। खून जब चमड़े तक फैल जाता है तो रोम कूपों से होकर शरीर के विभिन्न दूषित पदार्थ भी निकल जाते हैं और भीतर के रक्त को अधिकता और दर्द आदि को क्षणभर में यह दूर कर देता है। कारण गर्म प्रयोग से रोग अच्छा हो जाता है।

ठंढे पानी के प्रयोग से यद्यपि पहले खून भीतर चला जाता है, पर क्षण भर बाद ही उस शीतल स्थान को गर्म करनेके लिये दौड़ा चला आता है। तब संकुचित शिरा में फैल जाती हैं और शरीर का विष, दिखलाई पड़ने वाला या नहीं दिखलाई पड़नेवाला पसीने और गेस के

रूप में शरीर से बाहर निकल जाता है। इसी कारण गरम पानी से जो लाभ होता है ठंढे पानी से भी ठीक वही लाभ हो सकता है।

किन्तु यद्यपि शीतल जल के प्रयोग से गरम पानी के व्यवहार का सारा लाभ होता है, पर गरम जल का दोष इसमें नाम मात्र भी नहीं आता। ठंडे पानी के व्यवहार का फल कुछ क्षण के लिये कुछ खराब मालूम होने पर भी इसका परिणाम आगे हमेशा ही अत्यन्त लाभदायक होता है। इसके प्रतिकूल गरम पानी का प्रयोग करने से यद्यपि तुरत लाभ होता है, पर इसका अंतिम फल कभी-कभी बहुत ही हानिकर होता है।

ठंडे जल का प्रयोग करने से पहले तो शिरायें संकुचित होती हैं, और थोड़े काल के लिये खून नीचे चला जाता है; किन्तु ज्योंही शीतल जल चमड़े पर पड़ता है, स्नायुपेशियां तुरत मस्तिष्क को फोन करती हैं,—शरीर पर शीतल आक्रमण हुआ है। मस्तिष्क तुरत उस स्थान पर खून की धारा भेजता है। यह संभव है कि, संकुचित शिराओं को ठेल कर रक्त शीघ्रता से वहां पहुँच नहीं पड़ता; किन्तु धीरे-धीरे यह फैलकर सारे चमड़े को खून से भर देता है। उस समय संकुचित शिरायें पहले की अपेक्षा अधिक फैल जाती है, नीले रक्त हीन चमड़े पर गुलाबी आभा झलकने लगती है, शीतल चमड़ा उत्तप्त हो उठता है और रोमकूप खुल जाते हैं। यह परिणाम बहुत समय तक रहता भी है।

पर गरम पानी बहुत-ही कम समय में रक्त को खींचकर ऊपर चमड़े के पास ला देता है और पसीना उत्पन्न करा देता है। परन्तु खून जितनी जल्दी आता है, उतनी ही शीघ्रता से वह भीतर चला भी जाता है। तब बाहर को रक्त ले जाने वाली शिरायें पहले की अपेक्षा अधिक संकुचित हो जाती हैं। रोम कूप भी बंद हो जाते हैं। चमड़ा शीतल, खून रहित और नीले रंग का हो जाता है तथा बाहर के चमड़े की हालत ऐसी हो जाती

है कि किसी भी समय ठंडक लगने से बीमारी हो जा सकती है।

इसी कारण शीतल जल स्वाभाविक रूपसे शरीर को गरम करता है और गरम पानी शरीर को ठंडा करता है।

गरम पानी की तरह कमजोर बनाने वाला भी और कुछ नहीं है। इससे क्षणिक लाभ तो तुरंत होता है, परन्तु इसका अन्तिम परिणाम प्रायः हानिकारक ही होता है। गर्म पानी का बाहरी इस्तेमाल जिस तरह ऊपरी भाग को कमज़ोर करता है, इसका भीतरी परिणाम भी उसी प्रकार पाक स्थली आदि को कमजोर बनाता है। ठंडा पानी जिस तरह बाहरी प्रयोग में होता है, ठीक उसी प्रकार भीतर पीने के लिये भी यह पृथ्वी पर सबसे अधिक बलकारक औषधि (टानिक) है।

शरीर में किसी स्थान पर सूजन उत्पन्न होने पर कोई-कोई उसे गर्म पानी से लगाकर सेंकने की व्यवस्था करते हैं। इससे बहुत बड़ी हानि होने की संभावना रहती है। सूजन की जगह को अधिक समय तक सेंकने से प्रायः पक जाती है। अनेकों बार आते, डिम्बकोश और मोच तथा चोट लगनेके स्थान पर बहुत अधिक गरम सेंक देने कारण वह स्थान पक जाता है। इसके बदले यदि उन स्थानों पर तापजनक पट्टी (heating compress) का प्रयोग किया जाय, तो दर्द और सूजन दोनो ही मिट जायें। पट्टी के नीचे जो हल्की गर्मी उत्पन्न होती है, वह दर्द कम करती है और पट्टी की शीतलता सूजन कम करती है।

जल चिकित्सा में ष्टीम बाथ की व्यवस्था है। किन्तु ष्टीम बाथ के बाद ठंडे पानी से स्नान करने से कोई भी बुरा असर नहीं होता। गरम जल से सेंक देने के बाद भी सेंके हुए स्थान को हमेशा ही ठंडे पानी से पोंछ डालना चाहिये। यदि कोई ष्टीम बाथ आदि ले और उसके बाद ठण्डक के डर से स्नान आदि न करे, तो चमड़े के छेद उत्ताप की प्रतिक्रिया से इस

प्रकार जकड़ जाते हैं कि रोगी की हालत पहले से भी अधिक खराब हो जाती है।

परन्तु शीतल जल के प्रयोग करने की भी एक मात्रा ही होती है। साधारणतया ठण्डा पानी थोड़ी देर के लिये ही काम में लाना चाहिये। थोड़ी देर तक शीतल जल से स्नान करने अथवा किसी दूसरी विधि से इसका शरीर पर प्रयोग करने से, शीत की प्रतिक्रिया के कारण शरीर में एक प्रकार के उद्दीपन (stimulating effect) का संचार होता है। किन्तु सूजन और दर्द आदि में काफी देर तक शीतल जल का व्यवहार करना आवश्यक होता है। क्योंकि उस अवस्था में एक एक प्रकार का शांत-कारक प्रभाव (sedative effect पैदा करना जरूरी होता है। परंतु काफी लम्बे समय तक शीतल पट्टी के व्यवहार से भी शरीर के उस अंश पर एक प्रकार का अवसाद आ सकता है। इसी लिये ताजे सूजन आदि में दो-तीन घंटे तक शीतल पट्टी चालू रखने के बाद बीच बीच में जरा-जरा थोड़ी देर के लिये सेंक देते जाना आवश्यक होता है।

किन्तु रोग में और स्वास्थ्य के लिये शीतल जल से अत्यन्त फलप्रद होने पर भी रोगकी किसी-किसी अवस्था में गरम पानी का प्रयोग करना ही आवश्यक होता है। रोगी के शरीर में जब शीत तथा कंप हो, उस अवस्था में उसे कभी भी ठण्डा पानी पीने को नहीं देना चाहिये और न उसे शीतल जल का बाथ ही देना चाहिये। उस अवस्था में उसे हमेशा गरम पानी ही पिलाना आवश्यक है और स्टीम बाथ आदि के प्रयोग का भी यही सबसे अच्छा समय है। 'शीतलअवस्था' के बाद जब 'गरम अवस्था' की बारी आती है, तब पानी के ताप को धीरे धीरे कम करके रोगी को ठण्डा पानी पिलाना चाहिये तथा अन्य दूसरे प्रकार से काम में लाने के लिये देना चाहिये।

षोड़श अध्याय

उपवास और आरोग्य

जीवन-पथ में परिश्रम और विश्राम दोनों हाथ पकड़कर चलते हैं। शरीर की बैटरी (battery)से परिश्रम द्वारा जिस शक्तिका ह्रास होता है, आराम के द्वारा वह शक्ति के शून्य पात्र फिर से भर पूर हो जाता है। यदि शरीर इस प्रकार विश्राम न पावे तो वह दुर्वल हो जायेगा।

सारे शरीर की ही भांति हमारे परिपाक यन्त्र भी आराम चाहते हैं। उपवास ही परिपाक यंत्रों का विश्राम है। अथवा सारे शरीर के लिये नींद जिस प्रकार जरुरी है, परिपाक यन्त्रों के लिये उपवास की भी उसी के अनुरुप आवश्यकता है। अच्छी नींद के वाद मनुष्य वलवान और स्वस्थ होता है। परिमित उपवास के वाद पाकस्थली और अंतड़ियों की भी शक्ति और कार्य-क्षमता वापिस लौट आती है।

इसी कारण पृथ्वी के सारे देशोंमें ही विभिन्न अवसरों पर उपवास की व्यवस्था है और जिससे कि इसका अवश्य पालन हो, इसे धर्म का एक प्रधान अंग वना दिया गया है। हमारे देश में पूजा-पार्वण और भिन्न-भिन्न तिथियों पर उपवास का नियम है। अन्यान्य धर्मावलम्बियों में भी निश्चित दिनों में उपवास की व्यवस्था है।

इस प्रकार के उपवासों से परिपाक यन्त्रों में विशेष प्रकार की उद्दीप्ति आती है जिससे पाकस्थली और आंतो के परिपाक और रस खींचने की क्षमता वृद्धि होती है, शरीर में काफी मात्रा में नया खून उत्पन्न होता है और इसके फ़लस्वरूप स्वास्थ्य विशेष रूपसे उन्नत होता है।

यह बात नहीं कि केवल खाने ही से लाभ होता है। ऐसा भी मौका आता है जब कि भोजन करने की अपेक्षा उपवास करने ही से अधिक लाभ होता है। कितने ही प्रकार की आबोहवा में हमारे परिपाक यन्त्र अत्यन्त कमजोर हो जाते है। उस समय अधिक भोजन करने से पाकस्थली उसे हजम नहीं कर पाती। उक्त आबो-हवा में खाद्य अधिक समय तक पाकस्थली में पड़ा रहता है और कुपित (fermented) होकर अमृत के बदले विषमें परिणत हो जाता है। इस विष से शरीर की बड़ी से बड़ी हानि हो सकती है। हमारे देशमें एकादशी, अमावस्या और पूर्णिमा को जो उपवास की व्यवस्था है, उसका यही प्रधान कारण है।

आषाढ़ के महीने में घनी वृष्टि होने के समय हमारी हाजमा-शक्ति निस्तेज बत्ती की तरह क्षीण हो जाती है। इसी कारण इस समय तीन दिनों तक उपवास के बाद अम्बूवाची पालन करने का विधान है।

परिपाक क्रिया का सूर्य के साथ बड़ा ही घनिष्ट सम्पर्क है। सूर्य ही सारी जीवनी शक्ति का मूल उत्पत्ति स्थान है। सूर्य जब हमारी दृष्टिसे ओझल हो जाता है, तब हमारे शारीरिक यन्त्रों की क्षमता भी क्षीण हो जाती है। जैनियों के सूर्यास्त के बाद भोजन न करने की जो व्यवस्था है, वह इसी कारण बड़ी ही युक्ति संगत है। वर्षा ऋतुओं में भी पश्चिम भारत के अनेकों हिन्दू एक वक्त भोजन करके दूसरे शाम उपवास करते हैं।

किन्तु उपवास से लाभ होनेका मुख्य कारण यह है, कि इससे शरीरके विभिन्न यन्त्रों को शरीर की सफाई करने का मौका मिल जाता है। हम लोग जो कुछ भोजन करते हैं, उसे हजम करने में शरीर को काफी शक्ति लगानी पड़ती है। पर जब हम लोग भोजन बन्द कर देते हैं या खूब हल्का पथ्य ग्रहण करते है, तब वही शक्ति शरीर के अन्दर के विभिन्न विषों और दूषित पदार्थों को शरीर के विभिन्न मार्ग से बाहर कर देने या इसके

अन्दर ही जलाकर भस्म कर देने में समर्थ होती है।

आयुर्वेद में लिखा है, ज्वरादौ लंघयेत पथ्यं ज्वरांते लघु भोजनम्— ज्वर के शुरू में न खाकर तथा इसके छूटने पर खूब थोड़ा भोजन करके रहना चाहिये। आयुर्वेद में ज्वर के सम्बन्ध में जो व्यवस्था की गयी है, सभी प्रकार के कठिन रोगों में विशेष करके सभी तरुण रोगों के सम्बन्ध में इसका विधान उचित है।

बीमार होते ही हमारी स्वाभाविक भोजन की इच्छा जाती रहती है, क्योंकि उस समय शरीर के सभी यंत्र शरीर के विकार को दूर करने में व्यस्त रहते हैं। कै की हाजत, दुर्गन्धि युक्त स्वास उस्वास, गंदला पेशाब का होना आदि इस बात को प्रमाणित करते हैं कि प्रकृति उस समय घर की सफाई में लगी है। ग्रहण करने तथा हजम करने लायक उसकी अवस्था नहीं रहती है।

पाकस्थली तथा दोनों प्रकार की आंतों का भीतरी भाग स्वाभाविक अवस्थामें खाये हुए पदार्थ से रस शोषण करते हैं। किन्तु तेज रोगों में इनके इस स्वभाव में परिवर्तन हो जाता है। तब स्पजकी तरह वह स्थान संकुचित हो जाता है और जो स्थान रस खींचता है, वह रस छोड़ने लगता है। उस समय वे शरीर के विकार को शरीर के नर्मदान में डाल देते हैं। ग्रहण तथा हजम करने का काम अधिकांशतः बन्द सा रहता है। इसी कारण स्वभावतः बीमारी की हालत में भूखकी इच्छा नहीं होती, यानी प्रकृति उस समय ग्रहण करना नहीं चाहती।

किन्तु मूर्ख प्रिय पात्रों का दल, रोगी की शय्या के पास आकर करुण स्वर में कहना आरम्भ करता है,—"ओह, कुछ खाया नहीं, शरीर कैसे बचेगा।" वे लोग जोर देकर रोगी के मुंह में पथ्य डाल देते हैं। उस हालत में जो प्रकृति रोग दूर करने में लगी रहती है, उसे बाध्य होकर भोजन हजम करने

के लिये वापिस आना पड़ता है। पर उस समय वह अच्छी तरह उसे पचा नहीं पाती। फलस्वरूप उस समय जो भोजन रोगी को दिया जाता है, वह उसके काम तो आता नहीं, बल्कि उसकी आंतों में विजातीय पदार्थ की वृद्धि करता है। इसी कारण रोगी को अधिक खिलाने से रोग की वृद्धि होती है और रोग अच्छा होने के थोड़े समय बाद भी अधिक खाने को देनेसे प्रायः रोग लौट आता है।

देहातों में प्रायः देखा जाता है, ग्रामीण उपवास करके ही बुखार छुड़ाते हैं। रोगके आरम्भ में लम्बे उपवास से इसी कारण रोग शीघ्र आराम होता है कि उपवास के कारण नये विजातीय पदार्थ की वृद्धि नहीं होती और प्रकृति इस समय शरीर में इकट्ठे दूषित पदार्थ को जला कर भस्म कर डालने तथा रोग दूर करने में सारी शक्ति लगाने का अवसर पाती है। हम लोग जो कुछ खाते हे, स्वास की हवा से लिये हुए आक्सिजन के संयोग से वह धीरे-धीरे जल कर हमारे शरीर के काम में आता है। जिस समय हम लोग उपवास करते हैं, उस समय शरीर में जो आक्सिजन लिया जाता है, वह नये खाद्य-पदार्थ के अभाव में शरीर के दुषित पदार्थ को धीरे-धीरे भस्म कर डालता है। इसी कारण केवल उपवास द्वारा ही बहुत रोग अपने आप आराम हो जाते हैं।

[२]

साधारणतया भिन्न-भिन्न पुराने रोगों को आराम के लिये उपवास का आश्रय लिया जाता हे। रोग जितना ही कठिन होता है, उतने ही अधिक समय तक उपवास की आवश्यकता पड़ती है। साधारणतया दस दिन से लेकर चौदह दिनों तक उपवास करने से ही अधिकांश रोगी बहुत पुराने रोगों से आरोग्य लाभ करते हैं।

उदरामय आदि नया रोगों में बिना विलम्ब किये उपवास आरम्भ कर देना

चाहिये, किन्तु पुराने रोगों में, जो लम्बे उपवास की आवश्यकता पड़ती हैं, इसमें जल्द वाजो नहीं करना चाहिये।

इस लम्बे उपवास के लिये धीरे-धीरे तैयार होना पड़ता है। पहले वीच वीचमें फल, फलोंका रस और कच्चे तरकारी का व्यंजन (salad) खाकर तीन चार दिनों तक आधा उपवास किया जाना चाहिये। इससे शरीर और मन लम्बे उपवास के लिये अभ्यस्त हो जाते हैं। इसके वाद उपवास करने के एक दिन पहले एक वक्त भोजन और दूसरे वक्त फल आदि खा कर रहना उचित है। दूसरे दिन दोनों वक्त फल और सलाद आदि और तीसरे दिन केवल फलों का रस पीकर चौथे दिन से उपवास चलाना चाहिये।

लम्बे उपवास में जो कुछ कष्ट होता है वह साधारणतया दो तीन दिनों तक ही रहता है। इसके वाद यह कम हो जाता है। इन्हीं कई दिनों तक भोजन ग्रहण करने की इच्छा वहुत कष्ट देती है। किन्तु प्रारम्भिक कई दिनों तक भोजन करने के नियत समय के पहले यदि काफी मात्रामें पानी पी लिया जाये तो भूख की तीव्रता उतनी अधिक नहीं सतावेगी।

वहुतों की यह धारणा है कि उपवास निर्जला होना चाहिये। इससे वढ़ कर और कोई गलती हो ही नहीं सकती। सभी प्रकार के उपवासों में नीम्बू के रस के साथ काफी पानी पीना चाहिये। उपवास से जो विकार शरीरमें जलता है, पानी उसे धो वहाता है। पर एक साथ कभी-भी-अधिक पानी नहीं पीना चाहिये। वल्कि वार-वार यहां तक कि प्रति घंटे एक ग्लास पानी पीया जा सकता है।

भोजन वन्द करने के साथ साथ प्रायः हमेशा स्वाभाविक पाखाना होना वन्द हो जाता है। किन्तु जिस नर्मद्वार से शरीर का अधिकांश विकार वाहर हुआ करता है, यदि वही वन्द हो जायें तो उपवास से लाभ पाना मुश्किल हो जाय। इसी कारण लम्बे उपवासों में प्रति दिन रोगीको डूस देकर उसके कोष्ठको साफ कर लेना चाहिये। फिर भोजन प्रारम्भ करने के वाद

भी कई एक दिनों तक एक एक दिन के अन्तर डूस लेने की आवश्यकता पड़ती है।

उपवास के कारण जो विकार शरीर में भस्म होता है, खून उसे विभिन्न भागों से शरीरसे बाहर निकाल देता है। इसी कारण सामयिक रूप से रक्तमें विकार रहने के कारण इस समय शरीर में कितने रोगों के लक्षण अपने आप होने लगते हैं और शरीर के दोष रहित होने के साथ-साथ वे अंतर्हित हो जाते हैं।

बीच-बीच में रोगी के सिर में दर्द आरम्भ होता है। इस अवस्था में रोगी को काफी मात्रा में पानी पीना या रोज गर्म पाद स्नान लेना चाहिये। गर्म पानी का डूस भी इस हालत में विशेष लाभप्रद है। इसके अलावे पूरा विश्राम और नियमित रूप से सोने से सिरदर्द बिल्कुल जाता रहता है।

शरीर के विकार के दग्ध होने के साथ साथ प्रायः पाकस्थली दूषित गैस से भर जाती है। पाकस्थली के इस प्रकार गेस से फूल उठने के कारण बहुधा यह हृदय पर दबाव डालती है जिसके परिणाम स्वरूप हृदय की कंपन आरम्भ हो जाती है। किन्तु एक दो ग्लास गरम पानी पीकर आराम करने मात्र से ही यह लक्षण गायब हो जाता है। इसमें पेट का लपेट भी विशेष लाभदायक होता है।

यदि रोगी का शिर घूमता हो और माथा ठंढा हो तो उनकी शय्या को इस प्रकार रखना चाहिये कि उसके पांव की ओर का हिस्सा सिर की ओर से ऊंचा रहे।

उपवास की प्रारम्भिक अवस्था में किसी समय रोगी को जरा-जरा ज्वर सा मालूम पड़ता है। शरीर को विशुद्ध करने को यह प्रकृति की एक चेष्टा मात्र है। उपवास की अवधि के बढ़ने के साथ-साथ यह भाव तथा अन्यान्य रोगों के लक्षण स्वयं गायब हो जाते हैं।

उपवास की प्रारम्भिक अवस्था में थोड़ा मृदु परिश्रम करना आवश्यक है। इस समय का सर्वश्रेष्ठ व्यायाम टहलना ही है। इच्छा होने से रोगी घरेलू काम भी कर सकता है। किन्तु जिस प्रकार उपवास की अवधि बढ़ती जाये, परिश्रम भी उसी मात्रा में कम होते जाना चाहिये।

यदि रोगी खूब कमजोरी महसूस करे तब उसे पूरा विश्राम करना जरूरी है। यथा सम्भव रोगी को खुली जगह में लम्बी अवधि तक रहना चाहिये और रोज नियमित रूप से स्नान कराना चाहिये।

साधारणतया उपवास के दो एक दिनों के भीतर ही जीभ पर लेपसा चढ़ जाता है और श्वास प्रश्वास तथा मुखसे दुर्गन्धि निकलने लगती है। ये सभी लक्षण यह प्रमाणित करते हैं कि शरीरमें काफी मात्रा में विकार इकट्ठा है और उपवास का सुयोग पाकर प्रकृति सभी मार्गों से इसे निकाल बाहर करने की चेष्टा कर रही है। इस प्रकार के लक्षणों को देखकर समझना होता है—कि रोगी के लिये यह उपवास अत्यन्त आवश्यक था। जितने दिनों तक शरीर निर्दोष नहीं होता, तबतक यही अवस्था चलती रहती है। इसके बाद कुछ दिनों तक उपवास चलाने के बाद जैसे जैसे शरीर विकाररहित होता जाता है, जीभ भी उसी अंश में रक्त-वर्णकी होती जाती है, श्वास-प्रश्वास उतना ही दुर्गन्धि रहित होता जाता है, और प्रभात के प्रकास की तरह क्षुधाकी एक प्रकार की अनिर्वचनीय मधुर अनुभूति जाग उठती है। तब समझना चाहिये—शरीर विकार रहित हो गया और उपवास अब तोड़ा जा सकता है।

उपवास भङ्ग करने के पहले इस अवस्था का आना अत्यन्त आवश्यक है। इस अवस्था विशेष के आनेके पहले उपवास तोड़ने से, इसका असली फल नहीं मिलता केवल व्यर्थका कष्ट स्वयं लाभ होता है।

पर कृत्रिम भूखको स्वाभाविक भूख समझने की भूल नहीं करनी चाहिये।

भूख वड़ीही दुर्लभ अनुभूति है। वहुत लोग जिन्दगी भर इसे जानने का सुयोग नहीं पाते, कि भूख असल में है क्या? हररोज खानेके निश्चित समय पर भूख जाग उठती है पर असल में भूख रहती नहीं। हमलोग भ्रम से ही इसे क्षुधा मान बैठते हैं। उपवास की हालत में इस प्रकार के क्रित्रिम भूख के लगने पर पानी पीकर या दूसरी ओर मन लगाकर इस इच्छा का त्याग करना आवश्यक है। जीभ आदिके साफ हो जानेके बाद जो असली भूख लगती है, उसीको केवल मात्र क्षुधा समझना उचित है।

[३]

लम्बा उपवास आरम्भ करना तो वहुत ही आसान काम है, पर उपवास तोड़ना अत्यन्त कठिन व्यापार है।

अधिक दिनों तक काम न करने के कारण, लम्बे उपवास के बाद पाक-स्थली सामयिक रूपसे कड़ी हो जाती है। इस अवस्था में पहले ही पहल अधिक पथ्य दे देने से कोई भी आफत आरम्भ हो सकता है। इसी कारण पाकस्थली को धीरे-धीरे फिर से खाद्य ग्रहण के लिये अभ्यस्त करा लेना उचित है।

उपवास के वाद पहले कई दिनों तक केवल तरल पथ्य ही ग्रहण करना उचित है। पहले दिन थोड़ा गरम पानी पी-पा कर उपवास भङ्ग कर सकने से वहुत अच्छा होता है। इसके वाद दो तीन दिनों तक केवल संतरे का रस या साग का रस या केवल दूध, चाय पीने के चम्मच से खूब धीरे-धीरे पीना उचित है। किन्तु यह भी पहली दो दफे से अधिक नहीं पीना चाहिये। पहले कई दिनों तक थोड़ा थोड़ा करके कई वार खाद्य ग्रहण करना चाहिये। दो तीन दिनों तक इस प्रकार तरल पथ्य लेने के वाद भात आदि कड़े भोजन (solid food) वहुत ही कम मात्रा में केवल एक वार ग्रहण करना उचित है।

इसके वाद और भी एक-दो रोज प्रतीक्षा के वाद धीरे धीरे भोजन का परिमाण वृद्धि करना चाहिये।

उपवास भंग के वाद पहले हमेशा ही राक्षसी भूख हाजिर हो जाती है। किन्तु चूंकि कई एक दिनों तक भोजन नहीं किया गया है इस लिये उस कमी की पूर्ति के लिये दूना भोजन किया जाये—इसका कोई अर्थ नहीं। अधिक खाने की प्रवृत्ति को इच्छा शक्ति के द्वारा रोकना चाहिये और हमेशा धीरे-धीरे भोजन के परिमाण को वढ़ाना उचित है। उपवासके समय जिस प्रकार पानी पीना वहुत ही जरूरी है, इकके वाद भी उसी प्रकार काफी पानी पीना चाहिये।

लम्वे उपवासों में पहले हमेशाही शरीर कमजोर और पतला होता है। किन्तु भोजन प्रारम्भ करने के कई एक दिन वाद से ही शरीर वड़ी तेजीसे पुष्ट होने लगता है और कुछ ही दिनों के भीतर शरीर पहले की अपेक्षा वड़ा अधिक अच्छा हो जाता है। इसके अलावे सवसे अधिक यह लाभ होता है कि शरीर सव प्रकार से निर्मल, दोप रहित और पूर्ण नीरोग हो जाता है।

जो रोग अन्य किसी भी विधिसे अच्छे नहीं होते वहुत अवस्थाओं में उपरोक्त पद्धति के अनुसार उपवास करने से वे अच्छे हो जाते हैं। वात रोग, आजीर्ण, यकृत की वीमारीयां, पथरी, दमा, और चर्मरोग आदिमें मनुष्य जिन्दगी भर कष्ट पाता है। किन्तु केवल मात्र कई एक दिनों के उपवास से इन्हें सभी असाध्य रोगोंसे छुटकारा पाया जा सकता है (Upton Sinclair—The Fasting Cure, P. 64)। असलियत तो यह है कि सभी प्रकार के दुःसाध्य रोगों में उपवास से लाभ होता है। क्योंकि कोई भी रोग क्यों न हो उनका मूल कारण होता है शरीर के भीतर जमा विभिन्न विषाक्त और दूपित पदार्थ। जव लम्वे उपवास के फलस्वरूप यह विप भस्म हो जाता है, तव सभी रोगोंसे स्वतः छुटकारा पाया जा सकता है।

तोभी जो लोग स्थूल शरीर के हों और जिनके शरीरमें चर्बी अधिक इकट्ठी हो गयी हो, लम्बा उपवास उन्हीं लोगोंके लिये ही विशेष हितकारी है। परन्तु जो लोग बहुत ही कृश, दुर्बल अथवा यक्ष्मा आदि क्षय रोगों के शिकार हों, जिनमें रक्तशून्यता, हिष्टिरिया अथवा स्नायविक रोग हो और जो स्त्री गर्भवती हो, उन्हें कभी भी लम्बा उपवास ग्रहण नहीं करना चाहिये। ज्वर में भी यदि समझा जाय, कि ज्वर केवल दो चार दिनों तक रहेगा, जैसा कि इन्फुएंजा और डेंगु आदिमें होता है, तब यथा सम्भव उपवास करना चाहिये किन्तु यक्ष्मा आदि की तरह लम्बी अवधिके रोगों में कभी भी उपवास नहीं करना चाहिये। यही हालत में फल का रस पीके रहने से उपवास का पूरा लाभ होता है।

सप्तदश अध्याय

व्यायाम और स्वास्थ्य

[१]

व्यायाम प्रत्येक के लिये ही आवश्यक है। यह सिर्फ हमारे मनुष्य शरीर के लिये आवश्यक है यह नहीं, वल्कि तमाम जीव-जंतु एवं वृक्ष-लता तक को भी इसकी समान रूप से आवश्यकता है।

तमाम जीव जंतुओं को आहार, क्रीड़ा एवं आत्मरक्षा के लिये परिश्रम करना पड़ता है। वही परिश्रम उनके लिये व्यायाम का स्थान लेता है। हवा तथा वर्षा में वृक्ष-लताओं को हिलना-डोलना उनके लिए एक प्रकार का व्यायाम है।



हरड्डु

व्यायाम एक प्रकार का नाशकारी कार्य है। हम जब अपने मांस-पेशियों को संकुचित करते हैं तब तमाम वेकार जीव-कोष एवं दूषित विकार खून के साथ साथ वाहर हो जाता है। फिर जब हम मांस पेशियों को फैलाते हैं

तब खून अपने साथ-साथ नयी मशला शरीर गठन के लिये लेती आती है। हमेशा हमारा शरीर इसी सृष्टि और विनाश के ऊपर ही चलता रहता है। जभी मृत-जीव कोष शरीर से बाहर होता है तभी नया जीव-कोष वहां पर अपना स्थान बना सकता है। इसलिये हम देखते हैं कि हाथ से काम करने वालों का हाथ अधिक मजबूत रहता है और साइकिल चलाने वालों का पांव और जांघ विशेष पुष्ट रहता है। सारे शरीर का व्यायाम करने से सारा शरीर ऐसा पुष्ट हो सकता है।

व्यायाम काल में शरीर के तमाम स्थानों में, इसके अनु-परमाणु तक खूनका संचार होता है। जहां पर खून जाता है वहीं पर नये जीवन का प्रारंभ होता है। इसलिये व्यायाम द्वारा मरा हुआ चमड़ा जीवित हो उठता है तथा तमाम शिथिल मांस-पेशियां सबल और पुष्ठ हो जाती है। शरीर के भीतरी यंत्रोंमें भी इससे शक्ति एवं पुष्टि आती है। व्यायामके समय खून पाकस्थली, यकृत, अंतरी व हृद-पिंड आदि यंत्रों के भीतर विशेष रूप से पहुँचता है एवं इन तमाम अवयवोंको शक्तिशाली बनाता है। इसलिये नियमित व्यायाम द्वारा कमजोर पाकस्थली मजबूत हो उठती है, मद यकृत अधिक काम करने लगता है, हृद् पिंड मजबूत हो जाता है एवं छोटी अंतड़ी को भोजन से रस खींचने की शक्ति बढ़ जाती है।

व्यायाम के संबंध में यह सुश्रुत ने कहा गया है कि "व्यायाम द्वारा सर्व श्रेष्ठ आरोग्य लाभ किया जा सकता है। व्यायाम से अपच भोजन भी अच्छी तरह हजम होता है।'

[२]

साधारणतः व्यायाम दो तरह से किया जाता है। एक खाली हाथ से, दूसरा किसी यंत्र की सहायता से। दंड बैठक आदि को हम खाली हाथका व्यायाम कह सकते हैं। खाली हाथ का व्यायाम करने में सुविधा यही है

कि यह जहां कहीं भी किसी भी हालत में किया जाता है। किंतु कोई कोई अपनी इच्छा के मुताबिक यंत्र पाति लेकर व्यायाम कर सकता है। इस लिये साधारणतः डाम्बेल, वार डेमेलपार इत्यादि अभ्यास किया जाता है।

किन्तु दंड, बंठक और डम्बेल यह सिर्फ व्यायाम ही है ऐसी वात नहीं है। खुली हवा में जो तमाम खेल होते हैं वे सब व्यायाम के ही अंग हैं। इनमें कुस्ती, तैरना, डांड़ से खेना, चिक्का, लाठी, हाडू, फुटवौल, क्रिकेट, टेनिस, हाकी, रस्सा खींचना, दौड़ और फांदना इत्यादि काफी अच्छे व्यायाम हैं। अथवा ये व्यायाम से भी श्रेष्ठ है। क्योंकि इन तमाम व्यायामों में खुली हवा और परिश्रम एक साथ मिलता है तथा साथ-साथ मानसिक आनन्द भी होता है। सिर्फ व्यायाम से शरीर अच्छा होता है, ऐसी वात नहीं है। विशेष खुसी भी देह गठन के लिये जरूरी है। इस लिये मैदान के खेल सबसे अच्छे व्यायाम हैं। अनेको वार इन तमाम खेलों में ही व्यायाम का काम होता है। किन्तु हरेक समय ऐसा नहीं होता। क्योंकि अधिक खेलों में व्यायाम एक दायरे के भीतर ही होता है। ऐसी हालत में सुवह में व्यायाम कर फिर दोपहर के वाद खेल किया जा सकता है। अथवा परिपूरक के रूप में एक-दो व्यायाम भी चुनकर किया जा सकता है।



तौरना



डांड़ से खेना

[३]

व्यायाम पहली वार शुरु करने पर हमेशा धीरे-धीरे अभ्यास करना जरूरी

है। पहले हल्का व्यायाम शुरू करके फिर धीरे-धीरे व्यायाम की मात्रा मे वृद्धि करनी चाहिये। कमजोर आदमी को पहले एक-दो दंड और तीन चार बैठक से व्यायाम प्रारम्भ करना उचित हैं। जो एक दम कमजोर हैं वे अपने हाथों को सीधा एवं मोड़ कर व्यायाम शुरू कर सकते हैं। इतना हल्का व्यायाम तो हृदय के रोगी भी कर सकते हैं। उसके बाद अभ्यास होने पर अत्यन्त धीरे-धीरे व्यायाम की मात्रा में वृद्धि की जानी चाहिये। ऐसी कहावत है कि बछिया उठाने का अभ्यास करने से अन्त में गाय भी उठायी जा सकती है।, लगातार व्यायाम करने से शारीरिक सामर्थ्य में यथेष्टरूप वृद्धि होती है। तब तीन-चार महीने के अन्दर और कठिन व्यायाम किये जा सकते हैं। लेकिन पहले ही बहुत सा दंड बैठक करने से अथवा अत्यधिक चाप उठाने से भयानक रोग भी उत्पन्न हो सकता है।



हल्का व्यायाम

प्रति दिन का व्यायाम भी शुरु में बहुत हल्का होना चाहिये। इसके बाद क्रमशः कठिन व्यायाम करके अंत में फिर कोई हल्का कसरत करके व्यायाम शेष करना जरूरी है। थकावट होने के पहले ही हमेशा व्यायाम छोड़ देना उचित है। जितना आसानी से किया जाय उतना ही करना चाहिये। इस ढंग से व्यायाम करने पर शरीर में नया बल का संचार होता है। कभी भी ऐसा नहीं होना चाहिये जिससे कि यव्यामा के बाद कमजोरी या थकावट महसूस हो। शुश्रुत में कहा गया है कि, प्रत्येक आत्म हितैषी व्यक्ति हमेशा यही चेष्टा करेंगे कि अपनी ताकतके आधा मात्रा भर ही व्यायाम करें। किन्तु उससे अधिक व्यायाम करने पर कमजोरी ही होगी (चिकित्सित स्थानमें, २४।२३—२७)।

व्यायाम जहां तक संभव हो हमेशा खुली हवा में ही करना चाहिये। जितना अधिक खुली हवा में व्यायाम किया जायेगा उतना ही अधिक आक्सिजन शरीर के भीतर प्रवेश करेगा और शरीर का फायदा होगा। बाहर व्यायाम करने की सुविधा न होने पर घर के तमाम खिड़कियों को खोलकर व्यायाम करना चाहिये। व्यायाम करने के समय में जभी सुविधा मिले तभी साँस का व्यायाम किया जा सकता है। जिस व्यायाम के करने में कुछ समय मिलता है वह ही सांस का व्यायाम के लिये अत्यंत उपयोगी है।

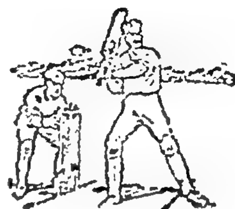
यदि व्यायाम करते समय में जरा भी दर्द मालूम पड़े तो समझना चाहिये कि व्यायाम क्रमशः वृद्धि नहीं किया गया है। ऐसी हालत में व्यायाम को खूब कम कर देना चाहिये और फिर धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये। किन्तु व्यायाम पहले पहल शुरू करने पर शरीर में कुछ वेदना तो जरूर ही होगी। लेकिन इस पर ध्यान नहीं देना चाहिये क्योंकि धीरे-धीरे यह आपसे आप चल जाती है।


टेनिस

कितने लोगों का ऐसा खयाल है कि व्यायाम बूढ़े लोगों के लिये उपयोगी नहीं है। यह उनकी अत्यन्त भूल है। युवक की तरह बूढ़ों के लिये भी व्यायाम एक ही तरह उपयोगी है। सिर्फ बूढ़े लोगों का व्यायाम उनके सामर्थ्य के मुताबिक हल्का होना चाहिये। जिस व्यायाम में फुर्ती और चंचलता का जितना कम उपयोग होता हो तथा जिसमें धैर्य की जितनी ही आवश्यकता हो वही व्यायाम बूढ़ों के लिये उतनाही ग्रहणीय है। इसलिये बूढ़ों के लिये टहलना सबसे अच्छा व्यायाम है। और इसके विपरीत जितने भी व्यायाम है बच्चों के लिये वही उपयोगी हैं। इसलिये

बच्चे हमेशा दौड़ना-खेलना, भागना पसंद करते हैं। प्रौढ़ लोगों को युवक लोगों की तरह ही व्यायाम करना उचित है (Bernarr Macfadden-Home Health Library, Vol. I. P. 529)।

व्यायाम अत्यन्त उपयोगी होने पर भी जो एकदम रोगी हैं उनके लिये व्यायाम करना उचित नहीं है। बुखार इत्यादि नये रोगों में विश्राम ही सबसे बड़ी चिकित्सा है। बुखार इत्यादि में व्यायाम करने से बुखार और अधिक बढ़ जाता है। किन्तु स्वाभाविक


क्रिकेट


फुटबाल

हालत में पुराने रोगियों को हल्का व्यायाम करना चाहिये। बूढ़े लोगों की तरह ही पुराने रोगियों को भी टहलना सबसे अच्छा लाभ दायक व्यायाम है।

अष्टादश अध्याय

मालिश और आरोग्य

चिर कालसे पृथ्वी के विभिन्न देशों में मालिश का उपयोग होता चला आ रहा है। इस वात का प्रर्याप्त प्रमाण पाया जाता है कि वहुत वर्ष पहले भी इसका प्रचलन था। भारतवर्ष और चीन देश के निवासी कई हजार वर्ष पहले से मालिश का उपयोग करते आ रहे हैं। मिश्र, फारस, और टर्कीमें भी वहुत ही प्राचीन कालसे यह प्रचलित है। इस वात के वहुत से उद्धरण हैं कि पुराने जमाने में ग्रीस देश के अधिवासियों में इस का व्यवहार होता था। इस देश में एक तरफ तो आरोग्य मूलक उपचार था और दूसरी ओर विलासिता में भी समाविष्ट था। पुराने रोम में भी इसका यथेष्ट प्रचलन था। रोमन सम्राट् जुलियस सीजर (खृ० पूर्व० १००) के वारे में कहा जाता है कि वह स्नायु शूल के लिये रोज मालिश कराया करता था। उसके पहले भी यूरोपीय चिकित्सा प्रणाली के प्रवर्तक हिपक्रेटस वहुत से रोगों में मालिश की व्यवस्था दे गये हैं।

इसी प्रकार पुराने जमाने में पृथ्वी के सभी देशों में कम-वेश मात्रा में यह प्रचलित था। इसके वाद सोलहवीं शताब्दी में शरीर-विज्ञान के सम्वन्ध में लोगों की धारणामें जव उन्नति हुई तव असलमें इसका वैज्ञानिक मूल्य उन्हों ने समझा। सत्रहवीं शताब्दी में जव रक्त के प्रवाह की व्यवस्था का आविष्कार हुआ तव मालिश की महत्ता में और भी वृद्धि हुई। आधुनिक युग में मालिश की व्यवस्था पृथ्वी के सभी सभ्य देशों में एक प्रधान वैज्ञानिक चिकित्सा प्रणाली के रूप में स्वीकृत हुई है।

वीमारियों में तथा स्वास्थ्य के लिये मालिश इसी कारण लाभप्रद है कि इसके द्वारा शरीर में इकट्ठा विकार वहां से विदाई ग्रहण करता है और इसके साथ ही साथ शरीर के आत्म-रक्षा मूलक यन्त्र भी संजीवित हो उठते

हैं। मालिश के फल स्वरूप सारे शरीर में खून दौड़ने लगता है। रक्त जहां ही जाता है वहां नवजीवन की स्फूर्ति लिये जाता है और लौटते समय शरीर के विभिन्न स्थानों से विकार को समेट लाकर बाहर निकाल फेंकता है। इसी कारण मालिश के फल-स्वरूप असली लाभ होता है। यह लाभ केवल सामयिक ही नहीं होता। कुछ दिनों तक नियमित रूप से मालिश कराने से सारे शरीर में समान रूप से रक्त का संचालन (equal distribution) स्थायी बन जाता है (Geo. A. Taylor, M. D.—Massage, P. 114)।

प्रकृति जिन यन्त्रोंकी सहायता से शरीर के विकार को इससे बाहर निकाल फेंकती है, यदि नियमित रूपसे मालिश की जाये तो ये प्रत्येक यन्त्र उद्दित हो उठते हैं। शरीर के विकार निकाल फेंकने वाले यन्त्र इसके द्वारा विशेष रूपसे प्रभावित हो उठते हैं। कुछ दिनों तक मालिश करने से, आंत, किडनी और फुस फुस आदि शरीर के यन्त्रों की काम करने की शक्ति विशेष रूप से बढ़ जाती है। इसके फलस्वरूप दोनों प्रकार की अंतड़ियां इस प्रकार सबल हो उठती हैं कि ये ठीक समय पर शरीर से मल बाहर निकालने में सक्षम होती हैं। इसलिये मालिश कराने से कोष्ट की सफाई के लिये प्रायः कभी भी सोचना नहीं पड़ता। मालिश से दोनों किडनियां विशेप रूप से सबल हो उठती हैं। इसके फलस्वरूप खून से प्रतिदिन काफी मात्रा में विप निकाल कर ये शरीर से बाहर निकालने में समर्थ होती हैं। इससे पेशाब की मात्रा भी हमेशा अधिक होती है। यूरिक एसिड आदि विप जो पेशाव के साथ शरीर से बाहर निकलता है, उसकी भी मात्रा में वृद्धि हो जाती है। मालिश से दोनों फुसफुसों को भी बहुत लाभ पहुंचता है। नियमित रूप से मालिश करने से श्वांस-प्रश्वांस गहरा होता है और फुस-फुस का आक्सिजन ग्रहण करने तथा कार्बनडाई ओक्साइड को निकाल फेंकने की शक्ति में भी वृद्धि होती है। चमड़े की राह जो पसीना निकलता है उसके साथ भी शरीर के अनेकों विप बाहर निकला करते हैं। मालिश

के परिणाम स्वरूप चमड़े की राह इस पसीने को निकालने की क्षमता सैकड़े ६० प्रति शत बढ़ जाती है (Otto Juettner, M. D., Ph. D.—A Treatise on Naturopathic Practice, P. 269)। इसके अलावे मालिश के फलस्वरूप चमड़े का स्वास्थ्य विशेष रूप से उन्नत हो उठता है और शीत वगैरह लग जाने से रोग होने की सम्भावना जाती रहती है।

शरीर के आत्मरक्षा और गठन मूलक यन्त्र इसके प्रभाव से विशेष रूप से सबल हो उठते हैं। केवल मात्र खून ही रोगों से बचने में हमारा प्रधान सहायक है। नियमित रूप से मालिश करने से खून के सफेद और लाल रक्तकण दोनों की ही वृद्धि होती है और शरीर में खून पैदा करने की जो व्यवस्था है वह उद्दीप्त हो उठती है। मालिश के फलस्वरूप पाकस्थली की ताकत विशेष रूप से बढ़ जाती है। इसके प्रभाव से परिपाक करने वाले यन्त्र काफी मात्रा में पाचक रस पैदा करने में समर्थ होते हैं। इसी कारण मालिश से पाचकशक्ति बढ़ जाती है। इसके द्वारा आँतों और शरीर के सभी यन्त्रों की पुष्टि की क्षमता बढ़ जाती है। इसलिये नियमित रूप से मालिश करने से सारा शरीर ही पुष्ट हो उठता है।

लिवर के काम करने की शक्ति बढ़ाने में मालिश प्रधान सहायक है। विभिन्न रूपों से लिवर जो शरीर की नियमित सेवा किया करता है, मालिश से उसके इस काम करने की शक्ति में वृद्धि हो जाती है। मालिश से हृदय बड़ी तेजी से सबल हो उठता है और साथ साथ कमजोर नाड़ियों में रक्त का संचालन पूर्ण हो उठता है।

इस प्रकार मालिश के फलस्वरूप जिस प्रकार शरीर के विकार बाहर निकाल फेंकने वाले यन्त्र उद्दीप्त हो उठते हैं, उसी प्रकार दूसरी ओर शरीर के आत्मरक्षा और गठनकारी यन्त्र भी सबल हो जाते हैं। इसी कारण मालिश कराने के फलस्वरूप रोगों के प्रतिरोध करने की शरीर की शक्ति बढ़ जाती

है, बहुत रोगों से नीरोग हुआ जा सकता है, जवानी अधिक दिनों तक बनी रहती है, बुढ़ापा रुका रहता है और लम्बी उम्र प्राप्त होती है।

इसी लिये कहा जाता है, "सौ लड़त न एक मलत"—अर्थात् सैकड़ों कुश्तीगोर एक मालिश कराने वाले का मुकाबिला नहीं कर सकते।

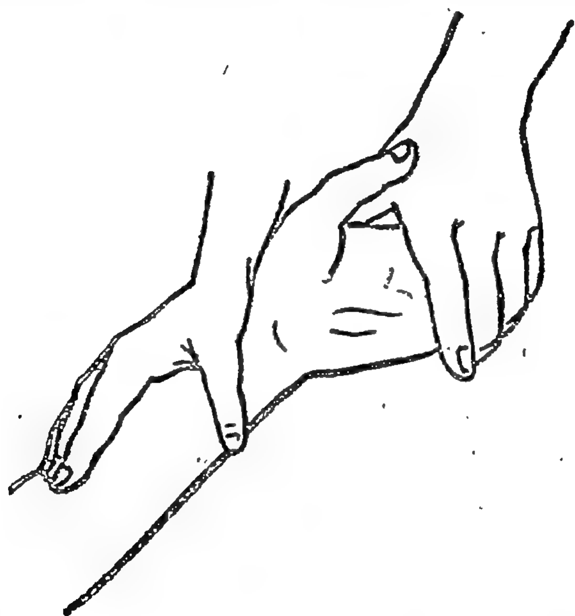
[२]

शरीर की मांस-पेशियों के साथ खेला करने का नाम ही मालिश है। किन्तु यह एक ही तरह से नहीं होता। भिन्न-भिन्न प्रकार से शरीर को थप-थपा कर और चमड़े पर विभिन्न तरीकों से हाथ फेर कर मालिश किया जाता है। कभी चमड़े पर केवल हाथों को रगड़ना होता है तो कभी इस पर केवल मात्र कंपन उत्पन्न करना होता है। कभी मुलायम हाथों से थप-थपाना होता है। इन सभी विभिन्न प्रणालियों द्वारा अलग अलग उद्देश्य पूर्ति की चेष्टा की जाती है और इसी प्रणाली भेद के कारण इसके अलग अलग नाम दिये जाते हैं।

मालिश के अनेकों विभिन्न भेद होने पर भी इसे हम मुख्य पांच भागों में विभक्त कर सकते हैं। मालिश की इन विभिन्न विधियों का नाम घर्षण (friction), दलन (kneading), कंपन (vibration), चटकी, थपकी (percussion) और ग्रन्थि-संचालन (joint movement) है।

मालिश की इन विभिन्न प्रणालियों में घर्षण ही सर्वश्रेष्ट विधि है। एक ही रोगी को विभिन्न प्रकार से मालिश करने पर हरेक प्रकार के विभिन्न मालिश के बाद एक बार घर्षण (रगड़) कर लेना आवश्यक है। एक या दोनों हाथों को किसी अंग विशेष पर रख कर चमड़े पर जरा दबाकर इसे सामने की तरफ रगड़ने को घर्षण कहते हैं। इस प्रकार हाथ चलाते समय हमेशा हाथ को घुमाते-घुमाते आगे बढ़ाना चाहिये। इसकी गति

बहुत अंशों में पृथ्वी की गति की तरह होनी चाहिये। पृथ्वी जिस प्रकार चक्कर काटते आगे बढ़ती है ठीक उसी प्रकार हाथ को भी घुमाते-घुमाते ऊपर की तरफ ले जाना चाहिये। घर्षण करते समय हमेशा इस बात का ध्यान रहना चाहिये कि मानो इस घर्षण द्वारा खून को खींच कर नीचे से हृदय की ओर भेजा जा रहा हो। घर्षण के अन्त में हमेशा हाथ का जोर जरा बढ़ जाना



घर्षण

चाहिये, पर घर्षण कभी भी खूब जोर का नहीं होना चाहिये। घर्षण करते समय हमेशा ही हाथ की गति तेज होनी उचित है। किसी अंग को घर्षण करते समय एक या दोनों हाथ रोगी के शरीर के साथ लगे रहने चाहिये। पर हड्डियों को पार करते समय रोगी को तकलीफ न पहुंचे इस ओर भी ध्यान रहना उचित है। व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये कि ऐसे स्थान पर कोमल

हल्के हाथ शरीर को स्पर्श करते हाथ को बढ़ाना चाहिये। हर बार के घर्षण के अन्त में हाथ जब अंग की अन्तिम सीमा पर पहुँच जाय तो हाथ को फिर उल्टे न घुमा कर हाथ शून्य में ले जा कर फिर घर्षण शुरू करना चाहिये। जिस किसी अवस्था में ही मालिश करनी हो, उसी में ही घर्षण का प्रयोग किया जा सकता है। तौ भी वातरोग, गठिया (gout), शोथ, लकवा (paralysis), अंगों का सूख जाना (atrophy), गाठों की सूजन और स्नायु शूल आदि में घर्षण से बहुत ही लाभ होता है।

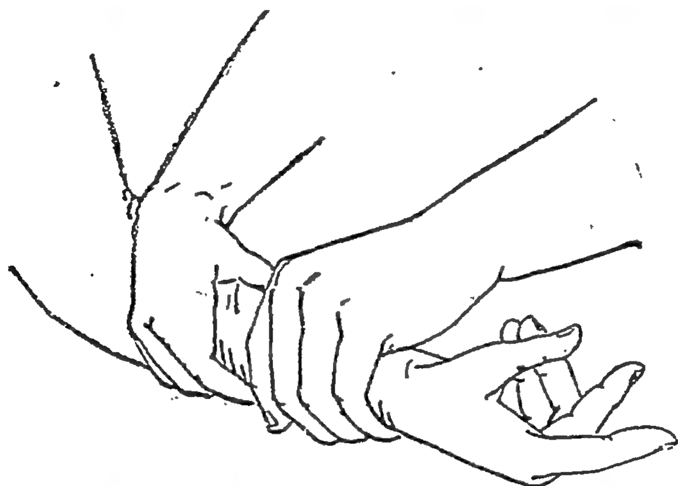
घर्षण के बाद ही दलन (kneading) का स्थान है। शरीर की विभिन्न मांस पेशियों को पकड़ कर दबाना ही दलन है। यह जोर का



हाथ का दबाव

और हल्का दो तरह का हो सकता है। हल्का दलन में दोनों हाथों की उँगुलियों से किसी स्थान के केवल मात्र चमड़े को उठा कर पकड़ करके उँगलियों को चलाना होता है। इसे उँगलियों का चाप (fulling) कहा जा सकता है। इसमें ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर, वृत्ताकार ढंग से और कभी कभी पास पास से कोना कोनी चलाते जाना होता है। पोलियो और शोथ रोगों में इसके प्रयोग से विशेष लाभ होता है।

जोरदार दलन कई प्रकार का होता है। हाथ पांव के दबाने को भी इसी के अन्तर्गत रख सकते हैं। दोनों हाथों से हाथ या पांव आदि की मांस पेशियों को खींच कर पकड़ करके दबाने को हाथ का दबाव (petrissage) कहते हैं। घर में सभी हाथ पांव दबवाते हैं। किन्तु नियमानुसार इसी को करने के लिये मांस पेशियों को दोनों हाथों से पहले मुट्ठी में पकड़ कर जोर से दबाना होता है। इसके बाद खींच और पकड़ कर प्रसारित करने की चेष्टा करनी होती है। जब कभी इसका प्रयोग हड्डी पर

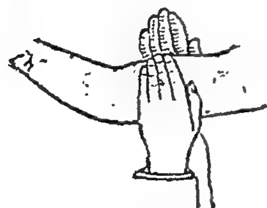


मरोड़

करना होता है, तब हड्डी से मांस अलग करने की सी चेष्टा करनी होती है। इसी प्रकार हरेक स्थान को धीरे धीरे तीन से चार बार तक दबाकर उसके बाद उसके पास के दूसरे स्थान की मांस पेशी को खींचना चाहिये। किन्तु दलन के समाप्त होने के साथ ही उस अंग विशेष पर दो तीन बार घर्षण (friction) का प्रयोग करने के बाद अन्य स्थान पर इस प्रक्रिया का प्रयोग होना चाहिये।

मरोड़ (ringing) दलन का ही एक विशेष अंग है। इसका प्रयोग दोनों हाथों से करना होता है। इसके इस्तेमाल करते समय मालिश करनेवाले के हाथों के दोनों अँगूठे रोगी के अङ्ग विशेष की एक ओर तथा अन्य उँगलियां दूसरी तरफ रहती हैं। इसके बाद एक हाथ को आगे बढ़ाकर और दूसरे हाथ को उसके पीछे उठाते हुए रोगी के हाथ पांव और छाती आदि अङ्गोंको क्रमशः बारी बारी से दबाना चाहिये। यह प्रयोग क्रमशः पास पास के अङ्गों पर होना चाहिये। साधारणतया इसे बगल या उरु संधि से आरम्भ करके, हाथ या पैरों की एड़ी तक चलाना होता है। किन्तु नीचे से ऊपर की ओर इसका संचालन करने में कोई आपत्ति नहीं। मरोड़ का प्रयोग कभी भी जल्दी-जल्दी नहीं करना चाहिये। इस बात का विशेष ध्यान रहना चाहिए कि इस प्रकार अंग दबवाते समय रोगी को कोई कष्ट न होने पावे।

पीसने (rolling) को भी दलन की ही श्रेणी में रख सकते हैं। इसका प्रयोग साधारणतया हाथ और पैरों पर ही किया जाता है। रोगी के हाथों को कंधे पर रखकर या किसी प्रकार ऊँचा कर के पकड़ कर बगल से कुहिनी की ओर पीसन आरम्भ करना होता है। हाथ की उँगलियों को खींच व पकड़ कर के उनके द्वारा मांस पेशी के ऊपर से हड्डियों को दबाना होता है। इसके बाद दोनों हाथों को एक ही साथ आगे या पीछे करने के साथ-साथ ऊपर से नीचे की ओर संचालित करना होता है। सभी प्रकार की अन्य मालिशों की तरह ही इसके अन्तमें भी दो-तीन बार नीचे से ऊपर की तरफ मर्दन का प्रयोग करना चाहिये।



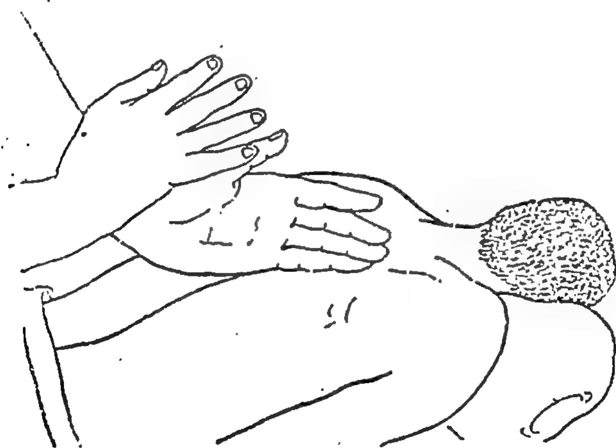
पीसन

घर्षण की तरह ही दलन भी बहुत अवस्थाओं में व्यवहृत किया जाता है। तौभी स्नायविक दुर्बलता अंगों के सूखने, पक्षाघात, चर्बी की अधिकता कोष्ट बद्धता, गठिया, स्नायुशूल, साइटिका और स्नायविक दुर्बलता आदि में दलन से विशेष लाभ पहुंचता है।

मर्दन चिकित्सा में कम्पन (vibration) का एक विशिष्ट स्थान है। उंगलियों, तलहटी या सारे हाथ से शरीर के विभिन्न स्थानों में कंपन उत्पन्न किया जाता है। जब केवल उँगलियों से ही कम्पन उत्पन्न किया जाता है, तब उसे उँगली कम्पन (point vibration) कहते हैं। जब हाथ को तलहटी से यह प्रयोग किया जाता है तब हाथ कंपन (flat-handed vibration) कहते हैं। कभी-कभी हाथ की मुट्ठी से शरीर के विभिन्न भाग को कसकर दबा करके कंपन उत्पन्न किया जाता है। इसे डोलन (shaking) कहते हैं। कभी-कभी हाथ को एक ही स्थान पर रख कर कम्पन उत्पन्न किया जाता है। इसे स्थिर कम्पन (static vibration) कहते हैं। कभी-कभी कंपन उत्पन्न करते समय हाथ को तेजी से दौड़ा ले जाते हैं। इसे गतिमय कम्पन (running vibration) कहते हैं।

इन सभी प्रकार के कम्पनों में हाथ की तलहटी को कड़ा करके रोगी के शरीर के किसी अंश पर दबाकर रख करके अथवा हाथ की उंगलियों से किसी स्थान के चमड़े या मांस को पकड़ कर हाथ को इस प्रकार हिलाना चाहिये कि उक्त स्थान पर कंपन उत्पन्न हो। ऐसे समय जहां तक सम्भव हो तेजी से हाथ हिलाना चाहिये। ये सभी प्रकार के कंपन दो तरह के होते हैं। गहरा (deep) और हल्का (superficial)। किन्तु गहरे कम्पन में मुट्ठी बांधकर हाथ से या तलहटी से शरीर के किसी अंश को विशेष रूपसे खींचकर पकड़ करके जोर से कम्पन उत्पन्न करना होता है।

स्नायुओं को उद्दीप्त करने में गहरा कम्पन विशेष सहायता पहुंचाता है। इसी कारण स्नायविक दुर्बलता का यह एक बहुत बढ़िया इलाज है। भीतर के विभिन्न यन्त्रों पर इसके प्रयोग से ये यन्त्र विशेष रूपसे उद्दीप्त हो उठते हैं। इसी कारण छाती, पेट, पाकस्थली और लिवर आदि यन्त्रों पर विशेष रूपसे इसका प्रयोग किया जाता है। रक्त शून्यता में हाथ और पांव पर इसका प्रयोग किया जाता है। इससे अस्थिमज्जा के भीतर रक्त उत्पन्न करने की व्यवस्था में उन्नति होती है। हलका कम्पन उत्तेजना के स्थान पर स्नायुओं को स्निग्ध करता है। इसी कारण स्नायुशूल आदि में इसका इस्तेमाल होता है। पेट की अफ़रन को रोकनेका यह एक उत्तम साधन है (Mary V. Lace—Massage and Medical Gymnastics, P. 29-31)।

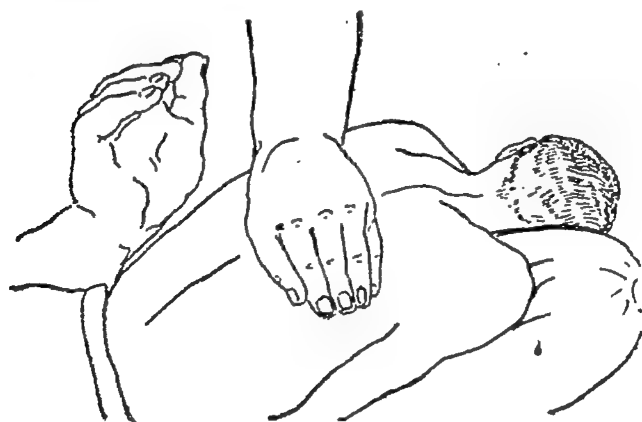


खड़ी थपकी

थपकी (percussion) भी एक प्रकार की उत्तम मालिश है। मालिश की इस विधि पर हमेशा ही जोर दिया जाता है। दोनों हाथों

या उंगलियों से आराम देह ढङ्ग से शरीर के विभिन्न स्थानों को थपथपाने को थपकी कहते हैं। इसके कई भेद होते हैं। हाथ को फैलाकर तथा उसे कड़ा करके शरीर के मांसल स्थान के ऊपर आघात करते हैं। इसे थपकी (spatting) कहते हैं। स्नान करने के बाद शरीर को शीघ्र गरम करने के लिये नितम्ब आदि स्थानों पर इसका प्रयोग करने से शरीर शीघ्र गरम हो उठता है।

कभी-कभी दोनों हाथों को सीधा खड़ा करके उनके दोनों बगल से

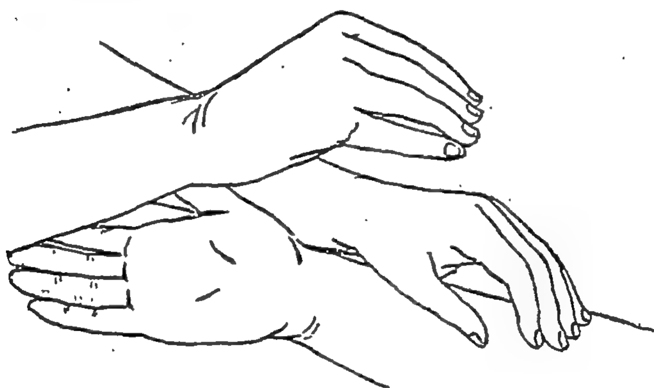


कटोरी थपकी

थपथपाया जाता है। तब इसे खड़ी थपकी (hacking) कहते हैं। हड्डी पर इसका कभी प्रयोग नहीं करना चाहिये।

कभी-कभी दोनों हाथों को कटोरे की तरह करके थप-थपाना चाहिये। तब इसी कटोरी थपकी (clapping) कहते हैं। इसमें दोनों हाथों को साथ-साथ चलाना होता है। एक हाथ के गिरने के साथ दूसरा हाथ उठ जाता है। इसका प्रयोग प्रायः मांसल स्थानों पर होता है। किन्तु अजीर्ण रोग में पेट पर इसका प्रयोग करने से बहुत लाभ हो सकता है।

अमेरिका के एक डाक्टर अजीर्ण के रोगियों को गारन्टी देकर चंगा किया करते थे। रोगियों से प्रतिज्ञा करा लिया करते कि चिकित्सा के जादू के बारे में वे किसी से भी कुछ नहीं कहेंगे। उनकी चिकित्सा से बहुतों को बड़ा लाभ हुआ और इस प्रकार उन्होंने बहुत धन कमाया। अन्त में एक दिन यमराज के यहां से उनका बुलावा आया। तब मरने के पहले वे कहते गये कि उनकी चिकित्सा और कुछ नहीं; केवल सुबह शाम प्रति दिन पेट पर कटोरी थपकी का प्रयोग मात्र थी (Alao—Every-day Ailments and their Treatment at Home, P. 51)।



ठोकना

कभी-कभी हाथों को पंजे की तरह करके उँगलियों के अग्रभाग से शरीर पर आघात किया जाता है। इसे ठोकना (tapping) कहते हैं। इसका प्रयोग करते समय दोनों हाथों को एक साथ चलाना आवश्यक है और आगे और पीछे हाथों का संचालन करते हुए हाथ के दोनों पंजों को बार-बार उठाना और गिराना चाहिये।

मुक्की (beating) थपकी का एक प्रकार भेद मात्र है। इसमें दोनों

हाथों की आधी मुट्ठी बांधकर उससे शरीर के मांसल स्थान पर आघात करना होता है। इस समय दोनों हाथों को पट रखना चाहिये।

दोनों हाथों को खड़ा रख कर जब उनसे मुक्कीमारी जाती है, तब इसे खड़ी मुक्की (pounding) कहते हैं। इसमें दोनों हाथों की मुट्ठी बंधी नहीं होनी चाहिये, अधखुली अवस्था में रखना ठीक होता है।

इन विभिन्न प्रकारों के थपकी के प्रयोग से शरीर को तरह तरह से ला॥ पहुँचता है। खास कर पीलिया रोग, पुराने स्नायु शूल, पाकस्थली की कमजोरी, कोष्ठ-बद्धता, स्त्रियोंके मासिक रुकावट, पुरानी ब्रांकाइटिज एवं मुत्राशय तथा प्रजनन यन्त्रों की कमजोरी आदिमें इस प्रकार की मालिश से विशेष रूप से लाभ पहुँचता है। चूतड़ पर मुक्की और थपकी के प्रयोगसे कमजोर प्रजनन यन्त्रादि विशेषरूप से बलवान हो उठते हैं। इसी कारण पुराने रोम देश वाले स्त्रियों के बन्ध्यापन और पुरुषों की जननेन्द्रिय की अक्षमता दूर करने के लिये चूतड़ पर मुक्की का प्रयोग किया करते थे (J. H. Kellogg, M. D.—The Art of Massage)।

जोड़ो का सञ्चालन (joint movement) भी मालिश का एक प्रधान अंग है। साधारणतया इसका दो तरह से प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी मालिश करने वाला रोगी के विभिन्न जोड़ों को इच्छानुसार टेढ़ा और खींचा तानी करता है और कभी अंगों को टेढ़ा मेढ़ा या खींचा तानी करते समय रोगी हल्की सा बाधा (resistance) डालती है। जो रोगी बिलकुल कमजोर हों, उनका संधि सञ्चालन (जोड़ों का चलाचल) पहले बताये ढंग से होना चाहिए। किन्तु जैसे-जैसे उनमें ताकत आती जाये सन्धि सञ्चालन के समय उन्हें भी धीरे-धीरे बाधा डालना शुरू करना चाहिये। इससे गाँठ और जोड़ों की शक्ति बढ़ती है। किन्तु हमेशा ही इसकी मात्रा धीरे धीरे (graduated) बढ़ायी जानी चाहिये। पर इस बात पर

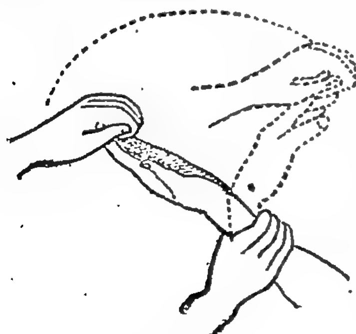
विशेष ध्यान रहना चाहिये कि रोगी कभी भी अत्यधिक शक्ति का प्रयोग न करने पावे। ऐसा होने से विशेष नुकसानी की सम्भवना रहती है।

मालिश की अन्यान्य विधियों की तरह संधि सञ्चालन भी विभिन्न प्रकार से किया जाता है। इनमें संधि-घुणन (गांठ घुमाना—rotation), संधि-प्रसारण (stretching) और संधि भङ्ग (felexion) मुख्य हैं। हाथ और पैरों की अंगुलियों के जोड़ों को मालिश के पहले ही कई एक वार घुमा फिराकर उन्हें खींचना चाहिये। और दूसरे वड़े-वड़े जोड़ों को भी साधारणतया मालिश के अन्त में घुमाना फिराना तथा खींचना होता है। कलाई, केहुनी, हाथ के जोड़, ठेहुन, उरु-संधि आदि को संचालन करना होता है। संधि-सञ्चालन के समय विभिन्न जोड़ों को खूब धीरे-धीरे खींचना चाहिये। किन्तु खींचने के वाद ही तुरत जोड़ों को छोड़ दिया जाता है। हाथ का



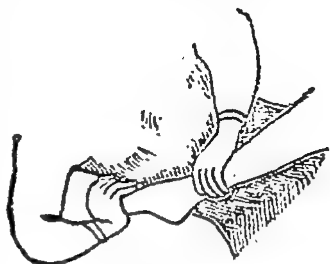
गांठ घुमाना

मणिन्वध, केहुनी और पैरों के घुटने और उरु-संधि हमेशा मालिश के वाद मोड़ लेना चाहिए। मोड़ने के पहले उन्हें खींचकर फैला लेना होता है फिर मोड़ना उचित है। जोड़ों को मोड़ते समय रोगी चाहे तो वाधा (resistance) प्रयोग कर सकता है। संधि-संचालन हमेशा जोड़ों के स्वास्थ्य को



संधि भंग

उन्नत करता है। तरह-तरह के पुराने रोगों में जब जोड़ों के हिलने डुलने में बाधा उत्पन्न होती है तब संधि-सञ्चालन से बड़ा लाभ होता है। इसी कारण वात रोग गठिया आदि में इसका विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। परन्तु बहुत अधिक कमजोरी होने पर, ज्वर की अवस्था में, जोड़ों के नये दर्द में, भारी हृदय रोग या ब्लडप्रेसर में सन्धि सञ्चालन के समय रोगी द्वारा किसी प्रकार की बाधा प्रदान करने की बात ही नहीं उठती।



संधि प्रसारण

[३]

मालिश आरंम्भ करते समय सर्व प्रथम हाथ और पैरों की मालिश करनी चाहिये। इसके बाद धीरे-धीरे धड़ (trunk) की ओर बढ़ना उचित है। हाथ और पैरों की मालिश समाप्त हो जाने पर छाती, पेट, लिवर, पैरोंका पिछला भाग, चूतड़ और पीठको क्रमशः बारी-बारी से मालिश होनी चाहिये।

इस सभी अङ्गों की मालिश करते समय, जिस स्थान पर जिस प्रयोग की सुविधा हो, उसीका उस स्थान विशेष पर प्रयोग करना चाहिये। हाथों की मालिश में पहले हथेली की मालिश करनी होती है। पहले हरेक अंगुली को दो-तीन बार घुमा फिरा कर उसे दो-तीन बार खींचना चाहिये। इसके बाद मणिवन्ध (कलाई) को तीन चार बार चारों ओर घुमाकर तीन चार बार खींचा जाना उचित है और इसके बाद तीन-चार बार आगे-पीछे मोड़ देना चाहिये। इसके बाद रोगी की सभी उंगुलियों को इकट्ठा पकड़ कर पंजे पर आरामदेह तरीके से दो-तीन बार दबाना चाहिये। इसके बाद हथेली को

फैलाकर इसकी दोनों ओर दोनों हाथ रखकर कुछ क्षण तक उसे मालिश कर देने से ही इसके मालिश की समाप्ति हो जाती है।

फिर बांहु की मालिश शुरु करनी चाहिये। इस समय पहले कलाई से केहुनी तक को नीचे से ऊपर की ओर कई एक बार मालिश करनी उचित है। इसके बाद इस भाग पर उंगुलियों द्वारा दबाना (fulling), ठोकर (tapping), कंपन (vibration), हाथ का दबाव (petrissage), खड़ी मुक्की (pounding), पीसन (rolling), मरोड़ (ringing), खड़ी थपकी (hacking) और गाठों का संचालन (joint movement) का बारी-बारी से प्रयोग होना चाहिये। किन्तु एक ही समय विभिन्न प्रकार के मालिश करते समय हर-एक नये प्रकार के प्रयोग करने के बाद दो-तीन बार उस अंगका घर्षण करके दूसरा प्रयोग आरम्भ करना चाहिये।

इसी प्रकार बारी-बारी से दोनों हाथों की मालिश करने के बाद पैरों की मालिश करनी होती है। पैरों की मालिश भी ठीक हाथों की मालिश के समान ही होनी चाहिये।

छाती की मालिश करते समय भी, अन्य स्थानों ही की तरह रगड़न के साथ मालिश आरम्भ करनी होती है। छाती की मालिश की एक विशेष पद्धति है। रोगी के बगल में दाहिनी ओर खड़े होकर छाती की घर्षण (रगड़न) करना होता है। पहले रोगी की छाती पर दोनों हाथ रखकर एक हाथ बगल में जहां तक जाये, तहां तक दबाये हुए फैलाना चाहिये और दूसरे हाथ से ठीक उसकी उल्टी दिशा में उसी भांति खींच ले जाना चाहिये। फिर हाथों को बिना उठाये हुए ही उसी प्रकार दोनों बगल की ओर अलग-अलग खींच कर ले जाना जरूरी है। इसी प्रकार गले से लेकर पंजर के अन्तिम भाग तक ले जाना होता है। इसके बाद रोगी की

छाती पर अंगुलियों का दवाव, थपकी, कंपन, खड़ी थपकी आदि प्रयोगों का व्यवहार करना चाहिये। किन्तु यदि रोगी का वक्षस्थल वहुत मांसल हो तभी विभिन्न प्रयोगों की आवश्यकता पड़ती है और सभी अवस्थाओं में सभी प्रकार की मालिश इस ढङ्ग से होनी चाहिये कि रोगी के शरीर में किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे।

छाती के वाद पेट की मालिश होनी चाहिये। पेट की मालिश करने का यह नियम है कि यह भोजन के कमसे-कम तीन घंटे वाद किया जाये। पेट की मालिश करते समय इस वात का भी ध्यान रहना चाहिये कि उस समय मुत्राशय खाली रहे। रोगी के दोनों जंघों के नीचे एक तकिया रखकर, दोनों पावों को ऊंचा करके इस मालिश का उपयोग होना उचित है। पेट की मालिश करने के पहले रोगी को चाहिये कि कई एक वार स्वांस प्रस्वास का व्यायाम कर ले। इसकी भी मालिश घर्षण (रगड़न) से आरम्भ होनी चाहिये। पहले पहले पेट की दाहिनी ओरके नीचे से मालिश आरम्भ करके हाथ को घुमाते हुए नाभी के चारों ओर घर्षण करना आवश्यक है। साधारणतया जिस मार्ग से वड़ी अंतड़ी (colon) गयी है उसी मार्ग का अनुसरण कर घर्षण आरम्भ करना चाहिये। किन्तु ऐसा करते समय हाथ की उंगलियों को इस प्रकार इधर उधर संचालित करना होता है जिससे रोगी के पेट के सारे भाग के ऊपर ही हाथ चला जाता है। घर्षण करने के वाद रोगी के पेट के ऊपर उंगलियों का दवाव, थपकी, कंम्पन, गहरा दलन, खड़ी मुक्की, थपथपाना और खड़ी चटकी आदि का प्रयोग करना चाहिये। पेट पर गहरे दलन का प्रयोग करते समय आटा जिस प्रकार गूंथा जाता है—ठीक उसी भांति सारे पेट का गुन्थन होना चाहिये। पर यह आरामदेह ही होना चाहिए। मँदाग्नि (slow digestion) और कोष्टवद्धता को दूर करने के लिये यह आश्चर्यजनक तरीका है (J. H. Kellogg, M.D.—The Home Hand-book of Domestic Hygiene

& Rational Medicine, P. 715)। पेटके भिन्न भिन्न स्थानों पर स्थिर कम्पन के प्रयोग से भी बहुत लाभ पहुँचता है। पेट के वायु विकार को दूर करने का यह बड़ा ही अच्छा उपचार है। इसके अलावे पेट की उपरोक्त सभी मर्दन विधियां अंतड़ियों की परिपाक और परिशोधन की क्षमता में वृद्धि करती हैं। किन्तु कई एक अवस्थाओं में पेट की मालिश बिलकुल मना है। पतले दस्त, आंव गिरने, पाकस्थली के घाव, ब्लड प्रेसर में अत्यधिक वृद्धि होने पर, अन्त्रपुच्छ प्रदाह रोग (appendicitis), पेट में किसी प्रकार की गांठ (tumour) होने, हार्निया रोग और स्त्रियों के रजस्वला होने की अवस्था में तथा गर्भ की अवस्था में पेट की मालिश वर्जित है।

यकृत की मालिश आरम्भ करनेके पहले भी पांच छः बार श्वास प्रश्वास का व्यायाम कर लेना जरूरी है। इसके बाद यकृत के स्थान के ऊपर हाथ घुमा घुमा कर घर्षण का प्रयोग होना चाहिए। पेट की मालिश से ही यकृत की बहुत कुछ मालिश हो जाती है। तौभी यकृत को पूरी तरह से प्रभावित करने के लिए यकृत के चारों ओर और पीठ के कुछ भाग तक मालिश करनी जरूरी है। अन्य स्थानों की मालिश की ही भांति यकृत पर घर्षण के बीच बीच में थपकी, उंगलियों का दबाव, कंपन, गहरा मथन, खड़ी मुक्की और खड़ी चुटकी आदि का प्रयोग करते जाना चाहिये। यकृत की मालिश के समय दोनों पैरों को उठाकर सिर को एक ऊंचे तकिये पर रखना चाहिए। नियमानुसार यकृत की मालिश करने से पतलापन, खून की कमी, पुराना पीलिया रोग और लिवर की कमजोरी आदि में बहुत ही लाभ पहुँचता है। किन्तु लिवर के फोड़ा या लिवर के कैन्सर में इसका प्रयोग बिलकुल न होना चाहिये।

सामने की मालिश समाप्त हो जाने के बाद रोगी को उलटा कर सुला देना चाहिए। तब दोनों पैरों के पिछले भाग पर भी ठीक सामने की ही तरह मालिश करके चूतड़ पर मालिश आरम्भ करनी चाहिये। पहले ही

चूतड़ पर घर्षण का प्रयोग होना उचित है। इस समय दोनों चूतड़ों पर दोनों हाथों को रखकर इस प्रकार रगड़ना चाहिये कि चूतड़ लाल और गरम हो उठें। अन्य दूसरे अंगों की मालिश के ही समान घर्षण के साथ-साथ थपकी आदि सारे प्रयोगों का व्यवहार होना चाहिये। इसके अलावे मुक्की आदि जोरदार मालिश के लिये यह सबसे अधिक उपयुक्त अंग है। चुतर और जंघोंकी मालिश में काफी जोर लगाना पड़ता है।

पिछले भागकी मालिश में घर्षण का प्रयोग विशेष स्थान रखता है। पीठ की मालिशमें यह हमेशा ऊपर से नीचे को ओर होना चाहिये। सबसे पहले मस्तिष्क के नीचे से आरम्भ करके मेरुदंड के ऊपर से इसके अंतिम भाग तक कई एक वार हाथ से थपथपाना (stroke) चाहिये। हाथोंको वारवार शून्यमें उठा कर उनके द्वारा दवावके साथ क्षणभरके लिये ऊपर से नीचे की ओर घर्षण करने ही से यह प्रयोग हो जाता है। यह भी एक प्रकार की मालिश ही है। आघात के समाप्त करने के वाद मेरुदण्ड की दोनों ओर दोनो हाथोंको रख कर, दोनों हाथों को घुमाते हुए कंधे के पास से चूतड़तक वरावर चलाना चाहिये। इसके वाद रोगी के पैरों की ओर मुँह करके खड़े होकर रोगी के दोनों पंजरों की दोनों ओर ऊपर की तरफ हाथ रखना होता है। पीछे दोनो हाथों को घुमाते हुए पंजर की गति का अनुसरण करके मेरु दण्ड के पास तक लाकर समाप्त करना उचित है। इसी प्रकार चूतड़तक दोनों हाथोंका संचालन करना चाहिये। इसके वाद तर्जनी और मध्यमा दोनों उंगलियों को मस्तिष्कके नीचे रखकर गर्दन के पिछले भागसे मेरु दण्डके अंतिम ओर तक के भाग को वार वार खींचना होता है। इस समय मेरुदण्ड को दोनों ओर उंगलियों से जरा जोर से दवाना चाहिये। इसके साथ रोगी के पिछले भाग पर थपकी, उंगलियों का दवाव, कम्पन, गहरा दलन, मुक्की और खड़ी चटकी आदि प्रयोगों का व्यवहार होना चाहिये (J. H. Kellogg, M. D.—Art of Massage, P. 120-127)।

साधारण अवस्था में इन सभी अंगोंकी मालिश ही को सारे शरीर का पूर्ण मर्दन कहते हैं।

[४]

किन्तु यह बात भी नहीं है कि नियमानुसार मालिश करने ही से हमेशा लाभ होगा। मालिश करते करते हाथों के अभ्यस्त हो जानेपर ही मालिश से असली लाभ हो पाता है।

मालिश करनेवाले का स्वास्थ्य खूब अच्छा होना आवश्यक है। किसी रोगी द्वारा मालिश करानेसे किसी नये रोग के उत्पन्न हो जाने की सम्भावना रहती है। जिनके हाथों से स्वभावतः अधिक पसीना आया करता हो, उन्हें मालिश नहीं करनी चाहिये। मालिशकरने वाले का हाथ यदि कोमल, सूखा और सम-शीतोष्ण हो तो उसे आदर्श हाथ कह सकते हैं।

नये मालिश करनेवाले लोग मालिश करते समय साधारणतया अत्यधिक जोर दिया करते हैं। यह मालिश का एक दोष है। मालिश करते समय कभी भी अत्यधिक शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिये। जो मालिश करने में पटु हैं वे मालिश करते समय कभी भी अधिक जोर नहीं लगाते और बहुत ही कम शक्ति खर्च करते हैं (Geo. H. Taylor, M. D.—Massage, P. 267)।

सभी रोगियों को भी एक समान जोर देकर मलिश नहीं की जा सकती कमजोर रोगी की मालिश खूब हल्के हाथ से होनी चाहिये। जिन रोगियों क मालिश पहले पहल चालू हो उन्हें भी दो एक दिन तक हल्की मालिश ह लेनी चाहिये। इसके बाद मालिश के अभ्यास के बढ़ने के बाद नियमानुस मालिश होनी उचित है।

'अति सर्वत्र वर्जयेत्' के अनुसार अधिक मालिश भी उचित नहीं। मालि हमेशा लाभदायक होने पर भी इसका अत्यधिक प्रयोग कभी भी अच्छा न

होता। बच्चों और बूढ़ों का शरीर जल्दी ही मालिश से गरम हो उठता है। इसी कारण बच्चे और बूढ़ों को बहुत थोड़े काल तक के लिये मालिश करनी चाहिये। सबल व्यक्तियों की मालिश भी अधिक मात्रा में नहीं होनी चाहिये। उनका चमड़ा उससे कुपित (irritated) हो सकता है।

साधारणतया लिवर या पेट आदि केवल एक अंग की मालिश दस से पन्द्रह मिनट तक की ही होनी उचित है। परन्तु सारे देहकी मालिश के लिये आधे घंटे से एक घंटे तक समय की आवश्यकता पड़ती है (Otto Juettner, M. D., Ph. D.—A Treatise on Naturopathic Practice, P. 270)।

मालिश के समय रोगी के शरीरको बिल्कुल ढीला कर लेना आवश्यक है। इसी कारण सारे शरीर को ढीला करके बिस्तार पर पड़े रहना चाहिये। मालिश के समय शरीर को ढीला कर लेने से मालिश से बहुत ही अधिक लाभ पहुंचता है।

साधारणतया सूखे हाथों ही मालिश की जाती है। परन्तु यदि रोगी बहुत ही कृषित हो या उसका चमड़ा खुरदरा हो अथवा रोगी शिशु या अत्यन्त वृद्ध हो तो उनको मालिश तेल से की जा सकती है। इससे शरीर बड़ी फुर्तीसे पुष्ट होता है। हम लोगों का किया हुआ भोजन जिस प्रकार हमारे शरीर के काम आता है उसी प्रकार चमड़े की ऊपर तेल मालिश से भी बहुत कुछ शरीरके काम आती है। जिन लोगोंका लिवर खराब हो, उन्हें कभी भी काफी मात्रा में तेल खाना उचित नहीं। पर रोजाना शरीर में तेल की मालिश करके वे बहुत ही लाभ उठा सकते हैं। इससे परिपाक यन्त्रों को बिना परिश्रम कराये ही शरीर को आवश्यक चर्बी प्राप्त हो जाती है। आयुर्वेद में लिखा है, घृतात् अष्ट गुणं तैलं, मर्दनात् नतु भोजनात्—घीसे तेल में आठगुणा अधिक लाभ है किन्तु मालिश करने में—भोजन में नहीं। साधारणतया बच्चों

और क्षीण शरीर वाले व्यक्तियों को तेल की मालिश सबसे अधिक लाभ पहुँचाती है।

मालिश के लिये साधारणतया जैतून का तेल, सरसोंका तेल, तिल का तैल या कोकोजेम का व्यवहार किया जाता है। इनमें जैतूनका तेल सबसे बढ़िया होता है। यदि रोगी कफ जातीय रोग का शिकार हो तो, उसके शरीर मे कभी कोकोजेमका व्यवहार नहीं होना चाहिये। बल्कि सरसों या काड लिवर औयल का व्यवहार होना आवश्यक है। किन्तु कड़े मिजाजवाले लोगोंको कोकोजेम की मालिश से ही अधिक लाभ पहुँचता है।

किसी किसी अवस्थामें मालिशके लिये पाउडरका व्यवहार किया जाता है किन्तु इससे रोम कूपोंके बन्द होजाने से लाभके बदले हानि ही अधिक होती है (Beatrice M.Goodall Copestake—The Theory and Practice of Massage and Medical Gymnastics, P. 7)। यदि रोगी को बहुत पसीना आता हो तो भिगाकर खूब अच्छी तरह निचोड़ो गमछा से शरीर को खूब पोंछ कर मालिश की जा सकती है।

मालिश करते समय हमेशा रोगी के शरीरको गरम रखने की आवश्यकता है। इसी कारण गर्मी के दिनों को छोड़कर अन्य दिनोंमें रोगी के गले तथा सारे शरीर को एक कम्बल या बिछौने की चादर से ढके रखना आवश्यक है। खासकरके जाड़े के दिनों और वर्षा के समय हमेशा इस नियमका पालन होना चाहिये। इस अवस्था में हर बार रोगी के शरीर के केवल एक एक अंगको खोल कर मालिश करनी चाहिये और मालिश हो जाने पर फिर उस अंग विशेष को पहले की ही तरह ढक देना चाहिये। ऐसा करने से रोगी को ठंड नहीं लग सकती। गर्मी के दिनों को छोड़ और दिनों में रोगी को कभी भी खुली जगह में मालिश नहीं करनी चाहिये। पर मालिश के समय घर के दरवाजे एवं खिड़कियों को हमेशा खुला रखना उचित है। पर इस अवस्था में इस बात का ध्यान रहना चाहिये कि हवा का प्रवाह रोगी पर न पड़े।

साधारणतया मालिश के वाद स्नान कर लेना उचित है। ऐसा करने से स्नान से वहुत लाभ पहुंचता है। क्योंकि स्नान हमेशा शरीर को गरम करके ही करना चाहिये। स्नान के वाद भी सूखे मालिश से शरीर को फिर गरम कर लेना उचित है।

[५]

मालिश से जिस प्रकार स्वास्थ्य में सुधार होता है, उसी प्रकार इससे बीमारियां भी चंगी की जा सकती हैं।

पुराना अजीर्ण रोग किसी भी प्रकार जल्दी अच्छा नहीं होना चाहता। किन्तु यदि नियमानुसार पेट की मालिश की जाये, तो परिपाक की क्षमता बढ़ जाती है और अजीर्ण धीरे धीरे हट जाता है। जब पाकस्थली फूल जाती है या पाकस्थली और अंतड़ियां आदि झूल पड़ती हैं, तब कमजोर यन्त्रों को फिर से अपनी असली हालत में वापिस लाने में मालिश से बढ़ कर दूसरा कोई उपचार ही नहीं।

पित्त पथरी का भी यह एक वढ़िया इलाज है। पित्त पथरी में पित्त कोष को खाली कराना ही मुख्य बात है। पित्त कोष की मालिश से पित्त नीचे उतर कर आसानी से अंतड़ियों में चला जाता है। इसी कारण मालिश से पित्त पथरी रोग में बड़ा ही फायदा होता है।

सभ्य समाज में आये दिन ऐसे वहुत ही कम आदमी हैं जो कब्जियत के शिकार न हों। पर केवल पेट की मालिश से ही पुराना से पुराना कब्ज गायब हो सकता है। क्योंकि अंतड़ियों की कृमि गति को बढ़ाने में मालिश से बढ़ कर निर्दोष उपाय इस धरातल में शायद ही दूसरा नहीं।

अर्श (ववासीर) रोग में मालिश से विशेष लाभ पहुँचता है। इस रोग में लिवर और पेट की मालिश के साथ-साथ मल द्वार की भी मालिश जरूरी है। दिन में दो वार पाखाना जाने के वाद मल द्वार में करीव एक इंच तक

उङ्गली घुसाकर ऊपर से पानी ढालकर इस स्थान को साफ करने के साथ साथ आधे मिनट तक घर्षण करना चाहिये।

विभिन्न स्नायविक रोगों में मालिश से बहुत ही लाभ होता है। अनिद्रा रोग में मालिश एक प्रधान चिकित्सा है। बहुत अवस्थाओं में केवल पैरों को दबाने मात्र से ही थोड़ी ही देर में नींद सी आ जाती है। मालिश के फल स्वरूप स्नायविक उत्तेजना और सभी तरह की शारीरिक और मानसिक थकान शीघ्र गायब हो जाती है। इसी कारण मालिश से अनिद्रा दूर होती है।

दर्दमें मालिश हमेशा लाभदायक होता है; स्नायु शूल और साइटिका आदि बहुत अवस्थाओंमें केवल मालिश से ही कम हो जाते हैं। पक्षाघात रोग में भी मालिश सफलतापूर्वक कराई जा सकती है।

ब्लड प्रेसर में तो यह बड़ा ही लाभ पहुंचाता है। कुछ दिनोंतक मालिश कराने ही से धीरे धीरे यह कम होने लगता है। जिन्हें ब्लड प्रेसर के बढ़नेका डर हो, उन्हें बीच बीचमें कुछ दिनों के लिये अवश्य मालिश कराते रहना चाहिये। ऐसा करनेसे खून ले जाने वाली नलियां की हालत कभी भी बिगड़ने नहीं पाती। इसके फल स्वरूप ब्लड प्रेसर रोग का होना ही प्रायः असम्भव हो जायेगा।

पुराने मलेरियामें भी हमेशा मालिश कराना उचित है। मालिश के फलस्वरूप खून के भीतर श्वेत कणिकाओंकी वृद्धि होती है और ये मलेरिया के कीटाणुओंका नाश कर डालते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि स्वाभाविक रीति से मलेरिया दूर हो जाती है।

मालिश के कारण शरीर की दहन क्रिया विशेष रूपसे बढ़ जाती है जिस के फल स्वरूप वात, मधुमेह, चर्बी का बढ़ना आदि बीमारियाँ जो इस दहन क्रिया की कमी के कारण (deficient oxidation) उत्पन्न होती हैं उनका उत्पन्न होना जिस प्रकार असम्भव होता है, उसी प्रकार दहन क्रिया के

बढ़ जाने के कारण ये सभी रोग भी धीरे धीरे घटने लगते हैं। वात रोग में मालिश करने से दर्द घट जाता है, स्फीति आरोग्य हो जाता है। अंगों की शुष्कता जाती रहती है, और अंगों की गतिशीलता फिरसे बढ़ जाती है। मधुमेह रोग में मालिश के कारण शरीर के अन्दरकी बहुत सी चीनी भस्म हो जाती है और पेशाब से चीनी की मात्रा कम होने लगती है। चर्बी बढ़ने की बीमारी में भी मालिश कराने से शरीर में इकट्ठी हुई चर्बी शीघ्र ही गायब हो जाती है। साधारणतया कई एक दिनके भीतर ही बहुत कुछ चर्बी घट जाती है। इसके बाद धीरे-धीरे चर्बी घटने लगती है।

किन्तु मालिश यद्यपि शरीरके लिये अनेकों तरह से लाभदायक है, तोभी सभी प्रकार के रोगियों की ही मालिश नहीं की जा सकती या यों कहिये कि सभी अवस्थाओं में मालिश नहीं होनी चाहिये।

बुखार रहने पर रोगी को कभी भी मालिश नहीं करनी चाहिये। साधारण-तया शरीर का ताप ९९° से अधिक होने पर तो मालिश हर्गिज नहीं होनी चाहिये। पर राजयक्ष्मा (थाइसिस) और प्लूरिसी आदि रोगोंमें जब ज्वर न हो, तब मालिश का प्रयोग किया जा सकता है।

चर्म रोग रहने पर कभी भी मालिश नहीं करानी चाहिये क्योंकि चर्म रोग पर मालिश करने से यह और भी फैलता जाता है। यदि कहीं टयूमर (चक्का) हो तो उक्त स्थानको सावधानी से बचाकर मालिश होनी चाहिये। निर्दोष टयूमर मालिश करने से वह कभी कभी कैंसर का रूप धारण कर लेता है। चमड़े पर फोड़ा फुंसी, घाव आदि के रहने पर मालिश के वक्त उन स्थानों को सावधानी से बचाते जाना चाहिये।

———

उनविंश अध्याय

पथ्य और आरोग्य

बीमारी की हालत में पाकस्थली की पाचन-शक्ति बहुत कुछ कम हो जाती है। यदि वह खाद्य किसी प्रकार परिपाक पा भी जाये, तो भी शरीर के भीतर जाकर यह पूरो तौर से शरीर के काम नहीं आता। बीमारी के समय शरीर के भीतर जो विष का स्तोत्र छूट पड़ता है, वह जिस प्रकार पाकस्थली आदि के परिपाक की क्षमता में कमी कर देता है, उसी प्रकार वह शरीर के कोषों को भी इस प्रकार अर्ध चेतन कर देता है कि उनके सामने खाद्य पदार्थ के उपस्थित रहने पर भी ये उसे अच्छी तरह ग्रहण नहीं कर पाते। तब खाद्य पदार्थ शरीर के काम न आकर इसके लिये विषाक्त पदार्थ के ही रूप में परिणत हो जाता है। उस समय यह शरीर की शक्ति को बढ़ाने के स्थान पर रोग की ही शक्ति को बढ़ाता है। इसी कारण सभी देशों और सभी कालों के लोग प्रकृति के इसी बीमारी की अवस्था में हल्का भोजन ही करते हैं।

प्रत्येक नया रोग शरीर को दोष रहित करने की प्रकृति की चेष्टा मात्र है। जब शरीर तरह-तरह के दूषित पदार्थों के बोझ से दब जाता है, तब प्रकृति भिन्न-भिन्न व्यवस्थाओं के द्वारा इसे विकार रहित करनेकी कोशिश करती है। इस चेष्टा का ही नाम रोग है। इसीलिये इस समय इस तरह के पथ्य का चुनाव करना चाहिये, जिससे कि इसे पचाने के लिये प्रकृति को अपने सफाई करने के काम से विरत होकर परिपाक करने के लिये अपनी शक्ति का दुरुपयोग न करना पड़े। इसलिये इस समय रोगी की पुष्टि की तरफ ध्यान न देकर

उपवास के अनुरूप ही केवल मात्र किसी पथ्य की व्यवस्था करनी चाहिये। और इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि यथा सम्भव यह पथ्य खूब हल्का हो।

किन्तु केवल हल्के पथ्य के चुनाव मात्र से ही संतोष नहीं कर लेना चाहिये। इस समय तो वह पथ्य ऐसा भी होना चाहिये जो शरीर में जमा विष को नष्ट (neutralize) करे और प्रकृति को घर की सफाई में सहायता प्रदान करे।

इसी कारण बीमारीकी अवस्था में प्रधान पथ्य नीबू का रस, फलों का रस, रसीले फल (juicy fruits), छेने का पानी, पतला मट्ठा, बारह घंटे भिगोये किसमिस का पानी, तरकारी का पतला रस्सा और मधु आदि हैं।

हरेक रोग में ही रोगी को नीबू के रस के साथ काफी मात्रा में पानी पीने को देना चाहिये। हमारे देह में जितने प्रकार के रोगों के विष हैं वे प्रायः सभी अम्लधर्मी हैं। नीबू का रस मुँह में अम्ल होने पर भी परिपाक के बाद वह क्षारधर्मी बन जाता है और रोग के अम्ल विषका नाश करता है। कमला नीबू, बिजोरा नीबू और अनरस आदि विभिन्न खट्टे जाति के फलों के रस से भी एकही लाभ होता है। किन्तु रोग की तेज अवस्था में हमेशा ही फलों के रस के साथ पानी मिला कर देना चाहिये। बीमारी की हालत में इस प्रकार काफी मात्रा में जलपान करने से, रोग का विष बहुत अंश में नष्ट हो जाता है और पसीना तथा पेशाब के साथ शरीर से अधिकांश विष निकल बाहर होता है। रोगी को सफेद जाम, जामुन, खीरा, और शंख आलू आदि के रस भी दिये जा सकते हैं। नारियल का पानी भी फल के रस की ही सूची में है। जो रोगी अम्ल रोग से कष्ट पा रहे हों, उन्हें रोग के बने रहने की अवस्था में खट्टे जाति

के फलों के बदले इन सभी फलों के रस ही देना उचित है। रोग के समय मौसमी आदि रसीले फलों को खाने में कोई आपत्ति नहीं। दूसरे फलों को खाने पर इसका ध्यान रहना चाहिये कि प्रारम्भिक अवस्था में उनके छिलके, बीज, तथा सीठी न खाये जायँ। रोगी को कब्जियत रहने पर हमेशा फल के रसों पर ही जोर देना चाहिये।

किन्तु यदि रोगी का पेट ठीक न हो, तब किसी भी हालत में नीबू का रस, नारियल का पानी और मौसमी के रस को छोड़ कर दूसरा कोई फल नहीं देना चाहिये। पेट के खराब रहने की हालत में रोगी का मुख्य पथ्य छेने का पानी और मट्ठा है। छेने के पानी में और मट्ठे में दूध के कई गुण बचे रह जाते हैं तथा साथ ही साथ ये बड़े हल्के पथ्य हैं। रोगी के लिये बिना मलाई के दही में काफी मात्रा में पानी मिलाकर पतला मट्ठा तैयार करना चाहिये। पेट के रोगों में यह तथाकथित दवाइयों का काम करता है। किन्तु रोगी की छाती में दोष रहने पर कभी भी रोगी को यह मट्ठा नहीं देना चाहिये। नये मलेरिया, वात रोग, अम्ल रोग और छाती के दोषों में दही हमेशा मना है। छाती के दोष रहने पर रोगी को नारियल का पानी देना भी उचित नहीं। इस से रोग के बढ़ने की सम्भावना रहती है।

रोगी को तरकारी का रसा भी देना चाहिये। इसमें तरह-तरह के विटामिन और धातव लवण शरीर में प्रवेश पाते हैं। पालकी का साग, धनिये की पत्ती, पपीता, खेखसा, चुकन्दर और गाजर आदि शाक-सब्जी का उबाला हुआ जल रोगी को दिया जा सकता है। रोग की तीव्रता में तरकारी का उबाला हुआ जल रोगी को देना चाहिये। रोग के पिंड छोड़ने पर तरकारी को अच्छी तरह मसल कर उसके गाढ़े क्वाथ को भी खाने को दिया जा सकता है।

बीमारी में कभी भी चीनी और मिश्री खाना उचित नहीं। चीनी और गुड़ आदि पचने में बहुत समय लेते हैं। भात-रोटी आदि की परिपाक क्रिया तो मुँह से ही आरम्भ हो जाती है। किन्तु

चीनी न तो मुँह में हजम होती है और न पाकस्थली में—यह हजम होती है छोटी अतड़ियों में जाने के बाद। अधिक चीनी गुड़ खाने से तरह-तरह के रोग भी पैदा हो जाते हैं। इसी कारण बीमारी की हालत में फल के रस आदि को मीठा करने के लिये फल के रस के साथ मधु का व्यवहार करना उचित है अथवा बारह घंटे पानी में भिगोये किसमिस को पीसकर उसके छने रसको चीनी के बदले काम में ला सकते हैं। रोगी को डेक्सट्रसलल भी दिया जाता है। रोगी यदि खूब कमजोर हो तो औषधि रहित मल्ट (malt) भी दिया जा सकता है।

साधारणतया बीमार पड़ते ही लोग साबुदाना और वार्ली खाते हैं। किन्तु साबुदाना और वार्ली अम्लधर्मी प्रधान खाद्य है। और फलोंका रस है क्षार-धर्मी। इसी कारण फलोंके रसोंके ऊपर ही जोर देना चाहिये। इसके अलावे विना चबाये हुए खानेसे श्वेतसार पदार्थ पच नहीं पाता। वार्ली आदि को विना चबाये खानेके कारण लाभके बदले हानि ही होती है। पच जाने पर भी श्वेतसार जातीय पदार्थ शरीरके लिये भारी भोजन (clogging food) है। और फलोंके रस आदिको पदार्थ अपनयन मूलक खाद्य (eliminative food) कहा जा सकता है।

सभी नये रोगोंमें एक प्रकार की कमजोरी आती है। पर यह नहीं समझना चाहिये कि यह कमजोरी हल्के भोजनके फल स्वरूप है। तेज रोगोंमें रोगीके रक्त प्रवाहमें जो विष स्रोत्र चला आता है यही रोगीको कमजोर बना देता है। अपनयनमूलक चिकित्सा और पथ्य से यह विष जितना ही शरीर से दूर होता जाता है रोगीके हृदय आदि यन्त्र उतने ही अच्छे होने लगते हैं और रोगी उसी अनुपातमें अपनेको चंगा महसूस करने लगता है। अधिक भोजन करने से रोगी जिस प्रकार सूखता जाता है हल्के पथ्य से यह बात नहीं होती और रोग से छुटकारा पानेके बाद हमेशा ही रोगीका स्वास्थ्य पहले से अपेक्षाकृत उन्नत हो जाता है। क्योंकि इस प्रकार के पथ्य पर रखकर

शरीरके स्वास्थ्य को पूर्णरूप से वापस लौटा लिये आनेके लिये रोगको एक प्रकार से यन्त्र की तरह व्यवहार किया जाता है।

रोगसे छुटकारा पा जानेके वाद भी हठात् भोजन अधिक नहीं करने लगना चाहिये। रोगके शान्त हो जाने के कई एक दिन वाद तक वीमारी के समय चालू पथ्यको ही ग्रहण करना जरूरी है। इसके वाद खूव धीरे-धीरे तरल भोजनको कड़े भोजनमें वदलना चाहिये। खुराककी मात्रा भी खूव धीरे-धीरे वढ़ानी चाहिए। रोगसे मुक्ति मिलनेके वाद ही तुरत अधिक भोजन करनेसे वीमारी प्रायः फिर लौट आती है।

पुराने रोगियों को जव तक सवल रहें, साधारणतया स्वस्थ्य अवस्था का ही भोजन करना चाहिये। किन्तु पुराने रोगोंके नये आक्रमणकी हालत में अथवा प्राकृतिक चिकित्सा कराते समय हमेशा नये रोगके रोगी के पथ्य को ही खाना चाहिये।

वीमारीकी हालतमें सभी प्रकारके चर्वी जातीय पदार्थ, अधिक नमक, हल्दीको छोड़कर अन्यान्य सभी मसाले, सभी तरहके तले पदार्थ, दूकानके सभी पदार्थ, चाय, कोको, मांस, मछली और सभी प्रकारके दुष्पाच्य और उत्तेजक द्रव्य का परहेज करना चाहिये।

इस प्रकार से पथ्य ग्रहण करनेसे रोग कभी भी असाध्य नहीं हो पायेगा और थोड़े समय में ही रोग से छुटकारा मिल जायगा।

आयुर्वेदमें लिखा है —

विनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते। नतु पथ्यविहीनानां भेषजानां शतैरपि॥

विना किसी औषधिके केवल मात्र पथ्य से ही रोगसे छुटकारा मिल सकता है किन्तु कुपथ्य खानेवाले का रोग सैकड़ों औषधियों से भी नहीं छूटता।

यह शरीर एक प्रकारका खाद्य यन्त्र (food engine) है। कुभोजन से जिस प्रकार रोगकी सृष्टि होती है उसी प्रकार अच्छे खाद्यसे रोगों से आरोग्य लाभ किया जा सकता है। इसी कारण कहा जाता है, diet cures more than doctors—डाक्टरोंकी अपेक्षा पथ्य से ही अधिक रोगी निरोग होते हैं।

विंश-अध्याय

योगिक व्यायाम

[१]

योगशास्त्रके आसनों को योगिक व्यायाम कहते हैं। आसन दो तरह के हैं। एक श्रेणीके आसनोंको ध्यानासन एवं दूसरे श्रेणीके आसनोंको स्वास्थ्यासन कहा जाता है। जिस आसनमें बैठकर मनको स्थिर करनेकी चेष्टा की जाती है उसे ध्यानासन कहते हैं। और जो आसन व्यायामके निमित्त किया जाता है उन आसनोंको स्वास्थ्यासन कहा जाता है।

स्वास्थ्यासनोंका प्रथम एवं प्रधान उद्देश्य पेट को ठीक करना है। हमारे शरीरकी पुष्टि प्रधानतः हमारे पाचन-क्रिया की ताकत पर ही निर्भर रहती है। इसके साथ-साथ अधिकांश रोग पेटकी खराबी के कारण ही पैदा होते हैं। योगिक आसन एक तरफ तो हमारी पाचन शक्ति की वृद्धि करता है दूसरी ओर हमारे पेटको साफ रखनेमें सहायता देकर जिस तरह शरीरको पुष्ट रखता है उसी तरह शरीरको भी बीमारी से रक्षा करता है।

योगिक आसन हमारे स्नायु तन्तुओं को मजबूत करता है एवं थकावट दूर करता है। स्नायु तंतु ही हमारे शरीरका राजा है। हमारे शरीरका तमाम काम स्नायु द्वारा ही परिचालित होता है। स्वभावतः ही जिनका स्नायु जितना अधिक सबल, शांत एवं स्वस्थ है वे उतने बड़े श्रेष्ठ व्यक्ति हैं। इसी वजह से योगिक आसनमें शरीर जिस तरह गठित होता है उसी तरह मन भी गठित होता रहता है।

योगिक आसन में दूसरा फल यही होता है कि यह शरीर के भीतरी अन्तःश्रावी ग्रंथियों (endocrine glands) की कार्य क्षमता को बढ़ा-

कर शरीरको स्वस्थ और रोग मुक्त कर देता है। हम लोगों के शरीरमें थाइ रोयेड (thyroid gland), एड्रीनल (adrenal bodies), पीटुआटारी (pituitary body), पाराथाइ रयेड (para thyroid glands), इत्यादि विभिन्न अन्तःश्रावी ग्रंथियां वर्तमान हैं। ये जो रस बाहर फेंकते हैं वह सीधे खूनके भीतर चला जाता है। यह शरीरके भीतर विभिन्न रासायनिक परिवर्तन कर देता है एवं शारीरिक विभिन्न यन्त्रों की परिचालन में काफी असर डालता है। नियमित आसन करनेसे इन ग्रंथियोंमें कर्म क्षमता फिर आ जाती है एवं वृद्धता दूर हो जाती हैं। इन तमाम आसनों के अभ्यास से लीवर इत्यादि वहिः-श्रावी ग्रंथियां भी चंगा हो उठती हैं एवं वह शरीरमें जो जरूरत के कामों को करती है वह अच्छी तरह से होने लगता है।

साधारणतया जो व्यायाम किया जाता है उसका ध्येय शरीरमें मांस पंशियों की उचित पुष्टि ही रहती है। किन्तु योगिक व्यायाम का उद्देश्य शरीरको स्वस्थ एवं दीर्घजीवी बनाना है। मांस पेशियों की वृद्धि होनेसे शरीर अच्छा हो जाता है ऐसी बात नहीं है। जब शरीरमें अत्यधिक मांस उत्पन्न होता है, तब शरीरका अधिकांश माल मसला उसकी पुष्टि के लिये ही खर्च होता है, और उसके फलस्वरूप हृदय एवं फुसफुस आदि शरीर के प्रधान-प्रधान यन्त्र कमजोर हो उठते हैं। इसलिये देखा जाता है कि पहलवान लोग हमेशा अल्पजीवी होते हैं। लेकिन योगिक व्यायाम शरीरके प्रधान-प्रधान यन्त्रों को सबल और स्वस्थ कर शरीरको नया बना देता है। इसलिये ऋषियों द्वारा परिकल्पित योगिक व्यायामकी तुलना पृथ्वी के किसी भी व्यायाम से नहीं की जा सकती।

[२]

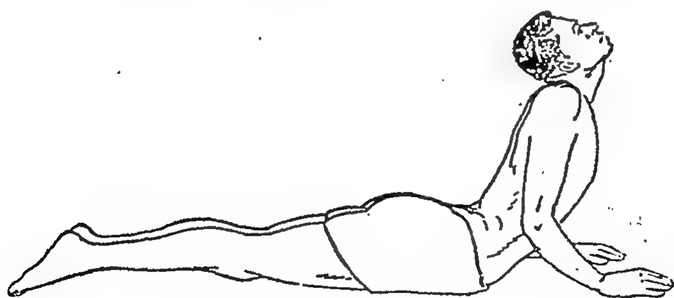
पद्मासन

पहले पद्मासन में कुछ क्षण बैठकर योगिक व्यायाम प्रारम्भ किया जाना चाहिये। स्थिर होकर बायें जांघे पर दाहिना एवं दाहिनें जांघे पर बायां

पांव रखकर वह आसन किया जाता है । इस समय मेरुदंड को खास कर सीधा रखना जरूरी है । इसी आसन में बैठकर विभिन्न योगासन किया जाता है । इसलिये सबसे पहले इस आसन का अभ्यास होना आवश्यक है । प्रत्येक दिन इस आसन को करने के बाद में भुजंगासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तानासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, शीर्षासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, योगमुद्रा, उड्डीयान, नोली व सवासन अभ्यास करना आवश्यक है । इन आसनों को क्रमशः करते जाने से ही ठीक ठीक रूप से आसन होता है ।

भुजङ्गासन

सांप जिस तरह फन करता है, ठीक उसी तरह इसको भी करना पड़ता है । इसलिये इसको भुजङ्गासन कहते हैं । छाती पर सोकर दोनों हाथ को छाती के बगल में रखकर धीरे से ऊपर के शरीर को ऊँचा उठाने से यह आसन किया जा सकेगा । इस समय उठे हुए शरीर का भार हाथों पर रखकर यथा सम्भव मेरुदंड को पीछे की ओर मोड़ना चाहिये । यह आसन प्रति वार दस से लेकर पन्द्रह सेकेंड तक एवं तीन से लेकर पांच वार तक



भुजङ्गासन

करना चाहिये । इस आसन के समय स्वास प्रस्वास स्वाभाविक हालत में रहेगा । इस आसन से मेरुदंड का कड़ापन दूर होता है एवं इसकी लचक (elasticity) बढ़ जाती है । मेरुदंड की लचकता पर ही मनुष्य की

जीवनी शक्ति एवं यौवन निर्भर करता है। जब मेरुदंड कड़ा हो जाता है तभी बुढ़ापा आती है। विभिन्न स्नायुविक कार्य्य मेरुदंड के रास्ता से ही सम्पादित होता है एवं इसी रास्ते से मस्तिष्क में अनुभूति भी पहुँचती है। इसके अलावा बहुत से स्नायु मेरुदंड यंत्र से ही पैदा लेते हैं। इसलिये मेरुदंड की सवलता के ऊपर जीवनी शक्ति, कर्म क्षमता एवं यौवन निर्भर करता है। इस आसन द्वारा मेरुदंड में ताकत आती है और उससे देह नवीनता प्राप्त करती है।

शलभासन

शलभ शब्द का अर्थ तितली है। तितलीके अनुसार दोनों पांव को ऊ'चा करके यह आसन किया जाता है इसलिये इसे शलभासन कहते हैं।

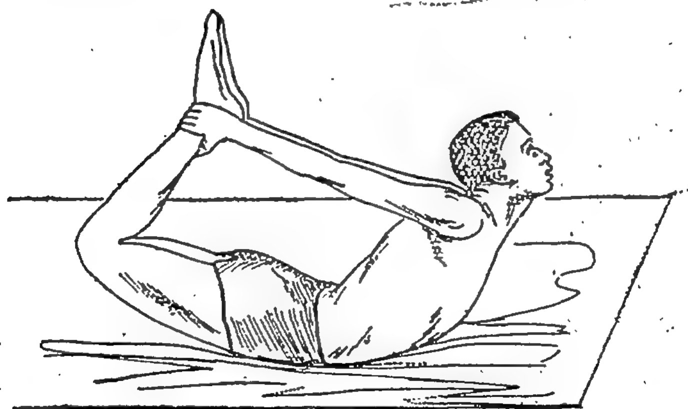
छाती के ऊपर सोकर यह आसन ग्रहण किया जाता है। दोनों हाथ शरीर के दोनों ओर उर्ध्वमुखी एवं मुष्ठिवद्ध हालत में रहता है। इसके बाद स्वांस लेकर कुम्भक करके (याने सांस रोककर) दोनों पांव को सीधा करके यथा सम्भव ऊपर उठाया जाता है। इस तरह ५ सेकेंड या जब तक सांस बन्द रखा जाय तब तक रहकर पांवों को उतार लेना पड़ता है एवं धीरे धीरे स्वांस छोड़ देना पड़ता है। इस ढंगसे एक से लेकर तीन बार करना चाहिये।

जैसे भुजंगासन ऊर्ध्व शरीरका व्यायाम है, उसी तरह शलभासन निम्न शरीर का है। इस आसन के अभ्यास से कोष्ट परिष्कार रहता है, लीभर, पंक्रियस एवं मूत्रयन्त्र सवलता लाभ करता है एवं तलपेट की समस्त मांसपेशी व निम्न मेरुदंड मजबूती हासिल करता है। इसलिये नियमित रूप से इसको करनेसे कटि बात या कमर दर्द, साइटिका एवं जननेन्द्रिय की दुर्वलता दूर हो जाती है एवं चलने की शक्ति में वृद्धि होती है। हृतपिंडकी कमजोरी या हृदय की कोई बीमारी रहने पर इस आसन को छोड़ना चाहिये।

धनुषासन

इस आसन को ग्रहण करने के समय शरीर धनुषाकार हो जाता है। इसलिये इसको धनुषासन कहते हैं।

ऊपर सोकर इस आसन को करना पड़ता है। शरीर सीधे रूप से एकदम शिथिल हालत में रहता है। उसके बाद दोनों हाथों द्वारा दोनों पावों की एड़ी को पकड़ कर एक तरफ माथा, कन्धा व छाती एवं दूसरी ओर जङ्घा दोनों को ऊपर की ओर उठाना पड़ता है। इस समय केवल पेटके ऊपर शरीर का समस्त भार रहता है। एवं मेरुदण्ड धीरे-धीरे टेढ़ा होकर धनुष के आकार का हो जाता है। इस समय स्वांस स्वाभाविक हालत में चलता रहता है। इस अवस्था में पांच से लेकर बीस सेकेन्ड तक रहकर फिर स्वाभाविक प्रथम अवस्था में शरीर को ले आना चाहिये। व्यायाम को पुनः पुनः तीन बार करना पड़ता है।



धनुषासन

यह आसन मेरुदंड को जवानयुक्त करता है और पेट की तमाम बीमारीयों को नष्ट करती है। इसलिये स्नायु-दुर्वलता व अजीर्ण (dyspepsia) रोग की यह एक श्रेष्ठ चिकित्सा है। इससे मधुमेह भी आरोग्य लाभ करता है एवं पेट की चर्बी दूर होती है।

पश्चिमोत्तानासन

इसके द्वारा शरीर के पिछले भाग का व्यायाम होता है। इसलिये पश्चिमोत्तानासन कहते है।

पीठ के ऊपर सोकर यह आसन शुरु किया जाता है। दोनों हाथ माथे के पीछे की ओर फैला रहता है। उसके बाद दोनों पांव को जमीन पर रख कर स्वांस ग्रहण करते करते माथा और छाती को उठाकर बैठना होता है। उसके बाद क्षण भर भी अपेक्षा नहीं कर स्वांस छोड़ते छोड़ते शरीर झुकाकर दोनों हाथों से पांव के अंगूठे को पकड़ना जरूरी है। इस समय छोड़ने के साथ ही साथ बार बार सिर को झुकाकर जङ्घा से मिलाना है।

दोनों केहुनी जमीन के साथ आकर मिल जाते हैं। लेकिन यह खूब धीरे-धीरे करना जरूरी है और प्रतिदिन कुछ कुछ कर अभ्यास की चेष्टा करनी चाहिये। इस समय पेट का निचला हिस्सा भीतर खींच लेना चाहिये। इस तरह दो से लेकर पाँच मिनट तक रहकर फिर स्वांस लेते लेते पूर्वावस्था में सो जाना पड़ता है। इस तरह तीन बार किया जा सकता है। इस आसन में बैठकर सिर नीचे करने के समय में जोर जबर्दस्ती (straining) व झांकुनी (jerk) हरेक हालत में वर्जन करना जरूरी है।

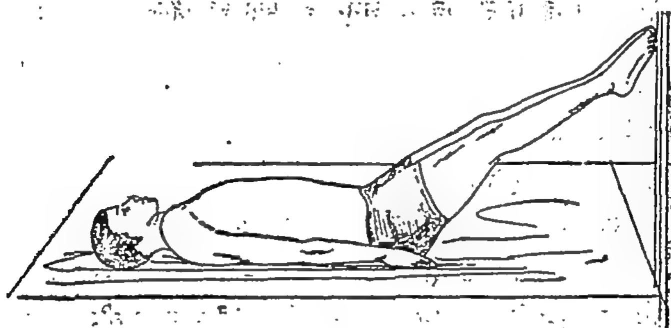
यह आसन पेट व मेरुदंड का एक श्रेष्ठ व्यायाय है। इसके द्वारा पाक-स्थली, लीभर, क्लोमयंत्र (pancreas), आंत, मूत्र यंत्र व मूत्राशय आदि चङ्गा हो उठता है एवं मेरुदंड में झुकने का सामर्थ्य प्राप्त होता है। इससे अजीर्ण, कोष्ठबद्धता, बवासीर, डायबीटीज, स्वप्नदोष, जननेन्द्रियकी दुर्बलता, पेटकी बढ़ी हुई चर्बी, लीभर और पिल्ही आदि के विभिन्न रोग नष्ट होकर आरोग्य लाभ करता है। इससे जठराग्नि की वृद्धि होती है एवं मेरुदण्ड में झुकाव आने की वजह से वृद्ध शरीर में यौवन का फिर से समावेश हो जाता है और बूढ़ापा दूर हो जाती है।

लेकिन पिल्ही या यकृत के बढ़ जाने पर, एपेनडिसाइटिस व हार्निया रोग रहने पर इस व्यायाम को छोड़ देना ही उचित है।

हलासन

यह आसन ग्रहण करने के समय में शरीर हलके आकार का हो जाता है। इसलिये इसे हलासन कहते हैं।

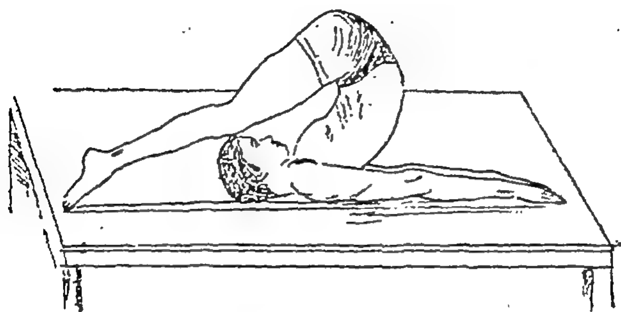
चित होके सोकर यह आसन ग्रहण करना पड़ता है। दोनों हाथ जंघे के दोनों बगल में रहते हैं। इसके बाद दोनों पांव को सीधा रखके एवं हाथ को पूर्ववत छोड़कर धीरे-धीरे पांवों को ऊपर उठाना पड़ता है। ३०° डिग्री



उत्थान-पादासन

तक पांव आ जाने पर जरा विश्राम करना पड़ता है। वह एक उत्तम अलग आसन है। इसको उत्थान-पादासन कहते हैं। इसके बाद ९०° तक पांव उठाने पर जरा विश्राम करना चाहिये। पीछे दोनों पांव ऊपर उठाकर धीरे धीरे सिर के पीछे जमीन छूना पड़ता है। इस समय दोनों जांघे आपस में मिले हुए एवं सीधी हालत में रहना जरूरी है। इस अवस्था में रहकर ठुढ्ढी से गला को दबाना जरूरी होता है। इस तरह १० सेकेण्ड रहकर फिर दोनों पांव को ऊपर उठाकर पहले की हालत में ले आना चाहिये। इसके बाद दोनों हाथ गर्दन के नीचे में पञ्जा भिड़ाकर रखना जरूरी है। तृतीय बार फिर इस

आसन को ग्रहण कर इस तरह दोनों पावों को सिर के पीछे यथासंभव फैलाना चाहिये। इस आसन में स्वाभाविक ढंग से स्वांस ग्रहण करना चाहिये।



हलासन

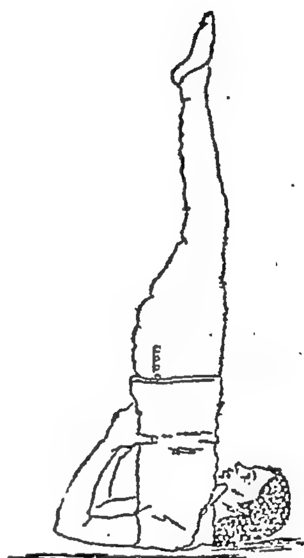
यह आसन मेरुदण्ड के लिये एक श्रेष्ठ आसन है। इसके अलावा कोष्ठवद्धता, तलपेटो की मेद-वहुलता और मधुमेह इत्यादि रोग इससे दूर होते हैं।

सर्वाङ्गासन

चित होकर सो के यह व्यायाम करना होता है। पहले पांव को मोड़ कर पेट के ऊपर तह देकर रखना पड़ता है। इसके वाद दोनों पांव को मिलाकर धीरे धीरे समूचे शरीर को इस तरह उठाना पड़ता है कि दोनों पांव सिर के ऊपर शून्य में और सीधा अवस्था में रहेगा। इस समय साथ ही साथ दोनों हाथों द्वारा कमर पकड़ कर समूचे शरीर को सीधा रक्खा जाता है एवं ठुड्डी द्वारा गला को दवाना पड़ता है। उससे थाइरयेड-ग्लांड से काफी रस निकल कर दूसरे खून के साथ मिल जाता है। मनको भी इस हालत में थाइरयेड यंत्र के उपर निवद्ध रखना जरूरी है। इस समय स्वांस-प्रस्वास स्वाभाविक गति से चलता है। इस तरह कुछ क्षण रहने के वाद धीरे-धीरे छाती के ऊपर दोनो जंघे को उतार लेना पड़ता है और फिर पूर्वावस्था में पांव को

ले जाना पड़ता है। इस तरह पांच छः वार तक किया जा सकता है। लेकिन अगर एक वार में ही पांच मिनट तक रहा जा सके तो वार वार करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस अवस्था में अभ्यास मुताबिक समय बढ़ाकर इसे आधे घंटे तक किया जा सकता है।

प्रधानतः थाइरयेड ग्रन्थियों की निःसहन शक्ति की वृद्धि के लिये ही यह आसन ग्रहण किया जाता है। थाइरयेड ग्रन्थि 'thyroid gland' गला के नीचे और सामने भागों में वर्त्तमान है। यह एक नलीहीन (ductless) ग्रन्थि है। इससे जो रस निकलता है वह खून के साथ जा मिलता है। थाइरयेड का यह रस जो शरीर के लिये अत्यन्त जरूरी है, काफी परिणाम में नहीं होने पर मंदाग्नि, दर्द, आलस, निद्राहीनता, शरीर के वजन में कमी, मानसिक अवसाद, चर्बी की कमी, जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोग एवं अकाल वार्धक्य इत्यादि रोग उत्पन्न होता है। दूसरी तरफ जब थाइरयेड रस अच्छी तरह निकलता है, तब शरीर को तोड़ना बनाना (metabolism) में इस तरह प्राण संचार होता है कि शरीर के विभिन्न यंत्र स्वस्थ, सबल एव कर्मशील हो उठता है। इसके अलावा यह स्नायुयों को नये कर बनाता है। इसलिये इस आसन के फलस्वरूप शरीर की तमाम क्षमता उन्नत होती है एवं गिरा शरीर भी नया यौवन लाभ करता है। वर्तमान समय में नारी और पुरुष को यौवनावस्था प्राप्ति थ ... लगा दिया जाता है। इस तरह के काम



सर्वाङ्गासन

में बहुत रुपये खर्च होते हैं। और यह बहुत संकटमय है। लेकिन इस तरह आसन करने से कभी भी ऐसी तकलीफ नहीं लेनी पड़ती है। बहुत से स्त्री-रोग भी थाइरयेड ग्रन्थि की उचित रस निःसरन के अभाव के कारण (thyroid deficiency) ही हुआ करते हैं। इसलिये यह आसन ग्रहण करने से स्त्रियों को मासिक धर्म संबंधी तमाम बीमारी शीघ्र अच्छी हो जाती है। कोई कोई ऐसा भेद रोग है जो किसी भी हालत में आराम नहीं होता। किंतु इस आसन के ग्रहण करने से शरीर में तोड़ना और बनाना के शक्ति इतनी तेजी से बढ़ती है कि वजन आपसे आप कम होकर स्वाभाविक हालत में चला आता है। थाइरयेड रस खूनके श्वेत कणों को सुस्थ रखता है एवं इसकी संख्या को बढ़ाता है। इससे शरीर में रोगों के प्रतिरोध की क्षमता बढ़ती है एवं विभिन्न संक्रामक बीमारी से देह को रक्षा होती है। इसलिए किसी किसी का कहना है कि हैजा, प्लेग, बसन्त, कुष्ठ इत्यादि संक्रामक बीमारी सर्वांगासन करने से नहीं होती। इस आसनके करने से एपेन्डीसाइटिस रोग में अत्यन्त उपकार होता है। गर्भाशय का स्थान च्युति व बहिर्गमन (displacement and prolapse) और हर्निया रोगको यह एक प्रधान चिकित्सा है। इसके द्वारा बहिर्गत बच्चादानी और आंत अपने स्थान में आकर फिर स्थापित हो जाता है। अजीर्ण एवं कोष्ठबद्धता रोग में भी इससे काफी लाभ होता है। इस आसन के करने के बादही मत्स्यासन करना जरूरी है।

मत्स्यासन

यह आसन ग्रहण करके मछली की भांति जल के ऊपर रहा जा सकता। इसलिये इसको मत्स्यासन कहते हैं।

पद्मासन में बैठकर यह आसन ग्रहण किया जाता है। पहले इस हालत में चित होकर सो जाना आवश्यक है। उसके बाद दोनों केहुनियों पर भार दे कर पेट और छाती को ऊपर उठाना पड़ता है एवं मेरुदंड को इस

तरह टेढ़ा करना पड़ता है जिससे कि वह एक पुल के माफिक हो जाय। इस समय एक तरफ माथा और दूसरी ओर चूतड़ के ऊपर शरीर का भार रहता है। इस हालत में कंधों को यथा संभव पीछे की ओर टेढ़ा किया जाता है एवं गला में विशेष जोर पड़ता है। इसके बाद दाहिने हाथ द्वारा बायें पांव एवं बांया हाथ से दाहिने पांव के अंगूठे को पकड़ना पड़ता है। इस आसन के ग्रहण करने के समय में स्वांस-प्रस्वांस के व्यायाम करने की यथेष्ट सुविधा होती है। इसलिये इस आसन के समय में बार बार धीरे धीरे स्वांस-प्रस्वास का व्यायाम करना चाहिए। इस आसन को उतारते समय केहुनी पर भार देकर उतारना आवश्यक है।

यह आसन हमेशा सर्वाङ्गांसन के शेष हो जाने पर ही करना चाहिते। सर्वाङ्गासन में गला जिस हालतमें रहता है मत्स्यासन में ठीक उसके विपरीत रहता है। इसके फलस्वरूप गला की स्नायु, मांसपेशी एवं थाइरयेड व प्यारा थाईरयेड ग्रन्थियां विशेष रूप से शक्तिशाली होती हैं। प्यारा थाइरयेड ग्रन्थियों की संख्या चार हैं एवं यह थाइरयेड ग्रन्थि के पास तथा पीछे में रहती हैं। शरीर की सृजन शक्ति में इसका विशेष उपयोग होता है। इसलिये सर्वाङ्गासन के साथ इस आसन को करने से पूरा लाभ होता है।

शीर्षासन

इस आसन से मस्तिष्कयंत्र का व्यायाम होता है। इसलिये इसको शीर्षासन कहते हैं।

जमीन पर सिर और दोनों पांव ठीक ऊपर शून्य स्थान में रख कर यह व्यायाम किया जाता है। पहले घुटना पर बैठकर सिर को जमीन से मिलाना पड़ता है। हाथों की उंगुली से लेकर केहुनी तक के अंग जमीन से मिले रहेंगे एवं उंगुलियां परस्पर मिले रहना चाहिये। उसके बाद दोनों पांवों को मोड़कर एवं सिर के ऊपर जोर देकर दोनों पावों को ऊपर उठाना पड़ता है। इसी समय दोनों हाथों को आपस में

मिला कर कुछ सिर के नीचे कुछ सिर के पीछे रखना पड़ता है। सिर के नीचे जमीन पर तह देकर कुछ कपड़ा रखना आवश्यक होता है। पहले पहले वार वार पांव ऊपर उठा कर कुछ क्षण रखकर फिर नीचे ले आना पड़ता है। कुछ दिन तक इस तरह अभ्यास करते रहने पर पांव मोड़ कर कमर तक शरीर को स्थिर रखने की चेष्टा की जानी चाहिए। पीछे सारा शरीर आसानी से विल्कुल सीधी रेखा में खड़ा हो जाता है। इस आसन के समय स्वांस प्रस्वास स्वाभाविक हाल्त में रहता है।

पहले पहल इस आसन को करने के समय में एक आदमी की सहायता लेने से वहुत अच्छा होता है। अथवा दिवाल पर पांव देकर यह निर्भय होकर किया जा सकता है। पहले पहल शरीर को जरा पीछे की ओर हिलाकर रखना चाहिये। उससे गिर जाने की संभावना नहीं रहती। यह आसन पहले कई सेकेंड के लिये करना जरूरी है, इसके वाद धीरे धीरे समय बढ़ाकर २० मिनट तक किया जाता है। पांव उतारते समय पहले पांव को मोड़कर छाती पर लाना जरूरी है। फिर उसको स्वाभाविक हालत में ले जाना चाहिये।

शीर्षासन को आसनों का राजा कहा जाता है। क्योंकि स्नायु का मूल केन्द्र सिर है। इस आसन से काफी खून सिर में पहुँचता है जिससे समस्त स्नायु और उसके लगाव के तमाम यंत्र उद्दीप्त हो उठते हैं। मस्तिष्क के भीतरी भागों में जो यौवन ग्रंथियां (pituitary body) हैं इस आसन के फलस्वरूप वे जी उठती है। यह ग्रंथि आकार में एक मोटर के समान है। किन्तु इससे जो रस निकलता है वह शरीर के ऊपर प्रवल प्रभाव जमाता है। किसी भी कारण से इस ग्रन्थि का रस ठीक से नहीं निकलने के कारण शरीर की हड्डियों की वृद्धि रुक जाती है, जनन यंत्र दुर्वल हो उठता है एवं मानसिक उन्नति रुक जाती है। इस ग्रन्थि से निकले हुए रस से कैलशियम हजम होता है। हड्डी और दांतों के

गठन, हृत्‌पिंड और स्नायुविक यंत्रों का क्रियाशीलता एवं जीवाणु से रक्षा पाने के लिये शरीर के भीतर कैल्शियम विशेष रूप से जरूरी होता है। इसके अलावा इन ग्रन्थियों के रस निकलने की ताकतों के ऊपर ही यौवन-शक्ति निर्भर करती है। इसलिये शीर्षासन अभ्यास करने से जैसे स्वस्थ और सुडौल शरीर गठित होता है वैसे ही चिर यौवन की प्राप्ति होती है। हम लोग पुराणों में पाते हैं कि उस समय के योगी लोग अमरत्व लाभ करने के लिये ऊर्ध्वपद होकर तपस्या करते थे। सचमुच वे शीर्षासन एवं सर्वाङ्गासन हीं करते थे। इन आसनों का अभ्यास ही चिर यौवन लाभ की साधना है। वृद्धता शरीर की एक अवस्था है। किन्तु इसको यथा संभव इस आसन के जरिये दूर रक्खा जा सकता है और अन्त में वृद्धावस्था आने पर भी जड़ता नहीं आ पाती। यह मूल स्नायुयों का व्यायाम है। इसलिये इसके अभ्यास से हिस्टीरिया, माथे का चक्कर, स्नायु सूल, स्वप्नदोष, उन्माद रोग, मूढ़ता (idiocy), प्रजनन में अक्षमता (impotency) इत्यादि रोग आराम होता है।

लेकिन दांत, कान, नाक, गले में सूजन रहने पर यह व्यायाम नहीं करना चाहिये। हृद्-रोग एवं अधिक वृद्धता आ जाने पर भी इस व्यायाम को वर्जन करना उचित है।

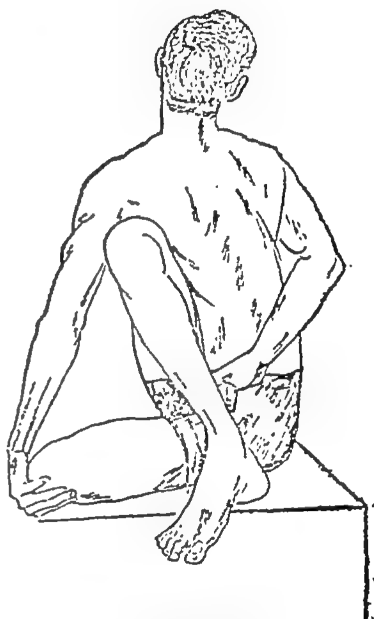
अर्ध मत्स्येन्द्रासन

पांवकी एड़ी के ऊपर बैठकर यह आसन करना पड़ता है। पहले बायें पांवको मोड़कर एवं पांव की एड़ी मल-द्वारके नीचे रखकर उसके ऊपर बैठना आवश्यक है। पीछे दाहिने पांव घुटनों के नजदीक मोड़कर बायां पांवके बाहर रखना पड़ता है। इसके बाद बायें हाथको दाहिने जंघे के ऊपर देकर बायां हाथ से बांया घुटनेको कसकर पकड़ना पड़ता है। इस समय दाहिना घुटना बायां बगल द्वारा दबाकर पकड़ना जरूरी है। इसके बाद दाहिना हाथ

पीछे ले जाकर पांवकी एड़ी पकड़ कर पीठ, माथा व कन्धा दाहिनी ओर घुमाना पड़ता है। पांच सेकेन्ड इस तरह रहनेके बाद फिर दाहिने पांवको एड़ी पर बैठकर उपरोक्त पद्धति के मुताबिक मेरु दंडको टेढ़ा करना पड़ता है। इस आसनको ग्रहण करने के समय में मेरुदंड किसी दूसरी ओर न मुड़ जाय: इसका ध्यान रखना चाहिये। इस समय स्वांस प्रस्वास स्वाभाविक गतिसे रहेगा।

इस आसन से मेरुदंड प्रवल रूपसे मुड़ता है। इसलिये इस आसनको अंगरेजी में (the spine twist) कहते हैं। इस आसन से मेरुदंडकी स्नायु यथेष्ट रूप से रक्तस्नान लाभ करती हैं। इसके फलस्वरूप स्नायु यंत्रके साथ समस्त मेरुदंड सबल और स्वस्थ हो उठता है।

मत्स्येन्द्र नामके एक प्रसिद्ध योगी थे। यह आसन करने से उनके आविष्कृत आसनों का आधा किया जाता है, इसलिये इसका नाम अर्धमत्स्येन्द्रासन है।



अर्ध मत्स्येन्द्रासन

योगमुद्रा

पद्मासन में बैठकर एवं दोनों हाथों दोनों पांवको ऊपरी हिस्से पर रखकर यह आसन ग्रहण किया जाता है। बैठने के बाद निश्वास छोड़ते छोड़ते धीरे धीरे मस्तक जमीन से मिलाना पड़ता है। इस हालतमें पांच सेकेण्ड तक

कुम्भक करके रहना जरूरी है। इसके बाद स्वांस लेकर साथ ही साथ मस्तक उठाकर पूर्वावस्था में शरीरको ले आना चाहिए। इस तरह तीन से लेकर सात बार तक किया जा सकता है।

इस आसन के करने से पुरानी कब्जियत एकदम आरोग्य हो जाती है। इससे निम्न मेरुदंड का भी सुन्दर व्यायाम होता है।

उड्डीयान

कुछ झुके हुए खड़े होकर घुटनेके ऊपर दोनों हाथ को रखकर यह किया जाता है। दोनों पावोंके भीतर थोड़ी सी जगह रहती है। इसके बाद धीरे धीरे इस तरह निश्वास छोड़ना पड़ता है जिससे कि पेट एकदम खाली हो जाय। इसके बाद निश्वास लेने के साथ ही साथ पेट को मेरुदंड की ओर आकर्षित किया जाता है एवं छाती और पसली को हड्डी को ऊपर की ओर खींचकर रखना पड़ता है। इसका अभ्यास हो जाने पर पेट पीठके साथ लग जाता है। जब तक अनायास से कुम्भक करके रहा जाय तब तब उसी हालतमें रहना चाहिये। उसके बाद फिर आसन लेना पड़ता है। यह एक साथ पांचसे लेकर सात बार तक किया जा सकता हैं। यह आसन पद्मासन में बैठकर भी किया जा सकता है।

नियमित रूपसे यह आसन करने से कब्जियत, अजीर्ण, एपेन्डीसाइसिस, हार्निया, स्वप्नदोष, औरतोंका प्रदर और ऋतु सम्बन्धी बीमारी कभी भी नहीं हो सकती एवं पेटके साथ समस्त शरीर अच्छा रहेगा। इसलिये हमारे योगशास्त्र में कहा गया है कि उड्डीयान के अभ्यास से बूढ़े जवान हो जाते हैं।

नौली

पहले उड्डीयान करके पीछे नौली किया जाता है। उड्डीयान खड़े होकर या बैठकर किया जाता है। लेकिन नौली हमेशा खड़े होकर किया जाता

है। दोनों पांव कुछ कुछ दूरी पर रहते हैं। निश्वास छोड़नेके पहले तल-पेटी को भीतर खींच लेना पड़ता है। उसके बाद दोनों बगलके मांस पेशियों को संकुचित करके पेटके भीतर की मांस पेशियोंको फुलाना पड़ता है। आधा मिनट तक ऐसी हालतमें रहकर फिर पहलेकी हालतमें चला आना आवश्यक है। इस तरह पांच छः बार किया जा सकता है। यह अभ्यास करने पर अजीर्ण, कोष्ठ-बद्धता इत्यादि कोई भी रोग कभी भी नहीं हो सकता है।

सवासन

तमाम आसन करनेके बाद कुछ देर तक सवासन करना पड़ता है। इससे यौगिक व्यायाम करने के बाद शरीर सम्पूर्ण विश्राम प्राप्त होता है (इसके प्रयोगके लिये 'विश्राम और आरोग्य' अध्याय देखिये)।

[३]

योगासन ग्रहण करनेका सबसे अच्छा समय संध्याकाल है। क्योंकि संध्या समय शरीर थकावटसे मुक्त रहता है। फिर भी सुबहमें यौगिक व्यायाम करने में कोई आपत्ति नहीं है। जिनके पास पूरा समय नहीं है वे एक वेला आधा आसन करके और एक वेला बाकी आसन कर सकते हैं।

आसनोंके साथ अन्य व्यायाम भी किया जा सकता है। लेकिन ऐसा होने पर एक वेलामें साधारण व्यायाम और अन्य वेला में आसन करना उचित है। कभी भी भरे पेट में आसन ग्रहण करना उचित नहीं है। खानेके कम से कम पांच घंटेके बाद आसन ग्रहण किया जा सकता है। किन्तु फल, फूल इत्यादि लघु आहार करनेके कुछ ही देर बाद आसन ग्रहण किया जा सकता है।

जमीनके ऊपर एक कम्बल और उसके ऊपर एक चादर बिछाकर आसन ग्रहण करना चाहिये। कम्बल नहीं रहने पर चटाई भी बिछाकर आसन ग्रहण किया जा सकता है।

साधारणतः कौपिन पहन कर आसन ग्रहण किया जाता है। लंगोट पहन कर भी आसन ग्रहण किया जा सकता है। यदि कौपीन पहनने में कोई असुविधा जान पड़े तो धोती समेटकर या हाफ पैंट पहनकर भी आसन कर सकते हैं। शरीर में कोई भी कपड़ा नहीं रहना ही उचित है। लेकिन शीतः काल में एक गंजी या फतुआ पहिना जा सकता है।

जहां तक सम्भव हो खुली हवामें आसन करना चाहिये। घरके भीतर करने पर घर की खिड़कियां एवं दरवाजे यथासम्भव खुले रहने चाहिये। जिस जगह किसी तरह की दुर्गन्ध हो अथवा जहां हवा का आगमन न हो वहां कभी भी आसन ग्रहण करना उचित नहीं है। क्योंकि कितने आसनों के साथ-साथ स्वांस प्रस्वास का व्यायाम किया जाता है और वह हमेशा खुली हवा में ही करना जरूरी है।

हमेशा शांत चित्त होकर आसन ग्रहण करना चाहिये। इस समय मन में किसी चीज की उत्तेजना-मूलक भाव रखना ठीक नहीं एवं शरीर को शिथिल (relax) कर लेना जरूरी है। आसन अत्यन्त शांति से चंच-लता को छोड़ कर करना चाहिये।

प्रतिदिन नियमित समय में आसनोंका अभ्यास करना जरूरी है, ऐसा होने से ही ठीक ठीक उपकार हो पाता है।

आसन-अभ्यास करने के साथ आहार में संयम का भी अभ्यास करना कर्त्तव्य होता है एवं यथा संभव ब्रह्मचर्य्य का पालन करना जरूरी होता है। जिसके जीवन में किसी विषय में संयम नहीं है उनके लिये आसन क्या किसी भी चीज से उपकार होना संभव नहीं है।

कोई-कोई मन में ऐसा सोचते हैं कि आसन करने से भयंकर व्याधि पैदा हो जाती है। वह एक विलकुल गलत बात है। साधारण व्यायाम जिस तरह किया जाता है, उसी तरह आसन भी किया जा सकता है। यौगिक आसन व्यायाम छोड़कर और कुछ नहीं है। केवल वह वैज्ञानिक आधार पर प्रति-

ष्ठित है। तब भी खूब धीरे-धीरे इन व्यायामों का अभ्यास होना जरूरी है। आसन में बैठकर कई तरह शरीर को टेढ़ा मेढ़ा करना पड़ता है। पहले पहल शरीर को खूब कम टेढ़ा करना उचित है एवं थोड़ी देर के लिये करना उचित है। इसके बाद अभ्यास होने के साथ ही सब तरह से मात्रा बढ़ाने की कोशिश होनी चाहिए। क्योंकि धीरे धीरे अभ्यास करने से कभी भी खराब नतीजा नहीं निकल सकता है।

पहले पहल कई आसन बहुत कठिन मालूम पड़ते हैं। किन्तु धैर्य के साथ अभ्यास करते जाने पर ऐसा कोई भी आसन नहीं जो वश में नहीं आ सके।

श्रद्धा और विश्वास के साथ आसन ग्रहण करना चाहिये। प्रत्येक आसन ग्रहण करने के समय जिस आसन से जो उपकार होता है उस संबन्ध में मन में स्वकल्प-भावना (auto-suggestion) लेने से अत्यन्त उपकार होता है।

मर्दों की भांति औरतों को भी आसनों का व्यायाम करना चाहिये। नियमित रूप से इन आसनों को करने से उनका स्वास्थ्य अच्छा हो जायगा, प्रसव-वेदना बहुत अंश में कम हो जायगी और कोई स्त्री-व्याधि जल्दी पकड़ नहीं पायेगी। किन्तु प्रतिमास मासिक-धर्म के समय पांच दिन के लिये आसन छोड़ देना चाहिये। सन्तान की सम्भावना होने पर भी तीन मास के बाद और आसन ग्रहण करना उचित नहीं। तो भी इस समय प्राणायाम का अभ्यास करने से अत्यन्त उपकार होता है। प्रसव हो जाने के तीन मास बाद फिर आसन शुरू कर देना चाहिये।

कुछ ही दिन आसन करने से ही यथेष्ट लाभ पहुँचता है। किन्तु स्वास्थ्यपूर्ण जीवन बितानेके लिये इसे बहुत दिनों तक करना चाहिये। शरीर ठीक हो जाने पर सप्ताह में दो दिन ही आसनोंका व्यायाम करना काफी होगा।

एकविंश अध्याय

स्वांस का व्यायाम

[१]

हमलोग जो स्वाभाविक तौर पर सांस लेते एवं छोड़ते हैं उसी सांस को देर तक लेने एवं देर तक छोड़नेकी क्रिया को सांस का व्यायाम कहते हैं। हमारे देशमें यह व्यायाम प्राणायामके नामसे प्रचलित है।

हमारे फेफड़े धौंकनी के समान हैं। यह जितना ही फैला हुआ होगा उतना ही हवा शरीरके भीतर प्रवेश कर सकेगी। बदनमें हवा जब अधिक मात्रामें प्रवेश करती है तब अधिकसे अधिक आक्सिजन भी शरीर में घुसती है। जिन से शारीरिक दहन-शक्ति काफी जल उठती है और अंग प्रत्यंगमें गर्मी एवं नयी शक्तिका (heat and energy) संचार होता है। इसके फलस्वरूप भोजन अच्छी तरह परिपाक होकर जिस तरह नया रस पैदा करता है उसी तरह तमाम दूषित विकार भी भस्म होकर शरीरसे बाहर निकल पड़ते हैं। इसलिये प्राणायाम द्वारा पूर्ण स्वास्थ्य लाभ किया जा सकता है।

हम जो सांस खींचते और फेंकते हैं उसमें हमारे फेफड़ेका एक तिहाई भाग ही काम में लग पाता है। बाकी दो तिहाई भाग बेकार ही रहता है और यह बेकार हिस्सा जो सांस के साथ-साथ फैलता नहीं है वह व्यायामकी कमीके कारण मंद और शिथिल पड़जाता है। इससे उसमें तरह-तरहके विकार जमा हो जाते हैं और फेफड़ा रोगोंका केन्द्र बन जाता है। यही वजह है कि दुनियांमें मरनेवालों की तायदाद में एक तिहाई फेफड़ों के रोग से मरते

हैं (H. Lindlahr, M. D.—Nature cure, P.332)। इसलिये दीर्घ जीवन प्राप्ति के लिये कुछ उपाय निकालना नितांत आवश्यक है जिससे कि फेफड़ोंके बाकी अंश भी काम में लगाये जा सकें। प्राणायाम द्वारा यह काम भली भांति सम्भव होता है।

जैसे साधारण सांस लेने एवं छोड़ने में छाती फैलता नहीं, वैसे ही ऐसे भी बहुत से लोग हैं जिनका कि छाती स्वाभाविक ही संकुचित है। वे काफी हवा लेने में भी असमर्थ हैं। किन्तु लगातार सांस का व्यायाम करने से छाती की चौड़ाई धीरे-धीरे बढ़ती जायगी। इसका फलस्वरूप जलन क्रिया (oxidation) बढ़ेगी तथा हृद्पिंड और फेफड़ा पहले की अपेक्षा अधिक स्वच्छन्द एवं सुन्दर ढंग से काम करने लग जायगा। शरीर में रक्त संचालन अच्छी तरह होने लगेगा एवं तमाम रक्त विकाररहित और स्वस्थ्य बन जायगा।

ऐसा कहा जा सकता है कि जो जितना गंभीर स्वांस लेते हैं उनका फेफड़ा उतना ही अधिक मजबूत है। फेफड़ों के फैलने एवं सिकुड़ने की क्षमता को ही फेफड़ों की शक्ति कही जा सकती है। व्यायाम द्वारा समूचे शारीरिक अंग में जिस तरह शक्ति का संचार होता है फेफड़ों में भी उसी ढंग का होता है। सांस के व्यायाम को फेफड़ों का व्यायाम कह सकते हैं। इस सांस के व्यायाम के अभ्यास से फेफड़ों की शक्ति क्रमशः बढ़ जाती है और पीछे काफी सांस लेने और छोड़ने सकता है।

हवा को हमारे शास्त्र में प्राण कहा गया है। छाती के भीतर जब हवा का परिमाण बढ़ता है तब प्राण-शक्ति को ही बढ़ती माननी चाहिये। सचमुच में ऐसा देखा गया है कि जिसका सांस देर में लिया और छोड़ा जाता है उसका जीवन उतना ही दीर्घायु होता है। इसलिये स्वास्थ्य रक्षा एवं रोग मुक्ति के लिये जितने भी साधन हैं उनमें प्राणायाम का एक महत्वपूर्ण स्थान है।

प्राणायाम से मन में भी प्रसन्नता आती है। इससे शरीर के तमाम स्नायु (nerve) शांत हो जाते हैं। इसलिये नियमित ढंगसे प्राणायाम करने पर मानसिक अशांति, उद्वेग और चंचलता दूर हो जाती है। इससे सुनिद्रा एवं संयम शक्ति भी आती है। हिन्दू शास्त्रमें प्राणायाम को योग कहते है। इस योग साधनासे शारीरिक नवीनता, पूर्ण स्वास्थ्य, मानसिक एकाग्रता, रोग शून्यता एवं दीर्घ जीवन इत्यादि सिद्धियां लाभ की जा सकती हैं।

[२]

सांस के व्यायाम की बहुत सी विधियां प्रचलित हैं। शांतमय बैठकर, खड़े होकर या सोकर प्राणायाम किया जा सकता है। यहांतक कि साधारण व्यायाम के साथ साथ भी सांस का व्यायाम किया जा सकता है। किसी अन्य व्यायाम के साथ सांस का व्यायाम करने से लाभ की अधिक संभावना रहती है, क्योंकि उस समय छाती हवा से भर जाती है और लिया हुआ तमाम आक्सिजन शरीर के काम में लग जाता है। किंतु प्रत्येक व्यायाम के साथ सांस का व्यायाम करने से एक ही सा फायदा नहीं होता। अतः इसके लिये कुछ खास का व्यायाम करना ही उचित है। ये प्राणायाम के लिये ही विशेष उपयोगी हैं। इसलिये इन्हें प्राणायामी व्यायाम कहते हैं। उन व्यायामों की क्रिया इस प्रकार है —

पहले एकदम सीधा होके खड़ा होना। दोनों हाथ स्वाभाविक अवस्था में झूलता रहेगा। धीरे धीरे सांस लेकर सांस से छाती को पूरी तरह भर लेना। सांस ले लेने पर छाती फूल उठेगी और पेट भीतर चला जायगा। फिर धीरे-धीरे सांस छोड़ देना।

उसी अवस्था में खड़े होकर पांवों की उँगलियों पर समूचे शरीर का भार देते हुए सांस लेते-लेते जहां तक संभव हो शरीरको ऊपर उठाना। दोनों हाथों को सामने और ऊपर इस ढंग से उठाना कि सिर के ऊपर दोनों मिल

जांय। फिर पांव की उँगलियों एवं हाथों को धीरे-धीरे सांस छोड़ते-छोड़ते स्वाभाविक अवस्था में ले आना। दोनों हाथ गोलाकार बनाते हुए गिरेगा।

सीधे खड़े होकर धीरे-धीरे सांस लेकर छाती को हवा से भर लेना फिर धीरे धीरे छाती को तलहथी से थपथपाकर सब हवा नाक से निकाल देना।

दोनों पांव को फैलाना और सिर के ऊपर दोनों हाथों को सीधा उठाना। फिर पीठ को पीछे की ओर मोड़ते-मोड़ते सांस लेना और सांस छोड़ते छोड़ते सामने की ओर झुक जाना। इसके बाद अपने हाथों से पावों के भीतर की जमीन स्पर्श करना और अंत में सांस लेते-लेते फिर खड़े हो जाना।

सीधे खड़े होकर सांस लेते-लेते दोनों हाथों को पीछे की ओर से घुमाकर अंगूठे से कंधों को स्पर्श करना फिर दोनों हाथों को सांस छोड़ते छोड़ते स्वाभाविक अवस्था में लौटा लाना। हाथों की मुट्ठियां सांस छोड़ने के समय में कसकर बँधी रहेंगी।

सीधे खड़े हो जाना। फिर दोनों हाथों को यथासम्भव सामने, ऊपर और पीछे सांस लेते-लेते ले जाना फिर सांस छोड़ते-छोड़ते हाथों को स्वाभाविक हालत में ले आकर शरीर के साथ सटा लेना।

बिछौने पर चित्त हो के लेट जाना। दोनों हाथों को पीछे की ओर रखके, धीरे-धीरे सांस लेकर छाती भर लेना फिर धीरे धीरे छोड़ देना।

इन व्यायामों के साथ प्राणायाम करने की एक विशेष उपयोगिता है। लेकिन दूसरे व्यायामों के साथ भी प्राणायाम किया जा सकता है। परन्तु श्वांस का व्यायाम अन्य व्यायामोंसे भिन्न करना ही उचित है। यह ख्याल रखना चाहिये कि दैनिक व्यायाम के साथ प्राणायाम को संयुक्त न करें (Sophia Marquise A. Ciacoline—Deep Breathing, P. 33)। तौ भी जिस व्यायाम के करनेमें जरा देर लगता हो उसमें अपनी इच्छानुसार प्राणायाम किया जा सकता है(Bernarr Macfadden—

Home Health Library, Vol. 1, P. 479)। यहां तक कि किसी भी व्यायाम को धीरे-धीरे करके उसके साथ प्राणायाम का अभ्यास किया जा सकता है। दंड-बैठक आदि व्यायामों में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।

जो लोग बिल्कुल व्यायाम नहीं करते या जिन्हें व्यायाम करने के लिये समय नहीं मिलता वे भी टहलने के समय प्राणायाम का अभ्यास कर काफी लाभ उठा सकते हैं। सीधे चलते चलते पांच छः कदम तक सांस खींचना फिर आठ दस कदम जाते-जाते सांस छोड़ देना। ऐसा व्यायाम अत्यंत लाभदायक है। कोई कोई का कहना है कि इस ढंगसे सांसका व्यायाम करनेसे ही सबसे ज्यादा लाभ होता है (Great Ascetics and Eminent Physicians—Students' New Hygiene and Physical Culture, P. 86)। क्योंकि सांस का व्यायाम हमेशा साफ हवा में करना चाहिये।

संगीत भी एक तरह का प्राणायाम है। संगीत शास्त्र में षड़ज या ओंकार साधना को भ्रामरी प्राणायाम कहा गया है। इस प्राणायाम के अभ्यास से दीर्घ जीवन लाभ किया जा सकता है। कई प्रसिद्ध गायक बहुत अधिक दिन तक जीते रहे हैं।

[३]

लेकिन जैसे-तैसे प्राणायाम करने से प्राणायाम नहीं करना ही अच्छा है। ठीक से प्राणायाम करने पर ही लाभ होता है, नहीं तो इससे अपकार भी हो सकता है। इसलिये सांस का व्यायाम ऐसा करना चाहिये जैसा वह सहज, विपदरहित और लाभदायक हो। यह तभी संभव है जब हम दोनों नाकों की नली द्वारा एक साथ स्वांस लें और एक साथ छोड़ें।

स्वाभाविक हालत में जिस तरह स्वांस लिया और छोड़ा जाता है उसी को देर तक लेने एवं देर में छोड़ने का प्राणायाम एक तरीका मात्र है।

स्वांस लेने के बाद एक मिनट भी बिना रुके सांस छोड़ देना चाहिये (J.P. Muller—My System, P. 51)।

पाश्चात्य विद्वानों की यह सम्मति है कि आक्सिजन को शरीर में लेने के बाद कारबन डाइक्साइड के विषों को छाती में न रखकर शीघ्र ही बाहर फेंक देना उचित है।

साधारणतया सांस का व्यायाम खड़े होकर ही करना चाहिये। इस समय सीधे खड़े होके छाती को सामने की ओर फुला लेना जरूरी है। इससे शरीर के तमाम अंग अपने यथोचित स्थान पर पहुँच जाते हैं। इसलिये सीधे चलने एवं खड़े होने के अभ्यास करना चाहिये। इससे पाचन क्रिया आसानी से होती है और सारे शरीरका उपकार होता है। छाती फुलाकर चलने वाले को वीर कहलाते हैं। सचमुच में अगर हम भी छाती फुलाकर चलने का अभ्यास करें तो हम भी वीर बन सकते हैं।

सांस लेते समय यह ख्याल रखना चाहिये कि पेट भीतर ढुक जाय और छाती ऊँची उठ जाय। तभी समझा जायगा कि सांसका व्यायाम ठीक ढंगसे हुआ है। इससे छाती एवं पेट के भीतरी यंत्रों में काफी मर्दन होता है जिसके फलस्वरूप तमाम यंत्रों में नयी उत्तेजना प्राप्त होती है।

सांसके व्यायाम में मुख्य चीज ध्यान रखने की यही है कि हमेशा व्यायाम खूब धीरे-धीरे करना चाहिये जिससे चूं शब्द भी न हो। प्राणायाम से जो कभी कभी हानि होती है उसका मुख्य कारण जल्दीबाजी ही है। सांस लेने एवं छोड़ने के समयमें हाथोंकी उँगलियों पर एक हिसाब रखना अच्छा है। इससे प्राणायाम की एक शृँखला बन जाती है और कितनी देर में सांस लेना और छोड़ना चाहिये इसका एक अंदाज आ जाता है और तब सांस लेने में कमी या बेशी होने की गुंजाइश नहीं होती। फिर क्रमशः सांस लेने छोड़ने की अवधि में वृद्धि भी की जा सकती है। सांस लेने की अपेक्षा सांस छोड़ने में दो गुना समय देना चाहिये।

सांस का व्यायाम स्वच्छ हवा में करना आवश्यक है। इसके लिये खुला मैदान या छत उपयुक्त है। यदि इनकी सुविधा न हो तो खिड़की खोलकर सांस का व्यायाम किया जा सकता है। बिस्तरे पर लेटे रोगी खिड़की खोल कर इसका अभ्यास कर सकते हैं।

कहीं भी जरा साफ हवा मिलनेसे ही लोभी लोगों की भांति यह व्यायाम कर लेना चाहिये। अगर हवा धुंधली, धूल से भरी, गर्म, अत्यधिक ठंढी या दुर्गन्धपूर्ण हो तो प्राणायाम बिल्कुल ही नहीं करना चाहिये। उससे हानि की ही संभावना अत्यधिक रहती है।

सर्वदा नाक द्वारा ही प्राणयामका सांस लेना तथा छोड़ना चाहिये। प्रकृति ने सांस लेने के लिये नाक को ही विशेष रूप से बनाया है। नाकके भीतर जो फाटक है वह फिल्टर का काम करता है। हवा की गंदगी फाटकके बाहर अटक जाती है और शुद्ध हवा भीतर प्रवेश करती है। इसके अलावा हवा की गर्मी और ठंढी नाक द्वारा नरम बनकर शरीर के भीतर प्रवेश करती है। ये तमाम काम मुंह द्वारा कभी सभव नहीं हैं। सचमुच में मुंह से सांस लेने पर तमाम गंदी हवा बेरोक टोंक फेफड़े में चली जाती है एवं भिन्न-भिन्न रोगों को पैदा करती है। मुंह द्वारा सांस लेना रोगीपनकी निशानी हैं। यह एक अस्वास्थ्यकर अभ्यास है। हमेशा प्राणायामके समय में इस आदत से होशियार रहना चाहिये।

जो सांस का व्यायाम शारीरिक व्यायाम के साथ करते हैं, दिनमें दो बार करना ही उनके लिये यथेष्ट है। किन्तु यदि सुविधा मिले तो दिन में मेरुदंड सीधा करके बैठकर या खड़े हो कर दिनमें आठ दश बार प्राणायाम किया जा सकता है (Hervert A. Parkyn, M. D.—Auto-suggestion, P.124)। इस तरह दीर्घ स्वांस ग्रहण तथा वर्जन करने का अभ्यास हो जाने से हमेशाके लिये ही सांस दीर्घ हो जाता है।

प्राणायाम ग्रहण करने का मुख्य उद्देश्य है देह में अधिक से अधिक आक्सिजन पहुंचाना। लेकिन ज्यादे आक्सिजन ग्रहण करने से ज्यादा काम में नहीं लगती। प्रकृति अतिरिक्त आक्सिजन को निश्वास वायुके साथ बाहर फेंक देती है। इसलिये प्राणायाम के पहले शरीर में आक्सिजनकी मांग को (demand) तैयार करना जरूरी है। इसलिये प्राणायाम ग्रहण करनेका पहिले कोई व्यायास करके शरीर को गरम करलेना जरूरी है और इसके बाद सांसका व्यायाम करना चाहिये (Geo H, Taylor, M.D.—Massage, P. 68)। कोई एक व्यायाम कर लेनेसे ही शरीर गरम हो जाता है। इस कारण से देहकी अग्नि ज्यादासे आक्सिजनका आहुति मांगती है। तब प्राणयाम ग्रहण करनेसे ही सबसे ज्यादा लाभ होता है। इस लिये प्राणायामके पहले मर्दन या भ्रमण भी किया जा सकता है। बुखार वाले सभी रोगी कोई भी व्यायाम न कर प्राणायाम कर सकते हैं, क्योंकि उनका शरीर हमेशा गरम ही रहता है।

प्राणायाम करने के समय में यह ध्यान रहना चाहिये कि हवा भीतर में रुक न जाय। हिचकना और झांकना बिलकुल परिहार करना चाहिये। शांतिपूर्ण भाव से स्थिर होकर सांस लेनेसे इन उपद्रवोंसे छुटकारा मिल जाता है। प्राणायाम प्रारंभ करने के पूर्व फेफड़ों की हवा को बाहर निकाल देना चाहिये और इस पर भी विशेष ध्यान रखना चाहिये कि ली हुई सांस पूरी तरह से बाहर निकल जाय।

———

द्वाविंश अध्याय

विश्राम और आरोग्य

(१)

मेहनतके बाद आराम और आरामके बाद मेहनत जीवनकी बहुत स्वाभाविक वस्तु है। जन्मसे मृत्युतक मेहनत और आरामके हेर-फेरसे ही हम जीते रहते हैं।

शरीरके प्रत्येक पुर्जेके लिए जैसे श्रमका समय नियत है वैसे ही विश्रामका। हमारे शरीरमें हृदय एक ऐसा पुर्जा है जिसे निरंतर काम करना पड़ता है। पर वह भी प्रत्येक स्पंदनपर एक बार विश्राम ले लेता है और दूसरे स्पंदनके लिए शक्ति प्राप्त करता है। हमारे मस्तिष्क, पाकस्थली और पेट आदि भी विश्राम लेकर ही आगेके श्रमके लिए शक्ति एकत्र करते हैं।

श्रमके अंतमें शरीर थक जाता है—गिरने, टूटने लगता है। उस समय प्रकृतिको स्वयं आरामकी तलाश होती है। उस समय आवश्यक विश्राम कर लेनेपर शारीरिक और मानसिक शक्ति लौट आती है। श्रममें शरीरके भंडारसे खर्च हुई शक्तिको विश्राम पूर्ण कर देता है। इसीलिए परिमित विश्रामके बाद देहमें फिर पूर्व कार्य-क्षमता आ जाती है।

श्रम एक प्रकारका ध्वंस कार्य है। प्रत्येक श्रमके काममें शरीर कुछ न कुछ छीजता है। परिमित विश्राम द्वारा इस छीजनको पूरा करना आवश्यक है, अन्यथा शरीर-क्षयका भय है। इसीलिए थकानके बाद विश्राम किये बिना श्रम में लगे रहनेसे शरीरकी होनेवाली छीजनकी कमी आसानीसे पूरी नहीं होती।

जैसे, कुछ भी थकानके वाद विश्राम आवश्यक है, वैसे ही कई दिनतक श्रमके वाद भी एक पूरे दिन विश्राम करना आवश्यक है। इसीलिए छः दिन काम करके एक दिन विश्राम लेनेकी व्यवस्था समाजमें प्रचलित है। जिनके लिए संभव हो उन्हें एक लंवे कालतक काम करनेके वाद इसी तरह थोड़ा लम्बा आराम लेना चाहिए। इस प्रकार विश्राममें लगाया हुआ समय कभी व्यर्थ नहीं जाता। कारण the time spent in rest is an investment for the future—विश्रामके लिए दिए गए समयको भविष्यके शक्ति-भंडारकी पक्की संचित पूंजी ही समझना चाहिए (Frederick Tice, M. D., F.R.C. P.—Practice of Medicine, Vol. IV. P. 486)। इसीलिए दिमागी काम करनेवाले लोग शारीरिक श्रमिकोंकी अपेक्षा लगभग पन्द्रह-वीस साल अधिक आयु पाते हैं (Otto Juettner, M.D.,Ph. D.—A Treatise on Natural Therapeutics, P.334)।

लेकिन आजकी दुनियांमें विश्रामका अवसर आसान नहीं है। चोटी एड़ी का पसीना एक करके गुजर वसरका सामान पैदा हो पाता है। पहलेकी-सी हालत अब नहीं रही। तव जीवन "लीला" शब्द चलता था अब "जीवन 'संग्राम" हो गया है।

आज लोग घरोंमें चुप मारकर नहीं वैठ सकते। वड़े-वड़े शहरोंके लोगोंके फुटपाथ परसे चलनेको, हम चलना न कहकर दौड़ना कहें तो अधिक सार्थक होगा। एक ओर तो अभाव और दरिद्रता की मार, दूसरी ओर लोभ और प्रभुत्वका मोह मनुष्यको पागल किये दौड़ाये जा रहा है। इस कर्म-पिपासाके युगमें विश्राम लेना टेढ़ी खीर है।

लेकिन हम चाहें तो इस भागाभागमें थोड़ा-घना विश्राम ले सकते हैं। श्रमसे छुटकारा तो संभव नहीं है, पर यत्न द्वारा श्रमको हलका कर ले सकते हैं। मुमकिन है कि हमें आरामके वहुत मौके न मिलें पर ऐसा उपाय हो सकता है कि थोड़ेसे आरामसे पूर्ण विश्रामका फल मिल जाय।

मनुष्य कामके बोझसे उतना नहीं दबता जितना व्यस्तता और उद्वेग (hurry and worry)से। ये दोनों, बोझको गुरुतर बना देते हैं। श्रमकी अपेक्षा व्यस्तता और उत्तेजनासे शरीर अधिक छीजता है। इसीलिए जब काम में उत्तेजना या परेशानी नहीं होती तब मेहनत मानों कन्नी काटकर चली जाती है। श्रमसे बचा नहीं जा सकता, पर काम इस तरहसे किया जा सकता है कि उसमें व्यस्तता और उद्वेग न रहें। श्रमको लघु कर लेनेका यही सुन्दर उपाय है। इसे गीताकी भाषामें 'कर्मसु कौशलम्' कह सकते हैं।

जैसे हमें श्रमको लघु करना नहीं आता वैसे ही हम विश्राम की कला भी नहीं जानते। हम जब घूमने निकलते हैं तब भी मनको निश्चिंत नहीं रख पाते। घर वापसीके लिए मन छटपटाता रहता है। बाहर हवा-पानी बदलने जाते हैं, तब भी अक्सर यही हालत होती है। ऐसे अस्थिर मनको लेकर कभी विश्राम नहीं मिल सकता।

शरीर जब विश्राम लेता है, तब भी मन तो विचरता ही रहता है। कभी ईर्ष्या और विद्वेष में, कभी क्रोध और हिंसामें और कभी भांति-भांति की योजनायें गढ़ते हुए अदम्य कर्मपिपासामें मन गोते खाता रहता है। इस समय रक्तका प्रवाह शिराओंमें उछलता चलता है—तब कहिए बेचारे शरीरको विश्राम कहांसे नसीब हो। आराम कुर्सीपर या नरम बिछौनेपर पड़े रहने भरसे तो विश्राम होता नहीं, तब भी देहकी छीजन जारी ही रहती है।

(२)

इसीलिए मेहनतके भीतर जैसे आराम होता है, वैसे ही आराममें शरीरके भीतर मेहनत जारी रहती है। यानी आरामके मानी सिर्फ शारीरिक आराम नहीं है। शारीरिक विश्रामका मानसिक विश्रामसे मेल होनेपर ही शरीरको पूर्ण विश्रामका सौभाग्य प्राप्त होता है।

पर विश्रामकी मानसिक दिशा हमारी दृष्टिसे सदा ओझल रहती है। शय्यापर पड़े रहनेकी हालतमें भी हमारा शरीर खिचा—तना रहता है। इसका कारण मनकी उत्तेजित अवस्था है। किसी सोते बच्चेको गौरसे देखिए, तुरंत

हमलोगों की विश्रामकी भूल पकड़ी जायगी। बच्चा बेफिकरीसे देहको शिथिल किये शय्या पर पड़ा रहता है। हम इस प्रकार क्यों नहीं रह सकते? यदि हम भी बिछौनेके साथ अपनेको एकाकार करके बेफिकर पड़े रह सकें तभी हमारा विश्राम सफल होता है।

कुछ दिनोंकी कोशिशसे ठीक बच्चोंकी तरह ही सारे शरीरको शिथिल-करके विश्राम पाया जा सकता है। इस प्रकार विश्रामके निमित्त शरीरको शिथिल (relax) करना ही सबसे प्रधान बात है। कुछ ही दिनोंके अभ्यास से सारे शरीरमें इस तरहकी शिथिलता लाई जा सकती है। प्राकृतिक-चिकित्साकी भाषामें इसे आरोग्यमूलक शिथिलता (curative relaxation) कहा जाता है। इसे विश्राम-साधना भी कहा जा सकता है।

इस प्रकार विश्राम करनेका अपना एक खास तरीका है। इसे अपनानेके पहले शरीर और मनको तैयार कर लेना जरूरी है। सबसे पहले मनको चिंता-शून्य करना आवश्यक है। तब बिछौनेमें पीठके बल धीरे-धीरे लेटकर जैसे बिल्ली अंगड़ाई लेती है ठीक वैसी ही एक नाम मात्रकी कसरत करनी पड़ती है। पहले एक हाथ को धीरे धीरे, जितनी दूर तक संभव हो, फैला कर फिर वापस लाया जाय। तब उस हाथ को बिछौने पर इस तरह से गिरने दिया जाय मानों वह टूट कर गिर गया हो। उसे वहीं छोड़ें। दूसरा हाथ भी उसी तरह फैला और सिकोड़ कर गिरने दें। तब एक के बाद एक करके दोनों पैरों को, जहां तक संभव हो फैलाकर फिर उसको सिकोड़ कर छाती के पास लायें। जब दोनों घुटने छाती से मिल जायं तब सिर को घुटनों के साथ मिला दें। इस क्रिया में इस बात पर ध्यान रखें कि मेरुदंड—रीढ़ की हड्डी सीधी रहे, और फैली रहे। इस प्रकार जब मेरुदण्ड अच्छी तरह फैल जाय तब सिर और दोनों पैरों को अपनी जगह जाने दें। इस तरह कि मानो वे बेजान होकर बिछौने पर गिरते हैं।

अब दोनों आंखें बंद करके शरीर के प्रत्येक अंग के बारे में सोचें कि

324

वह अंग शिथिल हो गया है। किसी अंग पर मन को टिकाते ही आप समझ पायेंगे कि अंदर ही अंदर एक उत्तेजना का स्रोत जारी है। तभी हम इस बात का ठीक-ठीक अनुमान कर पाते हैं कि विश्राम के लिए पड़ रहने पर भी शरीर आराम नहीं पाता। किंतु क्षण भर इस तरह सोचने मात्र से ही वह अंग शिथिल हो जायगा, यानी उसकी सारी उत्तेजना जाती रहेगी। कम से कम थोड़ा अभ्यास करने पर यह दशा अवश्य आ जाती है। क्योंकि यह एक तरह की स्वकल्प-भावना (auto-suggestion) है।

पहले एक पैर के बारे में सोचें कि हमारा एक समूचा पांव शिथिल और शांत होता जा रहा है। पहले पांव की अंगुलियों के सम्बन्ध में इस प्रकार सोचना शुरू करके उसके बाद इस भावना को ऊपर की ओर ले जाना चाहिए। फिर दूसरे पांव के बारे में भी इसी प्रकार सोचें। फिर अलग-अलग एक हाथ के सम्बन्ध में सोचें। इसके बाद पीठ के बारे में सोचें। पीठ के बारे में सोचते समय खयाल करें कि मेरुदंड नीचे से शुरू करके क्रमशः ऊपर की ओर शिथिल—निस्पंद होता जा रहा है। तब पेट, छाती, गरदन और मुंह के बारे में इसी प्रकार सोचें।

इस तरह कुछ दिन अभ्यास करने पर सोचने मात्र से हाथ पांव आदि तुरन्त शिथिल पड़ जाते हैं। अब दोनों हाथों को पेट के ऊपर उठा कर पेट के नीचे की ओर संयुक्त अवस्था में रक्खें। हाथों को खूब धीरे से मिलाए रखना आवश्यक है। इससे शुरू-शुरू में पेट पर कुछ दिक्कत-सी मालूम हो सकती है। लेकिन यह दिक्कत जल्दी ही दूर हो जाती है।

इसके बाद शरीर की इस शिथिल अवस्था को भंग किये बिना एक पांव का टखना, दूसरे पांव के टखने पर रक्खें। यह सारा कारबार तीन चार मिनट में, जितनी देर हमें बतलाने में लगी है, उससे भी अल्प समय में पूरा हो जाता है। पर इतने से ही सारे शरीर और मन में एक प्रकार

की अद्भुत शांति उतर आती है। ऐसा लगता है मानो सारा शरीर आकाश में तैर रहा है। देह के यों शिथिल हो जाने पर साधारणतः अपने आप ही निद्रा आ जाती है, लेकिन उस समय सो जाना उचित नहीं है। उस समय जागते रहकर देहकी अद्भुत शांतिमय अवस्थाका आनंद लेना चाहिए। पर सो जानेपर भी इस समय शरीर ऐसा विश्राम पाता है कि साधारण विश्राम की अपेक्षा वह कहीं गहरा होता है (Charles Sanford Porter, M. D.—Milk-cure, P. 40)। इस अवस्था को करतलगत करने के लिए साधारणतः एक से दो हफ्ते तक का समय लगता है। लेकिन एक वार अभ्यास हो जाने पर बिछौने पर पड़कर चाहने मात्र से देह शिथिल और ढीली हो जाती है।

देह के इस प्रकार शिथिल हो जाने पर साथ ही साथ स्वास प्रस्वास का व्यायाम भी जारी कर दें तो बहुत फायदा होता है। वास्तव में तो स्वांस का व्यायाम आरोग्यमूलक शिथिलता का एक अपरिहार्य अंग है। शरीर के शिथिल हो जाने के बाद तीन चार वार तक स्वास प्रस्वास का व्यायाम किया जा सकता है। इस दशा में इस व्यायाम को बहुत जल्दी-जल्दी करने की जरूरत नहीं होती। अच्छी तरह आराम लेकर थोड़े-थोड़े समय के बाद एक एक वार कर लेना ही काफी हो जाता है। लेकिन इस समय देह की शिथिलता भंग न होने पाए, इसके लिए स्वास प्रस्वास के व्यायाम को बहुत धीरे धीरे करना उचित है। तथा शिथिलता सध जाने पर शरीर जितना शिथिल हो जाता है स्वास प्रस्वास उसी अनुपात से गहरे हो जाते हैं। उस समय जी चाहे जितनी वार व्यायाम किया जा सकता है (E. J. Booma and M. A. Richard—Relaxation in Everyday Life, P. 35 to 45)। इस तरीके से आध घंटे के लिए शरीर को शिथिल कर लेना काफी है। किंतु नित्य इसके करने की जरूरत नहीं होती। साधारण दशा में हफ्ते में

दो दिन करना काफी होता है। लेकिन खास-खास तीव्र रोगों में इसका नित्य करना आवश्यक होता है। उसके बाद ज्यों-ज्यों रोग घटता जाय इसके दिन बढ़ाते जायं।

देह और मन की श्रांत अथवा उत्तेजित दशा में यह किसी भी समय किया जा सकता है। किंतु साधारण दशा में खाली पेट या भोजन के पहले करने से सबसे ज्यादा फायदा होता है।

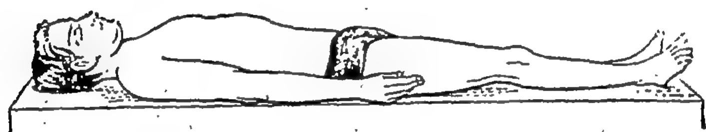
[३]

थके हुए शरीर में फिर ताजगी लाने के लिए इसको शिथिल करने जैसा दुनियां में और कोई उपाय है या नहीं इसमें संदेह है। शरीर की श्रांत दशा में सिर्फ दश मिनट के लिए यह कर लिया जाय तो सारी थकान जाती रहती है, क्लांति कट जाती है। बहुत बार मेहनत के बाद कुछ काल के लिए शरीर को इस प्रकार शिथिल कर लेने पर फिर काम में लगाया जा सकता है।

शरीर और मन की उत्तेजित अवस्था में भी चाहे जिस समय यह विधि अपनाकर आश्चर्यजनक लाभ उठाया जा सकता है। मन के अकस्मात् क्रुद्ध या उत्तेजित हो जाने पर बिछौनों में पड़ कर शरीर को ढीला छोड़ने मात्र से मन शांत हो जाता है। अधिक क्या, जो लोग अस्वाभाविक उपाय से शरीर को नष्ट करते हैं वे भी देह के उत्तेजित होने के बाद भी शरीर को शिथिल कर सकें तो बातकी बात में यह अस्वाभाविक उत्तेजना गायब हो जाती है।

शरीर पर काबू सहज है, मनको वशमें लाना कठिन। यह हमेशा अपनीवाली करता है। इसीलिए साधारण मनुष्य की अवस्था क्षिप्तावस्था कही जाती है। लेकिन बड़ी बात यह है कि मांश-पेशियोंकी शिथिलता मन पर भी अपना असर डाले बिना नहीं रहती। मन की चंचल और उत्तेजित अवस्था भी बहुत बार

शरीरकी ज्ञात और अज्ञात अवस्था में से पैदा होती है। इसीलिए कुछ दिनों शरीर को शिथिलता का अभ्यास कर लेने पर जब मांसपेशियों और स्नायुओं की उत्तेजना कम हो जाती है तब मन भी उसी के साथ शांत और संयत हो जाता है और मानसिक शक्ति खूब बढ़ जाती है। इसीलिए देहको शिथिल करने की पद्धति हमारे यहां योगशास्त्र में एक आसन की भांति बतलाई गयी है। अंग्रेजी में इसे शरीर की शिथिलता (relaxation) कहा जाता है। हमारे योगशास्त्र में उसे शवासन कहा गया है। कोई



शवासन

कोई यूरोपियन इस बात का दावा करते हैं कि उन्होंने इस पद्धतिका आविष्कार किया है। लेकिन शरीर और मन को शांत करनेवाले इस अद्भुत कौशल का यूरोपियनों के दिमाग में आने के कई हजार वर्ष पहले भारतीय ऋषियों को ज्ञान था।

योगशास्त्र में इसकी बड़ी प्रशंसा है।

एक भारतीय योगीका कहना है कि जैसे पानी की बांध खोल देने से पानी अधिक गति से बहने लगता है वैसे ही शरीरको शिथिल कर देने से सारे स्नायुओं से शक्ति-धारा बहने लगती है।

वास्तवमें कुछ दिन शरीरकी शिथिलताका अभ्यास कर लेने पर मन की दिशा में भी अद्भुत परिवर्तन हो जाता है। इसे अपनाने का फल यह होता है कि क्रोधी और चिड़चिड़ा स्वभाव शांत हो जाता है कलह-स्पृहा दूर हो जाती है, मनुष्य उत्तेजना रहित होकर युक्तिपूर्वक बातें करने लगता है, सहज में घबराता नहीं, भयभीत नहीं होता, और काम की कोई बात भूलता नहीं। मन के इस प्रकार शांत होने पर शरीर का स्वास्थ्य भी उन्नत

होता है। कुछ दिनों तक शरीर की शिथिलता का अभ्यास कर लेने पर इस पर ऐसा काबू हो जाता है कि प्रबल उत्तेजना के समय भी किसी के साथ खड़े खड़े बातें करते हुए या राह चलते-चलते इच्छामात्रसे शरीर को शिथिल करके देह और मन को शान्त कर लिया जा सकता है।

लेकिन दुनियां में सभी बातोंकी हद होती है। शिथिलता के अभ्यास को निर्दिष्ट सीमा में रखना उचित है। शिथिलता के अभ्यास से जब चाहने मात्र से देह शांत हो जाय तब खूब देर-देरसे और सिर्फ जरूरत पड़ने पर ही इसका आश्रय लेना उचित है अन्यथा शरीर और मन में एक प्रकारका अव-साद आ सकता है। जहां तक कि यह स्नायविक उत्तेजना मिटाकर शरीरको विश्राम देती है, वहां तक तो इसका उपयोग ठीक है, लेकिन जब यह अवसाद लाने लगे तब इससे हानि होती है। इसलिए नियम है कि देह को शिथिल करना जब अपने काबू में हो जाय तब शिथिल दशा में भाग-दौड़, उछल-कूद, तैराकी, कुश्ती आदि श्रमसाध्य कार्यों में अपने को लगा हुआ मानने की कल्पना करनी चाहिये। इसे व्यायामहीन व्यायाम (exercise without exercise) कहा जाता है। इसे भावना लेने पर फिर अवसाद नहीं आ सकता। जब शिथिलता का अच्छी तरह अभ्यास हो जाय तब मेरुदंडको ठीक रखकर हाथ पांव को कुछ समय तक हिलाया जा सकता है। इससे शिथिलता नष्ट नहीं होती और अवसाद भी दूर हो जाता है। लेकिन जो हमेशा काममें लगा रहता है रोज शरीर ढीला करनेसे भी उसे अवसाद नहीं आता है।

(४)

शिथिलताके अभ्यास से स्नायुसमूह में स्निग्धता आने के कारण भिन्न-भिन्न स्नायविक रोगों में इनके द्वारा अद्भुत लाभ होता है। अनिद्रा रोग को दूर करने का यह एक विशेष साधन है। यदि सुनिद्रा प्राप्त न हो तो सारे आराम ही व्यर्थ हो जाते हैं। वास्तव में स्वाभाविक विश्राम तो

केवल निद्रा के समय ही मिलता है। निद्रा काल में सारी उत्तेजनाओं का अंत हो जाता है। शरीरको अपने टूटे हुए तंतुओं की मरम्मत करनेका मौका मिलता है। यदि नित्य समय पर नींद न आये, अथवा गहरी निद्रा न आये अथवा थोड़ी देरके बाद टूट जाय, तो कुछ समयतक हर रातको सोनेके पहले देहको शिथिल कर लेना उचित है। कई दिन इस प्रकार करनेके बाद देहको शिथिल करने मात्रसे अपने आप नींद आ जाती है, और कब आई इसका पता भी नहीं चलता।

हकलाहटको अब मुखसम्बन्धी रोग नहीं गिना जाता। यह अच्छी तरह साबित हो गया है कि यह एक स्नायविक विश्रृंखलासे पैदा होनेवाला रोग है। नियमित रूपसे नित्य आधे घंटेके लिये देहको शिथिल कर लेनेसे क्रमशः हकलाहट दूर हो जाती है और अंतमें रोगीके स्वरयंत्रको पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त हो जाता है।

अन्यान्य साधारण रोगोंमें देहको शिथिल करनेकी उतनी आवश्यकता न होनेपर भी ऐसा कोई रोग नहीं है जिसमें विश्रामकी आवश्यकता न हो। अतिरिक्त मेहनतके बाद देह जैसे विश्राम चाहता है, वैसे ही रोगके समय भी शरीर काम करनेसे इन्कार करता है। क्योंकि शरीर जब विश्रामरत रहता है, तभी प्रकृति शरीरकी मरम्मत करनेका अवसर पाती है। इसलिए सभी रोगोंमें विश्राम ही एक चिकित्सा है।

प्रायः सभी तरहकी वेदनाओंमें मामूली हिलडुलसे ही तकलीफ होती है। उनमें कुछ समयके लिए केवल विश्राम मात्रसे बहुत बार वेदना दूर हो जाती है। इसलिए यदि कोई हाथ या पैर टूट जाता है या मोच खा जाता है तो सबसे पहले ऐसी तदबीर की जाती है कि जिससे हाथ-पैर हिलने डुलने न पावें। चोट लगे हुए अंगको इस प्रकार विश्राम देनेकी व्यवस्था कर देनेपर प्रकृति उस अंगको स्वयं ही पूर्ववत कर देती है। ठीक इसी तरह पेटमें दर्द होनेपर भी न खाकर हम पेटको विश्राम देते हैं।

इसी प्रकार सिरमें तकलीफ होनेपर सिरको भी विश्राम दिया जाता है। आंखोंकी बीमारीमें अथवा शरीरके किसी दूसरे यंत्रके रोगमें भी इन सभी यंत्रोंको विश्राम देना उचित है। बहुत बार शरीरको विश्राम दे देने-पर उसके भिन्न-भिन्न यंत्र विश्राम पा जाते हैं। इसीलिए पेटके घाव वगैरहमें पूर्ण विश्राम की व्यवस्था की जाती है। सभी तरहके ज्वर रोगोंमें विश्राम अपरिहार्य माना जाता है। ज्वरके समय सिर्फ विश्रामसे ही बहुत हालतोंमें ज्वर अपने आप अच्छा हो जाता है।

यक्ष्माके रोगतक में रोगीको सिर्फ विश्राम देने मात्रसे उसका ज्वर और अधिकांश उपाधियाँ अपने आप कम हो जाती हैं। यदि यक्ष्माके रोगीको आवश्यकतानुसार कुछ दिनों या कुछ सप्ताहोंका विश्राम दिया जाय तो बहुत बार केवल उसीसे रोगीकी दुर्बलता, मंदाग्नि, अजीर्ण, हृदयकी धड़कन, ज्वर, खांसी और कफमें कमी हो जाती है। और कभी-कभी पूर्ण रूपसे दूर हो जाती है (Francis Marion Pottenger, M. D., LL. D. —Tuberculosis in the Child and the Adult, P. 404)।

पूर्ण विश्राम वजन बढ़ानेमें प्रधान रूपसे सहायक होता है। इसी-लिए जिन रोगियोंका वजन बढ़ानेकी जरूरत होती है उन्हें हमेशा लंबे समयका विश्राम दिया जाता है।

इन सब कारणोंसे सभी रोगोंमें विश्रामसे फायदा होता है। कठिन-तम रोगोंमें सिर्फ थोड़ा विश्राम लेना ही काफी नहीं होता है। उन हालतोंमें बराबर बिछौनेमें रहकर पूर्ण विश्राम (rest in bed) लेना आवश्यक होता है। पूर्ण विश्रामका मतलब है कि रोगी शय्यासे किसी कामके लिये न उठे, दूसरा ही उसका काम बजा दे।

लेकिन रोगकी हालतमें, और स्वस्थ दशाओंमें भी, विश्रामकी यथेष्ट उपकारिता होते हुए भी, यह हमेशा याद रखना जरूरी है कि विश्राम और

आलस्य दोनों एक चीज नहीं हैं। रोगकी दशाको छोड़ दिया जाय तो आरामके मानी यही लेना होगा कि मेहनतके बाद आराम। जो आराम मेहनतके पीछे नहीं चलता है वह देह और मनकी निष्क्रिय अवस्थाको बढ़ाता है, वह आराम नहीं आलस्य है। अतिरिक्त मेहनत जैसे शरीरको छिजाती है, आलस्य भी वैसे ही मनके भीतर मुर्चा लगा देता है। आलस्य और थकानमेंसे यदि एकको चुनना हो तो थकानको ही चुनना उचित है। मेहनतसे घिस–घिसकर मर जाना अच्छा है, बजाय इसके कि पड़े पड़े नाश हों—it is better to wear out, than rust out.

त्रयोविंश अध्याय

स्वकल्प भावना (Auto-suggestion)

[१]

शरीर और मन आपस में अभिन्न रूप से मिले हुए हैं। शरीर के साथ मन का एवं मन के साथ शरीर का एक घनिष्ठ लगाव है। मानसिक हालत से शरीर एवं शारीरिक हालत से मन हमेशा ही प्रभावित होता रहता है। कितने ही बार ऐसा देखा गया है कि सुस्वादु भोजन की कल्पना मात्र से मुंह में पानी भर आता है। कभी-कभी वीभत्स या भयानक घटना देखने से ही पाचन क्रिया बंद हो जाती है। खून देखने मात्र से ही बेहोशी अक्सर दिखाई पड़ती है। इन बातों से प्रमाण मिलता है कि मन के साथ शरीर का कितना घनिष्ट सम्बन्ध है।

जिन्हें हम रोग कहते हैं, अधिक अवस्था में वे मन के द्वारा ही प्रभावित होते हैं। कई बार ऐसा देखा गया है कि अचानक डर पैदा हो जाने से ही तरह-तरह के रोग पैदा होते हैं। हैजे के समय कितने व्यक्ति केवल डर के कारण ही हैजे के शिकार बन जाते हैं। डर जाने के कारण पतला दस्त होने लगता है।

हृदय रोग की चिन्ता करते-करते सचमुच हृदय रोग के चुंगल में फंस जाते हैं। चर्म रोगी के कपड़ों के स्पर्श से डर जाने से, अक्सर देखा गया है, कि देखते-देखते चर्म रोग छूने वाले व्यक्ति के सारे शरीर में उसके लक्षण दिखाई देने लगे। यहाँ तक कि डाक्टरी कितावों में रोगों के विवरण पढ़ने के कारण आदमी के शरीर में उस के लक्षण फूट निकलते हैं। इस प्रकार डर के

कारण मृत्यु भी संभव है। एक बार चिकागोकी एक महिला को सिर दर्द हुआ। महिला अपनी आदत के अनुसार आलमारी से सिडलिज पाउडर खाने के लिये उसे खोला और दवा खाकर उसे अन्दर रख दिया। उस समय उनकी एक लड़की टेबुल की दूसरी ओर काम कर रही थी। ठीक उसी समय वह चिल्लाकर कहने लगी कि माँ तुमने क्या किया? तुमने तो आर्सिनिक खा लिया है! उनके लड़के ने किसी काम के लिये आर्सिनिक लाकर उस आलमारी में रख दिया था। बेचारी महिला बहुत डर गयी। साथ ही साथ उसके शरीर में विष के लक्षण दिखाई पड़ने लगे और कुछ मिनटों में उस महिला की मृत्यु हो गयी। 'मरने के बाद उनके लाशकी परीक्षा की गयी। परीक्षा से देखा गया कि उन्होंने सिडलिज पाउडर खाया था और उनकी मृत्यु डर के कारण ही हुई थी (E. W. Cordingly—Principles and Practice of Naturopathy, P. 24)।

बुरी भावनाओं से जिस तरह विभिन्न रोग पैदा होते हैं और जीवन संकट में पड़ जाता है उसी प्रकार अच्छी भावनाओं से विभिन्य रोग आराम हो सकते हैं, एवं संकटमय जीवन को बचाया जा सकता है।

प्राचीन मिश्र, ग्रीस और भारतवर्ष में इस तरह की बहुत सी घटनाओं का विवरण मिलता है कि किसी भी रोगी को एक साधु ने स्पर्श किया और वह शीघ्र ही आरोग्य हो गया। हमारे देश में अब भी इस तरह की घटनाओं की कमी नहीं।

मैं स्वयं जानता हूँ कि एक सात साल का रोगी लकवा से पीड़ित होकर बिछौने पर पड़ा हुआ था। एक साधु ने आकर उनसे पूछा, "तुम क्यों सोये हुए हो? उठो! तुम्हारी बीमारी छूट गयी है।" वह उठ कर खड़ा हुआ और तब से बिलकुल अच्छा हो गया। यह सिर्फ सुनी हुई बात नहीं है। उस आदमी के आरोग्य लाभ की शीरनी भी हमें मिली थी। पीछे हम ने इनसे एक स्कूल में शिक्षा प्राप्त की।

यह कोई आश्चर्यजनक घटना (miracle) नहीं है। यदि

अवचेतन मन (sub-conscious mind) में यह विश्वास पैदा हो कि रोग अच्छा ही हो गया, या हो रहा है तो निश्चय ही रोग अच्छा हो जायगा। यह एक वैज्ञानिक सत्य है। आज-कल पृथ्वी के सब ही भागों में जड़ विज्ञान की जैसी गवेषणा हो रही है मनोविज्ञान की गवेषणा का कार्य भी उसी प्रकार शुरू हुआ है। उसी गवेषणा द्वारा सिद्ध हुआ है कि अवचेतन मनमें विश्वास पैदा करने से तमाम रोग आराम हो जाता है। इस प्रकार रोगों के आराम करने की प्रणाली वर्तमान में व्यावहारिक मनोविज्ञान (Applied Psychology) का एक प्रधान अंग कहा जाता है। मन में इस प्रकार विश्वास पैदा करनेवाली पद्धति को suggestion कहा जाता है। जब अपनी स्वच्छ भावनाओं द्वारा अपने रोगों से छुटकारा पाने की चेष्टा की जाती है तब उसे auto-suggestion कहा जाता है। हमारे देश की भाषा में इसे स्वकल्प-भावना कह सकते हैं। यह तो वहुतेरे जानते हैं, कि बहुत तड़के उठने की जरूरत होने से, यदि सोते समय इस प्रकार दोहरा लिया जाय कि पांच बजे उठूँगा तो निश्चय ही ठीक पांच बजे नींद टूट जाती है।

इसी तरह कोई भी धारणा अवचेतन मन में पहुँचाने से उसी के अनुसार काम होने लगता है। हमलोगों की धारणा एवं चिन्ता ही कार्यरूप में बदलती है (Emile Coue—Self-mastery through Conscious Auto-suggestion, P. 56.)। भूत की कहानी सुनने से हमलोग डर जाते हैं। भूत रहे या न रहे, कहानी सच हो या झूठ हो पर उससे ही हमें डर लग जाता है। डर की चिन्ता जब अवचेतन मन में पहुंचती है तब सच हो जाती है। Thoughts become realties—चिन्तायें सत्य हो जाती हैं। इस प्रकार मन में जिस तरह बुरी भावनायें आने से रोग पैदा हो सकता है, उसी तरह अच्छे भावनायें जगाने से रोग आराम किया जा सकता है। यही मूल तत्व स्वकल्प भावना का आधार है।

आज कल इसी मूल नीति के आधार पर पृथ्वी के बहुत से देशों में

चिकित्सा कार्य चल रहा है। एवं बहुत से रोगी उससे आरोग्य होते हैं। जो चिकित्सालयों में इस तरह की चिकित्सा की जाती है, उन में फ्रांस देश के विख्यात मनोवैज्ञानिक एमील कोए (Emile coue) के चिकित्सालय ने आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है। उनके चिकित्सालय में कोई ऐसा रोगी नहीं है जिसे आराम नहीं किया जाय।

रोगों से छुटकारा पाने के लिये लोग दवाई पीते हैं। दवाई खाने से ही सदा रोगी अच्छा हो जाता है—ऐसी बात नहीं है। साधारणतः विश्वास से ही अनेक जगहों में आरोग्यता प्राप्त होती है।

चिकित्सक का आत्म-विश्वास, उनका चाल-चलन, उनकी दृढ़ आवाज, उनकी ख्याति एवं पोशाक यह तमाम चीजों रोगी के मन के ऊपर एक गहरा असर डालती हैं। डाक्टर यदि रोगी को देख कर यह कहे कि उसका बचना संभव नहीं तो उसका बचना बहुत कठिन हो जाता है। कितनी बार तो डाक्टर की असावधान उक्ति से ही रोगी की मृत्यु हो जाती है।

केवल आशा की उक्ति रहने से बिना दवाई के ही रोगी चंगा हो जाता है। हमें तो एक होमियोपैथी के डाक्टर ने कहा कि डाक की गड़बड़ी के कारण दवाइयां उनकी डिस्पेन्सरी में खतम हो गयी थीं। तब रोगियों को दवाई के बदले उन्होंने सिर्फ जल ही दिया, और उसी से बहुत से रोगी आराम भी हो गये। सचमुच में बहुत जगह दवाई सिर्फ स्वकल्प भावना का एक साधन मात्र है। बहुतेरे लोग स्वप्न में पाई हुई लता व पत्ते खाकर या तावीज, कवच पहन कर रोग-मुक्त हो जाते हैं। यह उसी भावना का ही फल है। औषधि खाने के बाद रोगी सोचता है कि वह अच्छा होने लगा है, वह धीरे-धीरे अपने को अच्छा महसूस करते करते पूर्ण रोग से मुक्त हो जाता है। स्वकल्प भावना द्वारा इसी तरह का एक ही फल लाभ किया जा सकता है।

रोग को बड़ा समझने से ही रोग अच्छी तरह पकड़ लेता है। कोई

कोई दूसरों की सहानुभूति पाने के लिये थोड़ी ही बिमारी में दुख से क्रन्दन शुरू कर देते हैं। इनके शरीर में वह रोग गहरा हो जाता है।

कितने लोगों की यह आदत है कि रास्ते में जाते जाते किसी से मुलाकात होने पर झट कह देते हैं कि तुम्हारा चेहरा तो बहुत उदास लगता है। ऐसे आदमी समाज के अनिष्टकारी हैं। जभी हम इस ढंग से किसी के मन में डर पैदा कर देते हैं, तभी हम उसके स्वास्थ्य की क्षति करते हैं। डर एक प्रबल बुरी भावना है। डर से शरीर में रोग रोकने वाली शक्ति घट जाती है एवं रोग को तुच्छ समझने से रोग अपने आप ही हलका हो जाता है।

रामकृष्ण परमहंस ने एक बार कहा था कि यदि सांप के काटने से कहा जाय कि विष नहीं है तब विष विलीन हो जाता है। यह एक ऐसी वैसी बात नहीं है। बल्कि एक वैज्ञानिक सत्य है। स्वकल्प भावना इसे बिल्कुल प्रमाणित करता है।

हमारे शरीर के भीतर अवचेतन मन ही स्नायु आदि यन्त्रों के द्वारा शरीर के तमाम यंत्रों को चलाता है। हमारी पाचन क्रिया, रक्त चलाचल एवं अन्य यन्त्रों की परिचालना सब काम इस अवचेतन मन से, स्नायु आदि द्वारा होते हैं। जब स्वकल्प भावना से कोई स्वच्छ चिन्ता अवचेतन मन में उत्पन्न कर दिया जाय, तब उसी के अनुसार काम होने लगता है (C. Harry Brooks—The Practice of Auto-suggestion, P. 51)।

[२]

अपने मन में आरोग्यमूलक चिन्ता आवृत्ति करने को स्वकल्प भावना (auto-suggestion) कहते हैं। मैं अच्छा हो रहा हूं और शीघ्र

ही अच्छा हो जाऊंगा, शीघ्र ही मेरी तन्दुरुस्ती लौट आयेगी इस तरह के लगातार मानसिक भावना को ही हम स्वकल्प भावना कह सकते हैं।

इस तरह का स्वकल्प भावना करने से निश्चय ही रोग अच्छा होने लगता है। तब फिर अपने मन में यह भावना लानी चाहिये कि हम बहुत कुछ अच्छे हैं। दिन ब दिन हमारा स्वास्थ्य बहुत अच्छा होता जायगा और कुछ ही दिनों में तन्दुरस्ती लौट आयेगी।

इसके बाद रोग के लक्षण विलीन हो जाते ही इस ढंग से भावना करना चाहिये, मैं अब बिल्कुल अच्छा हो गया हूं, अब से हमारे स्वास्थ्य में क्रमशः उन्नति ही होगी, हमारा स्वास्थ्य फिर खराब नहीं होगा। यह अवस्था हमारे जीवन में हमेशा बनी रहेगी।

इन बातों का पहले मन ही मन आवृत्ति करना चाहिये, उसके बाद दो चार बार धीरे से उच्चारण करके दुहराना चाहिये जिससे कि अपना कान सुन सके। इस समय दोनों आंखें बंद रखनी जरूरी है।

स्वकल्प भावना हमेशा ही किसी एकान्त स्थान में करनी चाहिये। इस समय अपने मन को सब चिन्ताओं से शून्य (vacant) रखना चाहिये। इस ढंग का ही लाना चाहिये कि जैसे मन बिल्कुल विचार-शून्य हो।

स्वकल्प भावनाका असर सबसे अधिक तब होता है जब शरीर और मनके अर्ध चेतन अवस्था में भावना किया जाता है। इसलिये सोते समय जब दोनों आंखें ऊंघने लगती हों, या सुबह उठते समय जब पूरी नींद नहीं टूटती है तभी स्वकल्प भावना करने का सबसे अच्छा अवसर है (Arnold Lorand, M. D.—Defective Memory, Absent-mindedness and their Treatment, P. 298)।

स्वकल्प भावना के समय में शरीर को शिथिल (relax) कर देना उचित है। शरीर जितना अधिक शिथिल होगा अवचेतन मनकी शक्ति उतनी ही अधिक वृद्धि पायेगी। इसलिये बिछौने पर लेटकर या आराम

कुर्सी पर बैठकर स्वकल्प भावना करना चाहिये। लेकिन स्वकल्प भावना करते करते जब अभ्यास हो जाय तब ट्राममें, बसमें, रास्ता चलते या किसी से बातें करते समय भी स्वकल्प भावना किया जा सकता है और दोनों आंखें बन्द करने की आवश्यकता नहीं रहती (Charles Baudouin—Suggestion and Auto-suggestion, P. 159)।

अवचेतन मन को भावना देते समय कभी भी रोगों के संबंध में चिन्ता नहीं करनी चाहिये। तमाम विरोधी विचारों (negative suggestion) को एक दम छोड़ दो। जिससे कि मनके ऊपर रोग के चिन्ता की छाप न पड़े इसका भी हमेशा उपाय करना चाहिये। यह कभी नहीं सोचना चाहिये कि मुझसे दुर्बलता चला जायगी, बल्कि यह सोचना चाहिये कि हम दिन ब दिन मजबूत होते जायेंगे। आशा और निराशा दोनों का मूल्य समान है। लेकिन एक का भावना जीवन को सफलता देता है और अन्य का भावना जीवन को अंधकार में ढकेल देता है।

भावनाओं को हमेशा एक दायरे के भीतर रखना उचित है। जैसे घाव रोगी को कभी यह कहना उचित नहीं कि घाव अभी सूख जायगा, बल्कि यह कहना उचित है कि शीघ्र ही घाव सुख जायगा। जो चीज झूठ हो ऐसी कोई भी असत्य भावना नहीं करना चाहिये। दांत के दर्द होने के समय में यह कभी नहीं कहना चाहिये कि दर्द नहीं है बल्कि यह भावना करना चाहिये कि दर्द कम हो रहा है।

स्वकल्प भावना करते समय में कभी भी केवल एक बातको दुहराना नहीं चाहिये बल्कि दो तीन बातोंको एक साथ मिलाकर दुहराना चाहिये। दुहराने के बाद स्वकल्प भावना द्वारा जिस हालत की आशा की जाती है उस हालत के बारेमें भी सोचना चाहिये। यह हमेशा याद रखना जरूरी है कि नियमबद्धता एवं दृढ़ता (regularity and persistance) स्वकल्प भावना का प्राण है। बार-बार और बिना किसी दिन भी नागा किये

स्वकल्प भावना करना उचित है। प्रत्येक दिन दो बार और दो मिनट से दस मिनट तक स्वकल्प भावना करना जरूरी है। इस प्रकार बार बार भावना करके अपने मन को इस भावना के घेरेमें बांध लेना उचित है। जब यह भावना अवचेतन मनमें दृढ़ रूपसे घर कर लेगी तभी इससे लाभ होगा (Arnold Lorand, M. D.—Defective Memory, Absent-mindedness and their treatment, P. 297)।

स्वकल्प भावना के समय में हमेशा ही इच्छाशक्ति (will power) को चलाना बंद रखना चाहिए। यह हमेशा ध्यान रखना चाहिये कि स्वकल्प भावना द्वारा जो भी आरोग्य लाभ होती है वह इच्छाशक्ति के बल पर नहीं। बल्कि, The greatest enemy of auto-suggestion is effort—चेष्टा स्वकल्प भावनाका सबसे बड़ा शत्रु है (C. Harry Brooks—the Practice of Auto-suggestion, P.83)।

यह देखा जाता है कि कोई एक समस्या को लेकर जितना ही अधिक सोचता है उतना ही समस्या का समाधान दूर चला जाता है। बल्कि मनमें वह और अधिक उलझ जाता है। किन्तु उस समय में जरा सो जाने पर आपसे आप उसका समाधान मनमें निकल आता है। किसी का नाम जब याद नहीं आता है तब जितना भी सर मारा जाय वह उतना ही उलझ जाता है। उस समय मन को दूसरी ओर ले जाने पर अपने आप नाम याद आ जाता है। जिसे नींद नहीं आती वह जितनी भी चेष्टा करे उसे नींद उतनी ही दूर चली जाती। ऐसी अवस्थामें अपने मनको चिन्ताहीन कर स्वकल्प भावना करने से नींद शीघ्र ही आजाती है।

इच्छाशक्ति सबसे प्रबल शक्ति है इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु स्वकल्प भावना इच्छाशक्तिके क्षेत्रमें नहीं है। सचेतन मन को सुला कर अवचेतन मनसे काम लेना ही स्वकल्प भावना की प्रधानता है। इसलिये तंद्रा के समयमें स्वकल्प भावना ग्रहण करने से शीघ्र ही लाभ होता है।

सचमुच यह विश्वासकी चिकित्सा है । स्वकल्प भावना हमेशा दृढ़ विश्वास के साथ ग्रहण करना चाहिये । जितना अधिक विश्वास होगा स्वकल्प भावना का उतना ही अच्छा फल मिलेगा । स्वकल्प भावनासे जो कुछ लाभ होता हे वह केवल एक ही उपाय से बेकार प्रमाणित होगा—यदि हम उसमेंसे विश्वास खो बैठें । इसलिये जो जितना अधिक सरल विश्वासी है, जिनकी विश्वास जितनी गहरा है उन्हें उतना ही अधिक एवं उतनी ही जल्दी लाभ होता है । यूरोपमें कहावत है, Confidence is half the cure—विश्वास ही आधा आरोग्य है । इन बातोंमें बहुत कुछ सत्यता है ।

[३]

स्वकल्प भावना यदि विश्वास एवं नियम के अनुसार की जाय तो इसके द्वारा ऐसे बहुत कम ही रोग हैं जो आराम न हों । इस चिकित्सा से सब रोगों में लाभ होनेपर भी विभिन्न स्नायु-रोग इस चिकित्सा द्वारा आसानी से आराम होते हैं । स्नायु-दुर्बलता (neurasthenia), अनिद्रा, हिस्टीरिया, मिर्गी और विभिन्न अंगों की खिंचावट (spasm), मूत्र की रुकावट में अक्षमता, स्मरणशक्ति की कमी इत्यादि रोगों की स्वकल्प भावना एक प्रधान चिकित्सा है ।

नींद नहीं आने की बीमारी में शरीर को शिथिल (relax) करके और स्वांस का व्यायाम लेकर यह मन में दुहराना चाहिये कि हमें अभी नींद आ जाएगी, हमारे तमाम अंग शान्त हो रहे हैं । मैं तुरंत गहरी नींद से सो जाऊँगा । कई बार इस बात को दुहराने के बाद लम्बे स्वर से यह उच्चारण करना चाहिये—नींद ! नींद ! नींद ! कुछ देर तक इस ढंग से कहने से कब नींद आ जाती है कहना कठिन है । प्रोफेसर चार्ल्स बुडइन ने कहा है, If we fail to summon sleep at will, there must be some thing wrong with our method—

यदि हम स्वकल्प भावना द्वारा नींद नहीं ला सकें तो निश्चय ही हमारे कार्य-पद्धति में कोई गल्ती है।

हिस्टीरिया के रोगी को इस तरह की भावना लानी चाहिये कि मानसिक शक्ति दिन व दिन हमारे अंदर चढ़ती जायगी। फिर हिस्टीरिया के आनेसे पहले ही मैं उसे समझ जाऊँगा। तब मैं नहीं डरूंगा। मैं तब बिलकुल शांन्त रहूँगा। उसी से हिस्टीरिया का आक्रमण दूर हो जायगा। प्रतिदिन हमारी हालत सुधरती जायगी। हमारी चेतनाशक्ति हमेशा बनी रहेगी। आक्रमण आने के पहले ही वार वार इस बात को दुहराना चाहिये, "मैं शांन्त हो गया हूँ। मेरे अंदर आत्म-संयम आ गया है। हमें अब कोई डर नहीं।

अंग कम्पन (chorea) रोग में तो इससे आश्चर्यजनक लाभ होता है। एक चिकित्सक महाशय (Wattersland) ३१ पुरुष एवं १७ महिलाओं की चिकित्सा इस पद्धति से की, जिसमें ११ पुरुष एवं ५ महिलाओं को आरोग्य लाभ हुआ (Otto Juettner, M. D., Ph. D. —A Treatise on Naturopathic Practice, P. 396)।

स्नायु की दुर्बलता (neurasthenia) के रोग में जिन रोगियों की कोई आशा नहीं दीख पड़ती वे लोग स्वकल्प भावना द्वारा पूर्ण आरोग्य हो जाते हैं। मानसिक कष्ट, यंत्रणा तथा अशांन्ति में स्वकल्प भावना से अत्यंत लाभ होता है। अशांन्ति मन की एक स्वाभाविक अवस्था है। इस संसार में यदि अशांन्ति नहीं रहती तो धर्म का नाम कोई भी नहीं लेता। स्नायु की कमजोरी में अशान्ति एक रोग हो जाती है। मैंने खुद कई वार देखा है कि मानसिक वेदना के कारण आदमी कटे बकरे की भांति इधर से उधर करवटें बदलता रहता है। हो सकता है कि कारण बहुत क्षुद्र हो लेकिन उससे ही उनके मन में अग्नि दाह के समान कष्ट होता है। यह उनके मन के वश की बात नहीं है। यह तो अपने आप पैदा होती है। बाहर के आदमी समझ ही नहीं सकते हैं कि उनके मन में

कितना कष्ट हो रहा है। इस हालत में कितने आदमी को रोने की इच्छा होती है। कोई कोई रोने भी लगते हैं। इसको कावूमें करने के लिये उसके पास कोई अस्त्र नहीं रहता। एक से लेकर तीन चार दिन तक यह हालत रहती है। इसके बाद धीरे-धीरे कम होती जाती है। किन्तु स्वकल्प भावना से इसको शीघ्र ही दूर किया जा सकता है। मानसिक कष्ट या यंत्रणा इत्यादि उत्पन्न होने पर दोनों आंखें मूंद लें और ललाट के ऊपर हाथ चलाकर आधे से लेकर एक मिनट तक यह दुहराना चाहिये—जा रहा है, जा रहा है, जा रहा है, जा रहा है! इसे इतनी जल्दी-जल्दी दुहराना चाहिये जिससे भंवरे के गूंजने या चक्की की आवाज़ का संदेह जान पड़े। इससे रोग के चिन्ता की परछांई मन में नहीं पड़ने पाती है। इस तरह आधे मिनट से लेकर एक मिनट तक दोहरानेके बाद दाहिने हाथ को जोर से झटक कर कहना चाहिये कि चला गया। उसी समय मानसिक पीड़ा वाष्प के परदे की भांति आकाश में विलीन हो जायेगा। पृथ्वी में ऐसा कोई भी आदमी नहीं है जिसके मनमें अशांन्ति या थकावट न हो। किन्तु स्वकल्प भावना से इच्छामात्र हो इस अशांन्ति पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

कभी-कभी मन अत्यन्त उत्तेजित हो उठता है। तब नियम के अनुसार स्वकल्प भावना लेने से ही आसानी से देह और मन में शांन्ति आ जाती है। ऐसी हालत में कुर्सीपर बैठकर या बिछौने पर सोकर बिलकुल शरीर को शिथिल (relax) कर देना जरूरी है। तब शांन्तिपूर्वक कंठ से उच्चारण करना चाहिये,—शान्ति, शान्ति, शान्ति, शान्ति! शब्द को धीरे धीरे खींच खींच कर प्रत्येक शब्द के बाद एक एक सेकेण्ड के अंतर पर वार वार उच्चारण करना चाहिये। इससे मन निश्चय ही शान्त हो जायेगा।

तुतलाहट, वधिरता, स्मरणशक्ति की हीनता प्रभृति रोगों में इस तरह स्वकल्प भावना लेने से आश्चर्यजनक फल मिलता है। सचमुच में स्वकल्प भावना से सब स्नायु-रोगों में निःसन्देह बिलकुल आरोग्यता पहुँचाती है। मेरा

एक रोगी था जो अज्ञात भाव से मुंह बनाता था। वह मन ही मन आपही आप कुछ बड़बड़ाता रहता था, कभी कभी चीत्कार कर उठता था। विभिन्न विषयों का उसे असाधारण ज्ञान था। किन्तु अपनी इच्छा शक्ति से इस कमज़ोरी को वह किसी भी तरह रोक नहीं पाता था। किन्तु स्वकल्प भावना द्वारा उसकी यह बीमारी धीरे-धीरे दूर हो गयी। थोड़े ही दिनों में उसे काफी लाभ हुआ। किन्तु पहले ज़रा सी भी मानसिक चंचलता आने पर ही यह तमाम लक्षण उसमें दिखाई पड़ते थे। किन्तु विश्वास एवं निष्ठा के साथ इस स्वकल्प भावना को करने से तमाम लक्षण एकदम विलीन हो गये। सिर्फ स्नायु एवं मानसिक रोग ही इससे अच्छा होता हो ऐसी बात नहीं। अवचेतन मन में किसी भी रोग के प्रति स्वस्थ धारणा उत्पन्न करके आरोग्य लाभ किया जा सकता है।

कोष्ठबद्धता एवं दमा रोगों में भी इस इलाज से अत्यन्त लाभ होता है। इन दोनों रोगों के लिये कुछ अधिक दिन तक स्वकल्प भावना ग्रहण करनी चाहिये। दमा रोगी को इस तरह की भावना करनी चाहिये कि अब से मेरी स्वास क्रिया स्वाभाविक रूप पर हो जायगी। मुझे काम धंधा करने में भी तकलीफ नहीं मालूम पड़ेगी। प्रति दिन रात में सोते समय बिछौने पर सीधा चित होकर सो सकूंगा। धीरे धीरे मेरा स्वास सबल, सहज और गंभीर होता जायगा। उसके बाद अवस्था में कुछ उन्नति होने पर कहना चाहिये कि मेरी हालत में परिवर्तन शुरू हो गया है। मेरी यही हालत सदा बनी रहेगी।

अनेकों मौकों पर ऐसा पाया गया है कि खांसते खांसते खांसी का एक अभ्यास हो गया है। जब खांसी के साथ साथ कुछ नहीं निकलता तब खांसी का कुछ माने नहीं होता। ऐसी हालत में स्वकल्प भावना मन्त्र की तरह काम करती है।

रक्तस्राव होने पर मन चंचल हो जाने से रक्तश्राव बढ़ ही जाता है। तब

मन को दूसरी ओर ले जाकर स्वकल्प भावना ग्रहण करने से देखते ही देखते रक्त बहना बन्द हो जाता है।

तमाम दर्द के रोगों में इससे निश्चित रूप से लाभ होता है। स्नायु-शूल, दन्त-शूल, और पेट दर्द इत्यादि रोग आसानी से इसके द्वारा आराम होते हैं।

किसी स्थान पर दर्द मालूम पड़ने पर दोनों आंखों को बन्दकर एवं दर्द की जगह पर हाथ फेरते हुए मानसिक रोगीकी तरह खूब जल्दी-जल्दी कहना चाहिये कि, घट रहा है,घट रहा है, घट रहा है, घट रहा है। इस तरह थोड़े समय तक कहने के बाद दाहिने हाथ को झटक कर कहना चाहिये,—घटा गया। इससे दर्द जाता रहता है और अगर कठिन दर्द हो तो अत्यंत कम हो जाता है। यदि दर्द बिल्कुल आराम हो जाये तो कहना होता है कि यह फिर नहीं आयेगा। यदि कम हो जाये तो कहना चाहिये कि शीघ्र ही खतम हो जायगा। यदि उसके बाद फिर कष्ट मालूम हो तो ठीक उपरोक्त प्रणाली द्वारा दर्द कम कर देना चाहिये। इससे साधारण दर्द तो मिनट भर में ही गायब हो जाता है और किसी किसी वेदना की तीव्रता कम हो जाती है। और बाद को सम्पूर्ण जाता रहता है। इस ढंग से जो दर्द आराम होता है वह मैंने कई बार स्वयं परीक्षा करके देखा है।

कितने ऐसे पुराने रोग हैं जो विशेष करके विरुद्ध भावना से पैदा होते हैं। प्रत्येक सुबह को जो माथा में चक्कर आता है, श्रान्त होने के बाद जो दांत में पीड़ा होती है, प्रतिवार बाहर जानेपर जो माथा दुखता है, जो ब्रौन-काइटिस हर साल लौट आता है, हर दिसम्बर में जो गठिया कष्ट देता है, यह केवल रोग से ही पैदा होता है, ऐसी बात नहीं। बल्कि कई हालत में तो वह आंशिक रूप से या संपूर्ण रूप से अस्वास्थ्यकर विश्वास या धारणा से ही पैदा होता है। यह तमाम बीमारी जो इसी तरह प्रकट होती है, यह इसी से मालूम पड़ती है कि जब स्वकल्प भावना नियमित रूप से ली जाय

तव यह सब रोग आप से आप आराम हो जाते हैं (Prof. Charles Baudouin—Suggestion and Auto-suggestion, P. 117)। विरोधी भावना जो हानि कर सकती है, स्वकल्प भावना उसका संशोधन कर सकती है।

कोई-कोई रोगी हैं जिनके भीतर एक साथ ही अनेक रोग दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार के रोगोंमें प्रत्येक रोग या लक्षणके लिये स्वकल्प भावना ग्रहण करना कठिन हो जाता है। ऐसी हालत में शरीर के तमाम रोगों की ओर नजर न देकर सिर्फ शरीर जिससे चंगा हो जाय उसी ओर ध्यान देना जरूरी है। इन तमाम परिस्थितियों में रात को सोने के समय में एवं सुबह में उठने के समय में यह बात दुहरानी चाहिये कि मैं दिन व दिन हर तरह से अच्छा हो रहा हूं—Day by day, in every way, I am getting better and better. फ्रांसके मानसशास्त्र वेत्ता सम्मिलित एमिल कियोए का यह एक प्रसिद्ध फारमूला है। इस बात को दुहराते समय में 'हर तरह से' इस बात पर विशेष जोर देना चाहिये। जो भक्त लोग हैं वे इसके साथ भगवान का नाम सम्मिलित कर सकते हैं कि, भगवान की कृपा से हम दिन व दिन सब तरह से अच्छे होते जा रहे हैं। उंगली पर गिन-गिन कर प्रतिदिन कम से कम वीस बार ऐसा दुहराना चाहिये। इस तरह लगातार दुहराते रहने पर छोटे वड़े तमाम तरह के रोगों के लक्षण दूर हो जाते हैं और शरीर रोग शून्य बन जाता है। तोभी विशेष जरूरत पड़ने पर रोगों के प्रधान लक्षण के निमित्त स्वकल्प भावना लेने से कोई हानि नहीं है। उससे शरीर तुरत ही आरोग्य होता है।

[४]

किन्तु इसके द्वारा सिर्फ रोग ही आरोग्य होता है—ऐसी बात नहीं। इससे चरित्र भी वदला जा सकता है। निष्ठा एवं धैर्य के साथ करने पर तो मनुष्य भीतर ही भीतर एक नया जीव बन जाता है।

हमलोगों के शास्त्र में आत्मज्ञान को निदिध्यासन का फल कहा गया है। निदिध्यासन का अर्थ है वार वार चिन्ता करना। मनुष्य अपने को ब्रह्म समझते समझते वह ब्रह्म के समान हो सकता है। छोटे मोटे कामों में भी अपनी उन्नति का विचार रखकर अपने को उच्च वनाया जा सकता है।

रामकृष्ण परमहंस देव ने कहा था कि जो अपने को पापी पापी करके सोचता है वह पापी ही होता है। फिर मनुष्य अपने को महात्मा सोचते सोचते महात्मा ही बन जाता है। अपने को अक्षम दुर्वल सोचने से ही मनुष्य सामर्थ्यहीन और दुर्वल हो जाता है।

अपने को अभागा एवं अपने जीवन को वेकार समझने वाले सबसे भारी भूल करते हैं। जितनी ही वार अपने मनमें इस तरह की भावना लायी जाती है उतनी ही वार अपनी प्रगति के रास्तेमें कांटे वोये जाते हैं। यदि हमेशा मनमें यही डर लगा रहे कि मनोरथ विफल होगा तव कठिन परिश्रम करने पर भी चेष्टा धीरे धीरे शिथिल पड़ जायगी और अन्तमें सफलता मिलनी असम्भव हो जायगी।

आत्म विश्वास एक महान् चीज हैं। कोई-कोई तो ऐसे लोग हैं जो जिस चीज को भी छूते हैं, वही सोना हो जाता है। इसके भीतर कुछ नहीं है, केवल यही वात है कि वे दृढ़ विश्वास रखते हैं, कि सफलता जरूर मिलेगी। नेपोलियन की सेना के सामने तमाम यूरोप पराजित क्यों हो गया? कारण यही है कि वह विश्वास रखता था कि विजय जरूर मिलेगी। उस के वाद रूस से हार जानेपर ज्यों ही उसका आत्म विश्वास टूट गया त्यों ही वह पतन के गर्भ में गिर गया।

इस संसार में ऐसे वहुत से लोग हैं जो स्वभावत: डरपोक, नाज़ुक, अत्यधिक विनयी, अपने मनको अत्यन्त दुर्वल भावने वाला एवं जीवन संग्राम में सदा धोका प्राप्त होनेवाला हैं। ऐसे लोगोमें सैकड़ों गुण रहने के वावजूद वह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो सकती है। पृथ्वी में त्याग एक वड़ी चीज है।

लेकिन दुर्बलता त्याग नहीं है। यह पृथ्वी उसकी है जो विजय करके लेता है। वीर भोग्या वसुन्धरा। जिसकी लाठी उसकी भैंस। कमजोर बनने में कोई लाभ नहीं है। कमजोरी से बढ़कर दुनिया में और कोई पाप नहीं है। किन्तु जो लोग इस तरह दुर्वलता के चक्कर में फंसे हुए हैं वे भी दिन ब दिन नियमित रूपसे स्वकल्प भावना द्वारा धीरे धीरे साहसी, निर्भीक, संकोचहीन व आत्म सम्मान युक्त हो सकते हैं (Herbert A. Parkyn, M.D. —Auto-suggestion, P. 18)। जो लोग मानसिक पीड़ा से व्यथित हैं वे इस तरह स्वकल्प भावना ले सकते हैं कि दिन ब दिन मेरा मन सबल होता जायगा, मैं किसी के पास जाने में शर्म नहीं करूंगा, सबों के साथ निःसंकोच पूर्वक बातचीत कर सकूंगा, अपने को कभी भी छोटा नहीं समझूंगा, मैं जिस किसी भी आदमी के समान है, मेरा शक्तिका क्रमशः पूर्ण विकास होगा, मैं किसी भी हालत में नहीं डरूंगा, जीवन में मैं संग्राम चाहुँगा और संग्राम में विजय प्राप्त करके छोड़ूंगा। इस तरह प्रत्येक चीजों के लिये भावना दुहरायी जा सकती है। इस तरह भावना के मध्य से नये जीवनका जन्म होता है। दुर्वलता और हीनमनोवृत्ति पर कोई आसानी से विजय प्राप्त नहीं की जा सकती, किन्तु मन के भीतर शक्ति आ जाने पर ये दुर्वलता आप से आप शरीर से अलग हो जाती हैं।

कोई-कोई लोग अत्यंत चंचल, क्रोधी, शराबी या कामुक हैं। ये तमाम लोग उपयुक्त भावना ग्रहण करके और उस पर प्रतिदिन अमल करके आत्मसंयम ला सकते हैं।

ऐसे बहुत से आदमी पाये जाते हैं जो बहुत ही आराम तलबी तथा कामचोर हैं। ये तमाम लोग भी स्वकल्प भावना ग्रहण द्वारा कर्म-शील हो सकते हैं।

स्वकल्प भावना से इच्छा मात्र शीत और ग्रीष्म को रोका

जा सकता है। साधु-सन्यासी लोग इसी ढंग से शीत एवं ग्रीष्म सहन करके रहते हैं।

इसके द्वारा खाने की रुचि तक भी बदली जा सकती है। हम लोगोंको खाने की जो रुचि है वह पहले की धारणा के कारण ही होती है। फिर स्वकल्प भावना ग्रहण करके उस में परिवर्तन कर दिया जा सकता है। वर्तमान समाज के लोग सिर्फ मछली, मांस ही खाना विशेष पसन्द करते हैं। किन्तु स्वकल्प भावना द्वारा जो कोई क्रमशः फल, तरकारी, कच्चा शाक (salad) दूध, दही इत्यादिपर भी रुचि ला सकते हैं।

स्वकल्प भावना एक साधना है। रोग के साथ युद्ध करने के लिए जिस प्रकार इससे हम एक नया हथियार पाये हैं, उसी प्रकार इससे मानुष बनाने के लिये भी एक नई चीज का पता हम लोगोंको लगा है। तौ भी रोग को आरोग्य करने के लिये स्वकल्प भावना के साथ-साथ शरीर को हमेशा दोष मुक्त करने की चेष्टा करनी चाहिये। क्योंकि शरीर के संचित दूषित पदार्थ ही रोगोंका मूल कारण है। जब शरीर को इन विकारों से मुक्त किया जाता है। तभी केवल वास्तव रूप में शरीर स्वस्थ बन पाता है।

———

चतुर्विंश अध्याय

स्वास्थ्य किस ओर ?

सुश्रुत ने कहा है,—'आयुर्वेद के प्रयोजन हैं दो—रोगी को रोग से छुटकारा दिलाना और स्वस्थ पुरुष की स्वास्थ्य रक्षा (सूत्र स्थानम् १।१२)। अंग्रेजी में कहावत है,—'बीमारी से चंगा करने की अपेक्षा ऐसा उपाय करना बेहतर है जिससे कि रोग ही न हो। असुख (बीमारी) का माने है–न सुख, जिस प्रकार disease = dis-ease — want of ease। इसी कारण अस्वस्थ न रहने का अर्थ ही स्वस्थ रहना है। किन्तु पृथ्वीपर जिस प्रकार सभी चीजों को अर्जन करना होता है, स्वास्थ्य भी उसी प्रकार अर्जन करना पड़ता है–औषधि के बोतल से यह प्राप्त नहीं किया जा सकता।

स्वास्थ्य-रक्षा के लिये अत्यन्त नियमित जीवन बिताना आवश्यक होता है। खूब तड़के सवेरे बिस्तर से उठ जाना स्वास्थ्य रक्षा के लिये अत्यन्त जरूरी है। खूब तड़के उठने से दिन किस प्रकार बीतता है, इसकी परीक्षा कुछ दिन स्वयं सवेरे उठकर देखें। सूर्योदय से १ घण्टे से लेकर १ घण्टा ४५ मिनट के भीतर भगवान का नाम लेकर बिस्तर से उठ खड़ा होना चाहिये। इसके बाद ठण्डे पानी से मुँह और आंखों को धोकर नींबूके रस से मिला हुआ एक गिलास पानी पिना चाहिये।

इसके बाद ही पाखाना जाना जरूरी है। वेग न होने पर भी नियमित समय पर पाखाना अवश्य जाना उचित है। प्रतिदिन यदि नियमित समयपर पाखाना जाने का अभ्यास किया जाय, तो निर्दिष्ट समयपर उसका वेग अपने आप आ जायेगा।

पेट साफ रखने तथा मुखकी दुर्गन्धिको दूर करने के लिये नियमित रूपसे

दांत धोना आवश्यक है। मिट्टी लभ्य होने पर दांत धोते समय और किसी चीज के व्यवहार करने की आवश्यकता नहीं। वालूके सूक्ष्म कण दांत के भीतर प्रवेश कर उनकी सारी गन्दगी को वाहर निकाल लाते हैं। इस गन्दगी के अभाव में दांत के कीड़े वहां अपना अड्डा नहीं वना सकते हैं। इसीलिये वालू मिली मिट्टीका व्यवहार करने से दांत वहुत दिनों तक ठीक वने रहते हैं।

यदि कोइ चाहे तो, मिट्टी से दांत मलते समय अच्छे कड़े व्रुश का व्यवहार कर सकता है। पर इसे सदा याद रखना चाहिये कि गन्दा व्रुश और मेहतर के झाड़ू में कोई अन्तर नहीं है। अतएव सप्ताह में कम से कम दो वार अच्छी तरह से व्रुश को साफ कर लेना आवश्यक है। कोई-कोई व्रुश को गरम पानी से धो डालते हैं; परन्तु पूरे १०।१५ मिनट तक खौलते पानी में व्रुश नहीं रखने से वह शुद्ध (sterilised) नहीं होता।

इन सव वखेड़ों न कर यदि तीन-तीन चार-चार दिन वाद थोड़ा सा नमक व्रुश के ऊपर सारी रात रहने दिया जाय तो व्रुश निर्दोष हो जाता है। व्रुश का इस्तेमाल करने के वाद उसके जल को झाड़कर गिरा देना चाहिये। फिर उसे खुली जगह में रख देना उचित है। जो दिन रात में केवल एक वार व्रुश का व्यवहार करते हों, उन्हें चाहिये कि रात में खाना खाने के वाद व्रुश का इस्तेमाल करें। ऐसा करने से किसी प्रकार की गन्दगी दातों में नहीं रहने पाती।

दांत साफ करने के वाद कसरत या सैर करना उचित है। इससे शरीर में जो गर्मी आती है, उस गर्मी के रहते रहते ही सवेरे स्नान करने से वड़ा लाभ होता है। स्नान के वाद ही सुखी मालिश से शरीर को फिर गरम कर लेना चाहिये और तुरंत देह को गरम कपड़े से आवृत कर देना जरूरी है।

इसके वाद अपने विश्वास के अनुसार कुछ समय तक ईश्वरोपासना आदि में व्यतीत करना चाहिये। शरीर के लिये जिस प्रकार कसरत जरूरी है, उसी प्रकार मन के लिये भी उसकी आवश्यकता पड़ती है। मन

को भगवान के चरणों में केन्द्रित करने की चेष्टा करना ही मानसिक व्यायाम है। लगातार के इस प्रकार के प्रयत्न से ही मन निश्चल होता है। इसी चेष्टा का नाम साधना है।

मन जितना ही संयत हो आता है, उसकी शक्ति उतनी ही बढ़ती है और आत्मानन्द जीवन उतना ही मधुर हो उठता है। शरीर के साथ मन क अविच्छिन्न सं ंध होने के कारण चित्त के संयमित रहने पर कम-जोर शरीर में भी मत्त हाथी सा बल हो सकता है।



सूखी मालिश

उपासना समाप्त होने के बाद, अगर क्षुधा हो तो कुछ हल्का खाना जरा-साखाया जा सकता है। सवेरे तथा तीसरे पहर के जलपान सर्वदा फल और स्यालाद (salad) होना चाहिये। हमेशा मनुष्य समझते हैं कि फल खाना बहुत खर्च का काम है, क्योंकि उनकी समझ में अंगूर, बिहदाना आदि ही फल हैं ! वे जानते नहीं हैं कि मामूली देशी फल टटका खाने पर अंगूर आदि फलोंसे ज्यादा तरक्की देह को पहुंचाते हैं। नारंगी,

बिजोड़ा, आम, टमैटो, श्रीफल, क्षीरा, अमरूद, शाक आलू सफेद जाम आदि फल बाजार की हर मिठाई आदिसे सस्ते हैं और ज्यादा लाभकारी भी हैं। भोर का खाना बहुत कमती होना चाहिये। सवेरे अधिक कुछ खा लेने से दस ग्यारह बजे तक वह हजम नहीं हो सकता और एक भोजन पचने के पहले ही दूसरा भोजन पाकस्थली में आकर अनेक गड़बड़ी मचा देते हैं। जो रोगी हों या अस्वस्थ रहते हों, उन्हें तो भोर में भोजन ही नहीं करना चाहिये।

यदि खाना जरूरी हो तो नारङ्गी, टोमेटो आदि का रस एक ग्लास पीना चाहिये। इससे दवाई खाने से बहुत अधिक लाभ होता है। सवेरे तथा तीसरे पहर के जलपान के समय और चाहे जो भी खाया जाय, चाय और बिस्कुट न खाना ही अच्छा है। इनसे बढ़कर पेट की बीमारी उत्पन्न करने वाला और कुछ नहीं। चाय के भीतर 'टानिक एसिड', कालफिन' आदि विष होते हैं। इनसे कोष्टबद्धता होती है। गरम पानी क्षण भर के लिये जीवनी शक्ति को उद्दीप्त करता है सही, पर इसकी प्रतिक्रिया से परिपाक यंत्र अत्यन्त कमजोर हो जाते हैं। चाय के दोषों को वर्णन करने से एक लम्बी तालिका हो जायगी। किन्तु एक बार किसी समाचार पत्र में इसकी उपकारिता के सम्बन्ध में पढ़ा था। अखबार खोलकर देखा, एक स्थान पर लिखा था,—चाय पीने से लाभ। आश्चर्यित होकर मैंने समाचार पढ़ा,—एक भद्र पुरुष के घर में चोर घुसे। उस समय रात के दो बजे थे। किन्तु गृहस्वामी पुराने चाय पीने वाले थे, इस कारण जगे थे। ज्योंही चोर ने घर में घुसकर सन्दूक पर हाथ लगाया कि उन्होंने चोर को पकड़ते हुये कहा— 'जानते नहीं बच्चू कि मैं चाय पिया करता हूं ?'

सवेरे स्नान करने से दोपहर को स्नान करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु रोज निश्चित समय पर भोजन करना आवश्यक है। भोजन यथासम्भव पुष्टिकर होना ही चाहिये, पर ऐसा न हो जो जल्दी न पचे। शहर के लोग भोजन करके ही आफिस को दौड़ पड़ते हैं। यह बहुत हानि-

कर है। भोजन करने के बाद कम से कम आधे घण्टे आराम किये बिना कहीं नहीं जाना चाहिये।

'खाकर उठके दौड़ा जाये, उसके पीछे मृत्यु धाये'। जिन्हें सवेरे ऑफिस जाना हो, उन्हें चाहिये कि वे उससे भी आधा घण्टा पहले भोजन करें, जिससे कि खाकर ही उन्हें दौड़े आफिस न जाना पड़े।

दिन में सोना साधारणतया अच्छा नही हैं। गरमी के दिनोंको छोड़कर और मौसिमों में, दिन में सोने से काफी खराबी हो सकता है। किन्तु गरमी के दिनों में दोपहर को थोड़े देर के लिये सोना बुरा नहीं। कभी-कभी तो केवल पन्द्रह मिनट आराम कर लेने मात्र से ही काम करने की क्षमता बढ़ जाती है, और शरीर में बल लौट आता है।

दिन के प्रधान भोजन के बाद तथा रात के खाने के पहले यदि कुछ खाना हो तो इस बात का ध्यान रहना चाहिये कि दिन के भोजन के बाद कमसे कम उसमें चार घण्टे का अन्तर हो। दोपहर के बाद का भोजन यथासम्भव हल्का होना चाहिये। नियमित दोनों वक्त के भोजन के बीच में किसीका भी अनुरोध पर मुँह में कुछ भी न डालना चाहिये। दोपहर के काम के बाद किसीको घर में नहीं बैठ रहना चाहिये। उस समय खुली हवा में टहलने में या किसी प्रकार का खेल खेलने में किसी का ही अन्यथा उचित नहीं है। सुविधानुसार भ्रमण के पहले या पीछे सन्ध्या को स्नान कर लेना चाहिये।

रात में खूब जल्दी भोजन समाप्त कर लेना जरूरी है। क्योंकि खाये हुए अन्न के पचने के पहले सो जाने से वह ठीक तरह से पचने नहीं पाता है।

भोजन की तरह सोने का भी निश्चित समय होना चाहिये। एक महीने के बच्चे को रोज १८ से २० घण्टे तक सोना चाहिये। एक वर्ष के बच्चे को कमसे कम १६ घण्टा सोना आवश्यक है। दो वर्ष तक की उम्र तक १२ घण्टा सोना जरूरी है। बच्चों को ९ से १० घण्टे तक सोना उचित है तथा वयस्क लोगों को रोज ८ घण्टे सोना चाहिये।

सोते समय खूब शांत मन से सोना चाहिये। गम्भीर नींद के समान शरीर का गठन करने वाला तथा जीवनी शक्ति की वृद्धि करने वाला और कुछ भी नहीं है। रोजाना काम करने के कारण जो हमारी जीवनीशक्ति का ह्रास होता है, वह केवल गहरी नींद मात्र से ही पूरा हो सकता है। नींद के समय हमारे शरीर के रक्त-कण गठित होते हैं। इसी कारण रात भर जागने के बाद वह व्यक्ति मुर्झाया हुआ दिखाई पड़ता है। इन्हीं कारणों से एक रात न सोने से शरीर की जो क्षति होती है वह किसी प्रकार के भोजन या पेय से पूर्ण नहीं हो सकती। इसलिए सोये हुए आदमी को जगाना हमारे देश में पाप गिना जाता है। घर में आग लगने जैसे विपद आने पर ही सोये व्यक्ति को जगाया जा सकता है, अन्यथा नहीं।

स्वास्थ्य रक्षा के सम्बन्ध में चरक ने कुछ आवश्यक बातें बतायी हैं। बात है तो बहुत छोटी किन्तु उससे जो लाभ होता है वह अनमोल है। चरक ने कहा है—सदा प्रसन्न चित्त रहो। थकावट आने के पहले ही काम छोड़ दो। बहुनिद्रा, अधिक जागरण, बहुत स्नान और ज्यादा खाना पीना मत करो। नहाकर मैला वस्त्र मत पहनो। मलादि का वेग होने पर उन्हें त्याग किये बिना कोई भी काम मत करो, तथा प्रकृतिमभिस्संस्मरेत्—सदा प्रकृति का

अनुसरण करो। जो लोग स्वास्थ्य-रक्षाके इन नियमों को यथासम्भव पालन करेंगे, वे निरोग रहते हुए सौ वर्षतक जीवित रहेंगे (सूत्रस्थानम् ८।१०-२५)।

स्वास्थ्य-रक्षाका प्रधान उपाय प्रकृति का अनुसरण करना है। प्रकृतिने जिस अंग को जिस काम के लिए बनाया है उसे उसी कार्यमें लगाना चाहिये। दांतके कामको पाकस्थली से कराना तथा नाक के कामको मुंहसे लेना— ये दोनों काम प्रकृति के विरुद्ध अपराध हैं। जो मुंहसे स्वास लेते हैं साधारणतया वे अल्पायु होते हैं। मुंहसे कभी सांस न लेकर नाकसे लेना चाहिये।

सदा साफ सुथरा रहना चाहिए। Cleanliness is next to

Godliness. पवित्रता आर्यत्वका प्रधान लक्षण है। पर जो चीज जितनी ही अच्छी होती है, उसकी विकृति उतनी ही खराब होती है। आज यही पवित्रता विकृत होकर भारत के नाभिश्वास की सृष्टि करनेका उपक्रम कर रहा है।

छोड़ा, गन्दा, दुर्गन्धियुक्त कपड़ा कभी नहीं पहनना चाहिये। स्वच्छ कपड़ा पहनना विलासिता नहीं है। जाड़ेके दिनोंको छोड़कर और दिनोंमें सदा खूब हल्का वस्त्र पहनना चाहिये। ऐसा करनेसे चमड़े सुचारु रूपसे अपना काम सम्पादित कर सकता है। इसका सदा ध्यान रहना चाहिये कि यथा सम्भव शरीरको धूप तथा हवा लगनेका मौका मिलता रहे।

परिश्रम करनेके बाद ही विश्राम करना आवश्यक है। काम सदा किसी प्रकार की उत्तेजना या उद्वेग रहित होकर करना चाहिये। यही कर्मका कौशल है।

उद्वेग, शोक और भय ही मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा दुश्मन है। एक पण्डित व्यक्ति ने कहा है—काम से आदमी मरता नहीं, मरता है उद्वेग से। जैसे पाप के साथ लड़ना चाहिये, वैसे ही शोक, भय और उद्वेग के साथ लड़ना जरूरी है। एक आदमी ने मरने के पहले अपने लड़कों से कहा—जीवन में जितनी आफत की भावना से मुझे अशांति मिली उनमें से थोड़ी-सी ही मेरे सामने आयीं। हम लोग आई हुई आफत से घबड़ाते नहीं, बल्कि आनेवाली आफत की सम्भावना से ही डरते हैं। आनेवाली आफत के लिये विचलित न होके, जीवन के आनेवाला उत्सव को स्मरण करके आनन्दित रहना उचित है।

इस बात को भी याद रखनी चाहिये कि दिन काम करने के लिये तथा रात्रि विश्राम करने के लिये है। विद्यार्थियों को छोड़कर और किसी के लिये भी काम करना रात को उचित नहीं। अधिक रात तक जगकर काम करना सख्त मना है।

सदा प्रफुल्लित और आशावादी बने रहना चाहिये। मानसिक प्रसन्नता

स्वास्थ्य को बनाती है। हँसने के मौके को कभी न छोड़ना चाहिये। ऐसे उल्लास के साथ हँसना चाहिये कि उससे जूते का सुखतल्ला तक स्पन्दित हो उठे। हँसने की क्षमता एक महान गुण है। जो लोग खूब खिलखिलाकर हँस सकते हैं, उनका हृदय विशाल मैदान की तरह सुविस्तृत एवं उदार होगा।

खुले मन से हँसते समय खून के अन्दर जीवनी-शक्ति की एक बड़ी स्रोत मुक्त होती है। उसी से स्वास्थ्य की उन्नति होती है।

अंग्रेजी में एक कहावत है--laugh and grow fat—हँसो और उससे ही मोटा बनोगे। सचमुच हँसना एक बड़ी जीवन दायक चीज है। यह भगवान की दी हुई एक सस्ती दवा है—mirth is God's medicine.

फ्रांसके एक डाक्टर (Dr. Pierre Vachet) ने एक नये ढंगका चिकित्सालय (The Institute of Psychology) खोला है। उसमें निश्चित समय पर अस्पताल के सभी रोगियों को इकट्ठा होना होता है। सभी के आ जानेपर एक साथ एक स्वर में सब यही कहकर चिल्ला उठते हैं, "मेरा रोग छूट गया, मैं चंगा हो गया, मेरे शरीर में शक्ति आ गयी"। इसके बाद उन्हें हँसने को कहा जाता है। सभी उसी समय खिलखिला कर हँस पड़ते हैं। इससे उनके रक्तके भीतर एक प्रकार की जीवनी शक्तिका स्रोत खुल उठता है और इसके बाद वे अपनेको बहुत कुछ चंगा अनुभव करते हैं। इस अस्पतालमें रोगियोंको प्रसन्न-चित्त रहना ही प्रधान चिकित्सा है (The Indian Naturopathy, Jan., 1936, P. 9)।

सदा प्रफुल्लित रहने का भी अभ्यास करना चाहिये। जिस तरह से वीणा बजाने का अभ्यास करना आवश्यक होता है, उसी तरह से आनन्द में रहने का अभ्यास करने की जरूरत पड़ती है। बच्चों को बचपन से ही ऊंची हँसी से अभ्यस्त कराना जरूरी है।

एक दिन मैं अपने एक मित्र के घर गया था। शाम को बैठकर हम लोगों के साथ वे बातें कर रहे थे। हठात् वे कह उठे—'अरे आज तो बच्चों को हँसाया नहीं और तुरन्त उठकर बच्चे को उठा लाये। उसका बाद नाना प्रकार की भाव भंगी से उसको कुछ समय तक हँसाकर उसे फिर रख आये। मैं यह देखकर मुग्ध हो गया।

सभी प्रकार से भय को दूर रखना चाहिये। भय के कारण क्षण भर में कोई कठिन बीमारी उत्पन्न हो सकती है। बीमारी फारसी भाषा का शब्द है। 'बिम' माने डर तथा 'अरि' माने लाया हुआ, यानी जो भयसे पैदा हो उसीको बीमारी कहते हैं।

आनन्द के साथ रहना चाहिये, किन्तु उच्छृङ्खलता को पास फटकने नहीं देना चाहिये। क्षणिक सुखकी आशामें शरीर की सर्वश्रेष्ठ सम्पदाको नष्ट नहीं करना चाहिये। वीर्य ही शरीर में अधिकांश जीवनी शक्ति है। इसी वीर्यका रक्षा करने से असाध्य साध्य हो सकता है। पर जोर लगाकर कोई भी इसकी रक्षा नहीं कर सकता। ईश्वर का उपासना करना तथा निस्वार्थ भावसे परोपकार करना वीर्य रक्षाका सर्वश्रेष्ट उपाय है। मनको किसी महान कार्य एवं उद्देश्य में इसी प्रकार लगाना चाहिये कि, इसी कामके आनन्द से मन अपने आप भोग विलास की भावना से ऊँचा उठे। मनपर विजय पाने का यही प्रधान मार्ग है।

विवाह के पहले वीर्य की रक्षा करना परमावश्यक है। विवाह के बाद भी यथेच्छाचार नहीं करना चाहिये। जो स्वेच्छा से जितना संयम पालन कर सकें, उनकी आयु उतनी ही लम्बी होगी। बीमारी हालत में तथा रोगमुक्ति के बाद कठोरतया से इन्द्रियोंका संयम करना बहुत जरूरी है क्योंकि उसी वक्त इन्द्रिय सुख अन्वेषण करने से शरीर के सारे यन्त्र इस प्रकार कमजोर हो जाते हैं कि, रोग छुटने तथा स्वास्थ्य प्राप्त करने में बहुत विलम्ब होता है—अनेक बार तो स्वास्थ्य फिर वापिस आता ही नहीं।

बुरे विचार तो किसी भी प्रकार नहीं लाना चाहिये। कुविचार और बुरे काममें बहुत थोड़ा अन्तर है। कुचिन्ता मनके अणु परमाणुको विषाक्तकर डालती हैं। कुविचारका त्याग करके ही मनुष्य बुरे कामों के करने से वंचित रह सकता है।

चरक और सुश्रुत पढ़नेपर यह देखकर आश्चर्य होता है कि उनमें कितना नीति धर्म है। चरक ने कहा है, बुद्धिमान आदमी को लोभ, शोक, भय, क्रोध, अभिमान, निर्लज्जता, ईर्ष्या, परधन-लोलुपता, कर्कश मिथ्या और असमयोपयोगी बातें और चोर प्रवृत्ति को रोकना चाहिये (सुत्रस्थानम् ६।२३)। हमेशा प्रसन्न चित्त रहो, जिस कारण से किसी की उन्नति हुई हो, उस कारण के प्रति तो स्पर्धा हो पर उस कारणके फलके प्रति ईर्ष्या न होना चाहिये; निश्चिन्त, निर्भीक, क्षमाशील, धार्मिक तथा आस्तिक बनो, सभी प्राणी के प्रति बन्धुभाव स्थापित करो; पराई स्त्री की कामना मत करो और न पर स्त्रीगामी बनो; स्वजन के साथ निवास करो और अकेले सुखभोग मत करो (सुत्र स्थानम् ८।१०-१२)। हितोपचार जीवन का मूल है एवं उसका विपरीत है मृत्यु का कारण (विमान स्थानम्, ३।४१)।

शरीर और मन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। शरीर को चंगा रखने के लिये मन को भी स्वस्थ रखना चाहिये तथा मन को स्वस्थ रखने के लिये शरीर को भी स्वस्थ रखना जरूरी है। जिस मार्ग के अनुसरण से मन स्वस्थ रहेगा, वही मार्ग शरीर के लिये भी लाभप्रद है। इसी प्रकार शरीर को स्वस्थ रखने की चेष्टा भी एक प्रकार की साधना है अथवा वही है साधना की भीत्ति। शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्।

यों प्राकृतिक चिकित्सा का पहला अध्याय स्वास्थ्य-नीति है, उसी का अन्तिम अध्याय आध्यात्मिकता है।

समाप्त

विस्तृत विषय सूची

विषय		पृष्ठ संख्या
मिट्टीकी शीतल पोल्टिश	(cold earth compress)	१६६
मिट्टीकी ढकी हुई पोल्टिश	(heating earth compress)	१६८
मृदु वाष्प स्नान	(mild steam bath) ...	१५५
वायु स्नान	(air bath) ...	२०८
वाष्प स्नान	(steam bath) ...	४९
सिज बाथ	(sitz bath)	१२२
सुखी मालिश	(dry friction) ...	९४
हिप बाथ	(hip bath)	३०

कुलरंजन मुखर्जी की

निकलने वाली हिन्दी किताबें

१

रोजाना रोगोंकी प्राकृतिक चिकित्सा

२

जीर्ण रोगोंकी प्राकृतिक चिकित्सा

३

व्यावहारिक प्राकृतिक चिकित्सा

४

स्त्री रोगोंकी प्राकृतिक चिकित्सा

५

खाद्योंकी नवविधि